हिमालय-कथामाला

द्वितीय पुष्प

नेपाल की वो बेटी

(नेपाली जीवन पर सरस सजीव सामाजिक उपन्यास)

लेखक

बलभद्र ठाकुर



प्रकाशक

हिन्दी भवन

इलाहाबाद • जालंधर

१९५९]

[मूल्य ५·८०

प्रकाशक
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी भवन
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

भूल-चूक

पृष्ठ	पंक्ति	छपा है	बना लीजिए
५८	२३	स्ती	मस्ती
७१	१३	विक	पाशविक
११२	२०	वहा	वह
२४१	१८	ये क्या ?	कांछी !! ये क्या ?
२४१	१८	बुहारा	बुहारी
२४१	१६	कांछी !! हुए	हुए
२४१	१६	पाट लो	पीट ली
२५६	८	भा	भी
३२३	२३	'मादाचित बारवे'	मादा 'चितबारवे'
३३०	२३	ललच	लालच

मुद्रक
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी,
इलाहाबाद-३

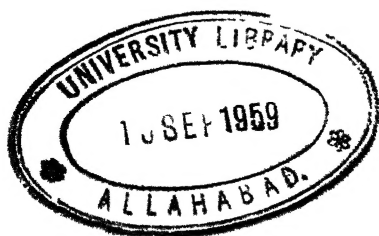
भारत और नेपाल

के

नये रक्तों

को

सप्रेम !



यह उपन्यास और ऐतिहासिक तथ्य

'मुक्तावती' के बाद 'हिमालय-कथामाला' का दूसरा पुष्प है 'नेपाल की वो बेटी'। घुमक्कड़ बलभद्र ठाकुर ने नेपाली समाज में कई वर्ष भ्रमण और निवास कर नेपाल के जन-जीवन और जन-संघर्ष के गहन अध्ययन के फलस्वरूप पॉच उपन्यासो मे उस संघर्ष के विकास और पर्यवसान को चित्रित किया है।

आज 'नेपाल' हमारे लिए 'विदेश' है; परन्तु विधानतः 'विदेश' होते हुए भी भावनात्मक दृष्टि से न कभी वह विदेश रहा, न रह सकता है। भूगोल, इतिहास, संस्कृति, विचारधारा, धर्म, समाज, रक्त, भाषा और अनुश्रुति सभी दृष्टियो से भारत का सहोदर है नेपाल। भावनात्मक दृष्टि से हम उसे अपने से उतना ही दूर मानते हैं, जितना भारत के किसी दूसरे प्रांत को। इतना ही नही, हम 'मध्य देश' के निवासी किसी बंगाली, गुजराती, तमिल या केरली से किसी नेपाली को अधिक निकट का अनुभव करते हैं। नेपाल के पश्चिमी जिले 'डोटी' के निवासी हजारों 'डुटियाल' अलमोड़ा-नैनीताल मे भारवाह हैं। उन पहाड़ी जिलों का आर्थिक जीवन और परिवहन-प्रणाडी इन 'बलियो' डुटियाल भारवाहों के सुपुष्ट कंधो पर आधारित है। प्रत्यह उनके संपर्क मे आते हुए हमे कभी यह अनुभव नहीं होता कि हम किसी विदेशी के संपर्क मे आ रहे हैं। ये गरीब डुटियाल ईमानदारी के लिए तो 'उपमान' ही हैं। हम अपना कीमती से कीमती सामान डुटियाल को सौंप कर कह देते हैं अमुक पड़ाव पर जाना है और उससे अलग घोड़े पर सवार हो या पैदल चल देते हैं। हमारे सामान को पीठ पर बॉधे डुटियाल शाम को उस पड़ाव पर अवश्य पहुॅच जाता है। कभी किसी को यह आशंका भी नहीं हुई कि डुटियाल सामान मे से कुछ निकाल लेगा। डुटियाल तो 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' देखता है, उसे मतलब है केवल अपनी मजदूरी से और मजदूरी से भी अधिक 'बकशीश' से। कलकत्ते के दरबानों और काशी के विद्यार्थियों में भी नेपालियो की संख्या पर्याप्त है। और भारतीय सेना मे भी नेपाली सैनिको का विशिष्ट स्थान रहा है

और अब भी है। अपनी वीरता और धैर्य के लिए वे अनुपम हैं। ईस्वी सन् '१८२३ के सिक्ख-अफगान युद्ध में नौशेरा पर जब अफगानों की बाढ़ के आगे पंजाबी सेना डगमगा गई, तब भी रणजीत के नेपाली सैनिकों की पाँतें चट्टान की तरह अटल रहीं।'[1] कहने का तात्पर्य यह है कि नेपाली हमारे समाज का अग होते हुए भी विधानतः 'विदेशी' हैं। पश्चिमी पजाब सिंध और पूर्वी बंगाल मे जन्मे लाखो भारतीयों की जन्मभूमि भी आज हमारे लिए 'परदेश' और 'विदेश' है! और 'परदेश' हैं हमारी संस्कृति के आधार तक्षशिला और शलातुर ग्राम!

अपने उसी सहोदरसम 'विदेशी' अंग नेपाल के जन-जीवन और जन-सघर्ष को चित्रण करने वाले बलभद्र ठाकुर के इस उपन्यास 'नेपाल की वो बेटी' का कथा-काल ई० सन् १६२० से १६२३ तक है।

ईसा की अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक हिमालय में अनेक छोटे-छोटे स्वतत्र राज्य थे। १७४२ ई० मे 'गोरखा' नामक एक छोटे राज्य के राजा नरभूपाल शाह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र पृथ्वीनारायण शाह 'गोरखा' की गद्दी पर बैठा। अपनी सौतेली माँ चद्रप्रभा से परामर्श कर और आशीर्वाद ले कर उसने काशी की यात्रा की और वहाँ से बंदूक-बारूद आदि बनाने वाले कारीगरो को अपने साथ ले गया। यद्यपि 'मदेस' में तोपों बदूको का प्रयोग दो शताब्दी से हो रहा था, पहाड़ मे उनका प्रयोग पहले-पहल पृथ्वीनारायण शाह ने किया। फलतः बड़ी आसानी से उसने उन छोटे-छोटे राज्यो पर विजय प्राप्त कर ली। नेपाल की राजधानी काठमाँड़ौ की दून मे विजयी रूप में पृथ्वीनारायण शाह उसके अनुयायी और वशज 'गोरखा' से आये थे, इसलिए 'गोरखे' कहलाये। धीरे-धीरे गोरखों ने आग्नेयास्त्रों के सफल प्रयोग से पूर्व मे सिक्किम से ले कर पश्चिम मे रावी तक विजय किया। यों हिमालय का यह विस्तृत प्रदेश एक बड़े राज्य के अन्तर्गत हुआ। और इस समस्त राज्य का नाम 'नेपाल' पड़ा, जो पहले केवल काठमाँड़ौ दून के लिए व्यवहृत होता था।

---

१. जयचंद्र विद्यालकार—भारतीय राष्ट्र का विकास ह्रास और पुनरुत्थान, पृष्ठ ४६६।

१८१३-१६ के युद्ध मे अंगरेज़ों से हार कर गोरखों को पश्चिम में कुमाऊँ तक और पूर्व में 'मेची' नदी से पूर्व दार्जिलिङ और सिकिम का प्रदेश छोड़ना पड़ा। तब से गोरखा राज्य की पश्चिमी सीमा काली या शारदा नदी है और पूर्वी सीमा मेची नदी। गोरखा राजवश के कारण सभी नेपाली विशेष कर नेपाली सैनिक गोरखे कहे जाने लगे।

'१८१६ की हार के बाद नेपालियों को अपना आधा राज्य अंग्रेजो को देना और उनका रेजिडेंट राजधानी में रखना पडा था। अंग्रेजों को आशा थी कि दूसरे भारतीय राज्यों की तरह नेपाल को भी रेजिडेंट द्वारा षड्यन्त्रो का जाल फैला कर क्रमशः अपने चंगुल में कर लेंगे। किन्तु प्रधान मन्त्री भीमसेन थापा ने उनकी दाल न गलने दी। युद्ध में नेपालियों की जो नैतिक जीत हुई थी उसके बल पर भीमसेन का अंग्रेजो के तई बर्ताव बराबर अभिमान-युक्त रहा। राज्य आधा रह जाने पर भी उसने उसकी आर्थिक और सैनिक शक्ति पहले से अधिक बढ़ा ली।......उस आय के सहारे भीमसेन ने नेपाल की सेना और शस्त्रभडारों की सख्या और क्षमता बढ़ाई। १८१६ मे १० हज़ार खड़ी सेना थी, १८१६ मे १२ और पीछे १५ हजार हो गई। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष पुरानी सेना के एक अश को विसर्जित कर नई सेना भरती की जाती थी। ऐसे निवृत्त सैनिकों की संख्या जो किसी काल भी बुलाने से फिर आ और शस्त्र-सज्जित किये जा सकते थे, खडी सेना से तिगुनी थी। सैनिक गुणो मे ये सैनिक अंग्रेजो के भाडैत भारतीय सैनिकों से कही बढ़चढ़ कर थे। १८२५ ई० मे भारत के अंग्रेज प्रधान सेनापति ने प्रस्ताव किया कि नेपालियों को ईस्ट इंडिया कंपनी की भाडैत सेना में भरती किया जाय। वह प्रस्ताव यह देख कर नहीं माना गया कि नेपालियो मे देशभक्ति की ऐसी भावना है कि नेपाल से युद्ध छिड़ने पर वे अंग्रेजों की सेवा छोड अपने देशवासियों से जा मिलेंगे।'[२]

१८३४-३६ ई० के थापा-पाडे सघर्ष मे बूढ़े भीमसेन थापा की पदच्युति और आत्महत्या के बाद नेपाल-दरबार को अंग्रेज रेजिडेंट के सामने दबना पड़ा। नवंबर १८४० मे 'रेजिडेंट हौगसन ने रणजग पाडे को

२. जयचद्र विद्यालकार—भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पृ० ६६७-८

पदच्युत करवा अपने अनुकूल मंत्रिमंडल बनवा लिया।'[3] जेठी रानी के पाडे पक्ष को बढ़ावा देने से उस मंत्रिमंडल को जान के लाले पड़ गये।'[4] इधर अंग्रेज़ी सेना अफगानिस्तान मे फॅसी हुई थी। ऐसी दशा मे 'रेजिडेंट हौगसन ने बड़े धैर्य हिम्मत और कुशलता से राजा पर दबाव डाल अगस्त १८४१ तक फिर अपने अनुकूल संयुक्त मंत्रिमंडल बनवा लिया। जेठी रानी रूठ कर बनारस चली, रास्ते मे उसकी मृत्यु हुई।......यों नेपाल के पहलू से अंग्रेजी सरकार निश्चिन्त हुई।'[5] १८४२ मे पाडे पक्ष के उकसाने से पगला युवराज सुरेन्द्रविक्रम, राजकाज में दखल देने लगा। परन्तु अब तक अफगानिस्तान मे अंगरेजी राज के लिए खतरा मिट चुका था, 'एलिनबरो ने अपने रेजिडेंट को लिखा कि नेपाल मे मन्त्रिमण्डल को सहारा देने की नीति अब छोड़ दी जाय और आवश्यकता होगी तो फौज भेजी जायगी। रेजिडेंट के सहारा खींच लेने पर राजा ने अपने को असहाय माना और युवराज निरंकुश हो अत्याचार करने लगा। उस दशा से ऊब कर नेपाल की प्रजा ने पुकार उठाई। १२ दिन अपनी बडी बडी सभाओ मे शान्तिपूर्वक विचार करने के बाद उसने राजा के पास नियमित शासन की माँगें रक्खीं जिन्हे राजा ने स्वीकार किया (७–१२–१८४२)। जनवरी १८४३ मे राजा ने छोटी रानी को शासनाधिकार सौप दिया। परन्तु नेपाल को अपना शासन चलाने के लिए योग्य और दृढ नेता की आवश्यकता थी।'[6] ऐसी दशा मे भीमसेन थापा के भतीजे मातबरसिंह को, जो निर्वासन में था, वापिस बुलाया गया।

'एलिनबरो ने नेपाल पर चढाई की योजना बनवा कर ड्यूक ऑफ वेलिंगटन के पास भेजी थी। वेलिंगटन ने उसे अव्यावहारिक बताया था। इसलिए अंग्रेजी सरकार ने नेपाल को भीतरी षड्यन्त्रो द्वारा वश मे करना आवश्यक माना। रेजिडेंट हौगसन, जिसने अफगान-युद्ध-काल मे अद्वितीय धैर्य और कुशलता से नेपाल मे शान्ति बनाये रक्खी थी, विद्वान् और ऊँची प्रकृति का पुरुष था, जो वैसे षड्यन्त्रो के लिए उपयुक्त न होता। सो एलिन-

---

३. वहीं, पृष्ठ ७२६। ४. वहीं पृष्ठ ७२८।
५. वहीं, पृष्ठ ७२८ ६. वहीं, पृष्ठ ७३६-३७।

बरो ने उसे पदच्युत कर हेत्री लारेंस को, जो उसी युद्ध में पेशावर मे अपनी षड्यन्त्रदक्षता दिखा चुका था तथा मातबर को भी वहीं से जानता था, रेजिडेंट बना कर भेजा (सित० १८४३)। मातबर का सगा भानजा जंगबहादुर १८३९–४० से अंग्रेजों के संपर्क में आ चुका था। लारेंस उसे बढ़ावा देने और उसके द्वारा अपना खेल खेलने लगा।'[७]

१७ मई १८४५ की 'रात राजा-रानी ने प्रधानमन्त्री मातबर को महल में बुलाया और उसके भीतर पहुँचने पर जनाने से आई गोलियाँ उसके सिर और देह मे लगीं, जिससे वह गिर पड़ा। वे गोलियाँ जगबहादुर ने चलाई थीं।'[८]

'मातबरसिंह की हत्या के बाद नेपाल मे फिर फतहजग चौतरिया के प्रधानमन्त्रित्व मे संयुक्त मन्त्रिमण्डल बना। अभिमानसिंह राणा, गगनसिंह खवास और दलभंजन पांडे अन्य मन्त्री थे। सेना का कार्य जंगबहादुर को सौंपा गया, पर उसे बाजाब्ता मन्त्रिपद नहीं मिला। गगनसिंह पर रानी की विशेष कृपा थी।

'जिस निर्घृणता से जगबहादुर ने अपने मामा की हत्या की उसे देख अंग्रेजो का उसपर भरोसा बढ गया। उसे उन्होने शस्त्रास्त्र दिये और उसके द्वारा अपनी नीति को चरितार्थ करने के लिए उसका मार्गदर्शन किया। २४ सितम्बर १८४६ को रात १० बजे गगनसिंह अपने घर मे पूजा करता था कि खिड़की मे से एक गोली ने आ कर उसका काम तमाम कर दिया। यह भी जग का काम था। पर झुँझलाई हुई रानी ने दूसरो पर सन्देह किया और उलटा जग से ही सलाह ली कि क्या किया जाय। उसकी सलाह से उसने उसी रात राजा और सब सरदारों को काठमांडू के कोट मे बुलाया। किसी को पता न था कि हम क्यो बुलाये गये हैं इसलिए सब निहत्थे आये, पर जग ने अपनी सेना बाहर तैयार रक्खी। इसके बाद उसने रानी को उभाड़ा और ऐसा वातावरण पैदा किया जिससे वह अपनी सेना का उपयोग कर सके। वीरकिशोर पांडे नामक युवक को गगनसिंह की हत्या के सदेह में अभियुक्त बना कर रानी की आज्ञा से हथकड़ी बेड़ी पहना कर वहाँ लाया गया था।

---

७. वही, पृष्ठ ७३७-३८। ८. वहीं, पृष्ठ ७३८।

'राजा ने रानी को समझाने का यत्न किया कि अभियुक्त को सफाई का अवसर देना चाहिए, पर वह न मानी। विवाद बढ़ा तो राजा वहाँ से चुपचाप चला गया। जंगबहादुर ने तब रानी को और उभाड़ा और रानी ने अभियुक्त को वहीं मारने का हुक्म दिया। फतहजंग चौतरिया तथा अभिमान राणा ने कहा इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। जगबहादुर ने दोनों मन्त्रियो से आग्रह किया कि रानी की बात माने, पर उन्होंने कहा कि अभियोग का ठीक ठीक विचार होना चाहिए और अभियोग सिद्ध हो तभी दड मिलना चाहिए। रानी तब उनपर भी बिगड़ी और वीरकिशोर पर स्वयं तलवार चलाने को तैयार हुई। दोनों मन्त्रियों और जग ने उसे रोका। तब वह ऊपर की मंज़िल को चढ़ी, वे उसके पीछे पीछे जाने लगे। उसके ऊपर जाते ही जगबहादुर के सैनिकों ने गोलियाँ चलाई और फतहजंग को वही गिरा दिया। उसके बाद वहाँ उपस्थित ३० सरदारो और उनके १०३ अनुचरो का उन्होने वहीं संहार कर दिया, जिनमे जैथक पर अग्रेजों को हरानेवाला रणजोरसिंह थापा और उसके दो भाई भी थे। जंगबहादुर प्रधानमंत्री और प्रधान सेनापति बन बैठा।

'डेढ़ मास बाद उसने १३ और सरदारों का, जो मुख्यतः बसनैत वंश के थे, वध किया। दिसम्बर मे राजा बनारस भाग गया। जगबहादुर ने तब रानी को भी भगा दिया। राजा ने नेपाल तराई पर चढ़ाई की जो विफल हुई। अगले वर्ष जगबहादुर ने उसे पदच्युत कर पगले युवराज सुरेन्द्रविक्रम को गद्दी दे दी (१२-५-१८४७)। राजा ने फिर चढ़ाई की और कैद हुआ। सुरेन्द्रविक्रम से जंग ने कुछ काल बाद सनद लिखवा ली कि जंग के वंश में प्रधानमन्त्री पद स्थिर कर दिया गया। जग ने यह नियम बाँधा कि उसके बाद उसके भाई क्रम से शासन करेंगे और फिर सब भाइयों के बेटे आयुक्रम से। उसने अपने को महाराजा और राणा कहना भी शुरू किया। इसलिए उसकी चलाई पद्धति राणाशाही कहलाई।'[९]

'जंगबहादुर की १८७६ में मृत्यु होने पर उसके दो भाई बचे थे— रणोद्दीप और धीरशमशेर। रणोद्दीप तब नेपाल का प्रधान मन्त्री और धीर-

---

९. वहीं; पृ० ७४६-७।

शमशेर प्रधान सेनापति बना। ......१८८४ में धीर शमशेर चल बसा।

'आंग्ल-नेपाल युद्ध के बाद साम्राज्यलिप्सु अंग्रेज नेपाली सैनिको पर घात लगाये बैठे थे और उन्हें अपनी भाड़ैत सेना मे भरती करने को तरसते थे। पर जगबहादुर द्वारा नेपाल में अपना पिट्ठू शासन खड़ा कर लेने पर भी उनकी वह आकांक्षा तृप्त न हुई थी। जग अपनी सेना की सेवा अंग्रेजी साम्राज्य के लिए सौंपने को सदा तैयार रहता, पर अंग्रेजों को उस रूप में नेपाली सेना पर भरोसा न था। वे चाहते थे अपनी भाड़ैत भारतीय सेना मे नेपाली सैनिकों को सीधे भरती कर सकें। जगबहादुर का बड़ा बेटा जगतजंग इसके विरुद्ध था। रणोद्दीप के बाद जगतजग की ही प्रधानमन्त्री बनने की बारी थी। उत्तराधिकार के क्रम से धीरशमशेर का सबसे बड़ा बेटा छठे और दूसरा तीसरा दसवें बारहवे स्थान पर थे। वास्तविक दशा मे उनकी बारी शायद कभी न आती। धीर के बेटों का स्वार्थ यो जंगबहादुर के बेटों को निपटा देने मे था, और अंग्रेजी सरकार का सहारा पाने के लिए वे उसे नेपाल मे खुली सेना-भरती करने देने को तैयार थे। इस दशा मे २५-११-८५ की रात उन्होने अपने चाचा रणोद्दीप की, जो उन्हे बड़े स्नेह और भरोसे से अपने पास बिठा कर बात कर रहा था, एकाएक हत्या कर डाली और उसके और जंग के बेटो का भी काम तमाम कर दिया। धीर का बड़ा बेटा बीरशमशेर प्रधान मन्त्री बना।

'रणोद्दीप की हत्या बीर के दो छोटे भाइयो खड्गशमशेर और चन्द्र-शमशेर ने स्वय गोली मार कर की थी। दो बरस बाद इन्होने अपने भाई बीर को भी निपटाने का यत्न किया, पर इनका भेद खुल गया। बीर ने खड्ग को कैद मे डाला और चन्द्र को सावधान कर छोड दिया।

'इसके बाद १९०० ई० तक बीरशमशेर ने निर्विघ्न शासन किया। उसकी मृत्यु पर उसका भाई देवशमशेर प्रधान मन्त्री बना। देव के विचार प्रगतिशील थे। वह नेपाल मे प्रजा-प्रतिनिधियो की शासन-परिषद् स्थापित करने की बात भी करता था। वह कुछ ही मास शासन कर पाया था कि उसके सगे भाई चन्द्रशमशेर ने एक दिन उसे धोखे से पकड़ कर कैद कर लिया, और स्वय प्रधान मन्त्री बन बैठा।

'जंगबहादुर ने अंग्रेजी साम्राज्य के सहारे छल और हत्या से शासन हथियाने का जो नमूना चलाया था, उसके वंश के लोगों का आपसी बर्ताव भी उसके साँचे मे ढले बिना नहीं रह सकता था। और रणोद्दीप के तजरबे के बाद चूँकि उस पद्धति में प्रत्येक प्रधान मन्त्री को भी डर रहने लगा कि किसी भी दिन एकाएक मै अपने सर्वस्व से हाथ धो सकता हूँ, इसलिए वह अपने शासन-काल में अधिक से अधिक धन प्रजा से चूस कर नेपाल के बाहर जमा करने और अंग्रेजो सरकार को प्रसन्न रखने के लिए अधिक से अधिक तत्पर रहने लगा।'[१०]

'चन्द्रशमशेर ने १९२९ तक शासन किया।...कहते हैं, उसने अपने २९ बरस के शासन मे ५० करोड़ रुपया अपने सात बेटो के लिए नेपाल के बाहर जमा किया, भीतर उन्हें जो जागीरें दी सो अलग। नवम्बर १९२९ मे उसकी मृत्यु पर उसका भाई भीमशमशेर उत्तराधिकारी हुआ। वह शासन मे कुछ सुधार करना चाहता था, पर १९३२ मे उसकी विष से मृत्यु हुई और सबसे छोटा भाई युद्धशमशेर प्रधान मन्त्री बना।'[११]

१८४६ ई० मे राणाशाही की स्थापना से राज्यशक्ति राणा प्रधान-मन्त्रियो के हाथ मे चली गई थी। राजा और युवराज महल मे उनके कैदी थे। इन कैदी राजा-युवराजों और देवशमशेर ने स्वतन्त्र होने तथा अन्य सरदारों, प्रजा के प्रतिनिधियों और निर्वासित नेपालियो ने राणाशाही का अन्त कर राजा को स्वतन्त्र और उत्तरदायी शासन स्थापित करने के प्रयत्न लगातार जारी रक्खे, पर वे विफल होते रहे। प्रत्येक प्रयत्न की विफलता पर मृत्यु निर्वासन या आजीवन कैद के दड मिलते रहे। 'चद्र (शमशेर) ने प्रजा में किसी को चूँ भी करते पाया तो कुचल दिया; अपनी स्त्री पर भी चौकसी रक्खी!'[१२]

युद्धशमशेर के शासनकाल मे '१९३८ मे नेपाल के भीतर और बाहर प्रजा का आन्दोलन उठा। पटने मे नेपाली प्रजापरिषद् स्थापित हुई जिसका ध्येय था महाराजा की छत्रच्छाया मे उत्तरदायी शासन स्थापित करना। शुक्रराज शास्त्री

---

१०. वहीं, पृष्ठ ८०७-९। ११. वहीं, पृष्ठ ८९८।
१२. वहीं, पृष्ठ ८९८।

ने काठमांडू में गीता का प्रवचन कर भाषण स्वतंत्रता का अधिकार सिद्ध करना चाहा। उन्हें छह बरस की कैद मिली। अक्तूबर १६४० मे नेपाल मे बहुत सी गिरफ्तारियाँ कर एक मुकदमा चलाया गया, जिसके अन्त में शुक्रराज सहित चार व्यक्तियों को मृत्यु, १३ को आजीवन कैद और २८ को ६ से २० बरस तक की कैद का दंड दिया गया। २६ जनवरी १६४१ को शुक्रराज और धर्मभक्त को फाँसी दी गई, (और ४८ घटे बाद) उनके दो साथी (गगालाल और दशरथ चन्द्र) गोली से मारे गये। इन चारों की लाशो पर यह विज्ञापन चिपका कर कि नेपाल मे विद्रोहियों की ऐसी गति होती है २४ घटे प्रदर्शन किया गया!'[13]

'युद्धशमशेर ने संघर्ष से थक कर और जमाने का रुख देखते हुए दिसम्बर १६४५ मे इस्तीफा दे दिया। तब भीमशमशेर के बेटे पद्मशमशेर को राणो की तीसरी पीढ़ी मे जेठा होने से वह पद मिला। नेपाल की जनता अब शासन-सुधारों के लिए खुली माँग करने लगी। पद्म भी अपने पिता की तरह सुधार करना चाहते थे और उन्होने जून १६४७ मे एक सुधार-समिति बनाई तथा भारत की नई कांग्रेसी-सरकार से विधान के दो पडित उसमे भाग लेने को बुलवाये। कानून के इन पडितों ने जो शासन-योजना बनाई उसके अनुसार राणा वश का ही व्यक्ति प्रधान मन्त्री होता और वह चाहे जब शासन-विधान को स्थगित कर सकता, पर उसके साथ कुछ जनता के प्रतिनिधि मन्त्री भी रहते। जनवरी १६४८ मे वे सुधार घोषित किये गये। पर इस बीच पद्म की अपनी स्थिति कठिन हो गई थी। उनके चचेरे भाई—चन्द्रशमशेर के सात बेटे—उनके रास्ते मे आड़े आये थे, क्योकि उनके बड़े निहित स्वार्थ नेपाल की दशा ज्यों की त्यों बनाये रखने मे थे। मार्च १६४८ में पद्म दिल्ली गये, प्रकटतः यह देखने को कि भारत की नई सरकार से उन्हें क्या सहायता मिल सकती है। महीना भर वे वहाँ रहे, पर वहाँ उन्हें किसी ने न पूछा। अप्रैल '४८ में पद्मशमशेर ने निराश हो नेपाल लौटे बिना इस्तीफा दे दिया। तब चद्रशमशेर के जेठे बेटे मोहन ने नेपाल का शासन

---

१३. वहीं, पृष्ठ ८६८।

ह्रास और पुनरुत्थान की—कहानी। १७४२ (पृथ्वीनारायण शाह के अभिषेक) से १८४६ (गगनसिंह की हत्या) तक नेपाल के इतिहास का गोरखा युग है और १८४६ से १९५१ तक राणा युग। गोरखा युग मे नेपाल की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। भौतिक उन्नति के साथ साथ नेपालियों ने सभी मानवीय गुणों का विकास किया। 'सर यदुनाथ सरकार ने श्री ज्ञवाली के ग्रन्थ (अमरसिंह थापा हिन्दी अनुवाद) के प्राक्कथन में लिखा है कि (इतिहास में) अमरसिंह थापा का पद मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के साथ होना चाहिए। सचमुच अमरसिंह मे यदि महाराणा प्रताप की तरह बड़ी से बड़ी कठिनाइयों में भी अपने आदर्श को चिपटे रहने की दृढता थी, तो उसमें महाराणा सांगा की सी विजिगीषा और जूझने की क्षमता तथा महाराणा कुंभा की सी महत्त्वाकांक्षा और ऊँची आदर्श-प्रेरणा भी थी। यह कहना चाहिए कि नाना फडनीस की मृत्यु के बाद से नाना साहब धोंधोपन्त और अजीमुल्ला के इतिहास के रंगमंच पर प्रकट होने तक अर्थात् सन् १८०० और १८५५ के बीच भारतीय मनुष्यता का उच्चतम स्तर अमरसिंह थापा के चरित में दिखाई देता है। भीमसेन और माथब्बरसिंह थापा के चरित अभी पूरे प्रकाश में नहीं आये। पर उनकी भी जो झलक हमें मिली है उसके आधार पर यह प्रतीत होता है कि सन् १८०० और १८४५ के बीच भारत का मनुष्यत्व नेपाल में ही सब से ऊँची सतह पर रहा।'[१५]

१८१३-१६ के आंग्ल-नेपाल युद्ध का विवरण देते हुए इतिहासकार लिखते हैं—'न केवल नालापानी मे प्रत्युत इस सारे युद्ध में नेपालियो के सजगपन और जोरदार आक्रमण शैली का आतंक अंग्रेजी सेना पर छा गया। उनके गौरवपूर्ण बर्त्ताव से भी उनके शत्रु प्रभावित हुए—शत्रुओं को अपने साथियों के शव उठा लेने का अवसर वे बराबर देते तथा उन शवो की जेबें स्वयं कभी न टटोलते।'[१६] और उनके शत्रु उनके इन गुणों से इतने

---

१५. जयचंद्र विद्यालंकार—भारतीय राष्ट्र का विकास ह्रास और पुनरुत्थान, पृष्ठ ५२०-१।

१६. जयचंद्र विद्यालंकार—भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पृष्ठ ६८०।

प्रभावित हुए कि देहरादून में डी० ए० वी० कालेज-के छात्रावास के पास से हो कर जो सड़क रिस्पना रौ को पार कर नालापानी पहाड़ पर चढ़ती है, उसके ५०-६० गज उत्तर रिस्पना पार पहाड़ के नीचे अग्रेज सेनापति 'जिलेस्पी (जिसने उस युद्ध मे वीरगति पाई थी) और (नेपाली सेनानायक) बलभद्र (थापा) की स्मारक दो सीधी-सीधी समाधें अग्रेजो ने साथ साथ खड़ी कीं। दक्खिन तरफ की समाध के पूरब ओर यह लेख खुदा है—

THIS IS INSCRIBED
AS A TRIBUTE OF RESPECT
FOR OUR GALLANT ADVERSARY
BULBUDDER
COMMANDER OF THE FORT
AND HIS BRAVE GOORKHAS
WHO WERE AFTERWARDS
WHILE IN THE SERVICE
OF RUNJIT SINGH
SHOT DOWN IN THEIR RANKS
TO THE LAST MAN
BY AFGHAN ARTILLERY

'अर्थात्—यह लेख हमारे वीर प्रतिद्वन्द्वी गढ़ के नायक बलभद्र और उसके उन बहादुर गोरखों के प्रति आदर का भाव प्रकट करने के लिए खोदा गया जो बाद में रणजीतसिंह की सेवा मे रहते हुए अफगान तोपखाने के मुकाबले में सब के सब अपनी पाँतो में जूझते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।'[१७]

विजेता द्वारा पराजित शत्रु के सम्मान मे स्थापित किये गये इने गिने स्मारको मे देहरादून का यह स्मारक अन्यतम है। यह पराजित शत्रु की कीर्ति में तो चार चाँद लगाता ही है, विजेता की विशाल-हृदयता का भी द्योतक है। अकबर ने भी जयमल और फत्ता की हाथियो पर चढ़ी मूर्तियाँ बनवा कर

---

१७. वहीं पृ० ६६८–७०० ।

आगरे के किले के बाहर स्थापित कराई थीं।

गोरखा युग में नेपाल ने मानवीय गुणों का अधिकतम विकास किया और तत्कालीन भारतीय मनुष्यता का उच्चतम स्तर अमरसिंह थापा के चरित में दिखाई देता है तो राणा युग में नेपाल का घोरतम पतन हुआ और उसका निम्नतम स्तर राणाशाही के संस्थापक जंगबहादुर के चरित में दिखाई देता है। और जंगबहादुर के चरित्र का वह विष राणाशाही की समस्त परम्परा में व्याप्त रहा। अंग्रेजों ने अपने गुर्गों को देशभक्त और महापुरुष चित्रित किया। हमारे इतिहास मे ऐसे दो सबसे कलंकी चरित हैं—सर सैयद अहमदखाँ और राणा जंगबहादुर। आज भी हमारे बच्चों को महापुरुषों की जीवनियों में सर सैयद अहमदखॉ की जीवनी पढ़ाई जाती है, शहीद मौलवी अहमदशाह की नहीं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने मनोरंजन पुस्तक माला नाम से महापुरुषो की जीवनियो में राणा जंगबहादुर की जीवनी भी प्रकाशित की। प्रेमचन्द ने 'जुगुनू की चमक' कहानी में जंगबहादुर को महापुरुष और सच्चा क्षत्रिय चित्रित किया और प्रेमचन्द द्वारा अंकित जंगबहादुर का चरित्र हिन्दी-पाठको के मस्तिष्क मे स्थायी घर बना चुका है। लेकिन प्रेमचन्द द्वारा अंकित जगबहादुर का चरित्र कितना असत्य और अस्वाभाविक है इस तथ्य को समझने की क्षमता नेपाल के इतिहास का गंभीर अध्ययन किये बिना प्राप्त नही हो सकती। वास्तविकता तो यह है कि प्रेमचन्द को नेपाल के इतिहास और भूगोल का रंचमात्र भी ज्ञान न था। पर खेद यही कि उन जैसे मूर्धन्य लेखक ने लेखक की जिम्मेदारी का जरा भी ख्याल किये बिना ऐसी शेखचिल्ली की कहानी लिख कर हिन्दी साहित्य के मत्थे मढ़ दी। उनकी इस कहानी मे रानी जिन्दॉ (जिसे कहानी मे चंद्रकुँवरि नाम दिया गया है) और जंगबहादुर अयोध्या से 'तीव्रगामी' घोड़ों पर सवार हो कर चले। 'तराई पार करके नेपाल की भूमि मे प्रविष्ट हुए।' 'जेठ का महीना मार्ग मे ही समाप्त हो गया। वर्षा ऋतु आई।'''धान की क्यारियॉ पानी से भरी हुई थीं। किसानो की स्त्रियॉ धान रोपती थीं'''।' अयोध्या से किसी भी रास्ते नेपाल की भूमि में प्रविष्ट हाने मे ५-७ दिन से अधिक नहीं लग सकते, परन्तु उन्हे लगे दो महीने! प्रेमचन्द ने जगबहादुर को बूढ़ा बताया है और रानी को शरण देने का एकमात्र कारण

उसका परमोदात्त गुण शरणागत-वत्सलता। जिंदॉ का बाप रणजीतसिंह की सेना में साधारण घुड़सवार था। उसके रूप पर लुभा कर ही रणजीत ने दर्जनो रानियो और रखेलो के होते हुए भी ५० वर्ष से ऊपर की उम्र मे उससे विवाह किया था। जिंदॉ के भागने की घटना १८५० के लगभग की है। जगबहादुर उस समय बूढा न था। वह १८७६ मे मरा, उस घटना के समय लगभग ५० वर्ष का रहा होगा। सो रानी को आश्रय देने का कारण जंगबहादुर की रूप-लोलुपता और कामुकता भी हो सकती है। उसने रानी को रखेल बना कर रक्खा था, यह प्रसिद्धि काठमाडू मे आज भी है। 'नेपाल की वो बेटी' मे बीच बीच मे जहॉ कही जंगबहादुर और अन्य राणा प्रधानमन्त्रियो का उल्लेख हुआ है वहॉ उनका जो चित्र पाठको की ऑखो के आगे आता है वह प्रेमचन्द के अकित चित्र से बिलकुल भिन्न है, परन्तु है वह पूर्णतया इतिहास-सम्मत, उसमे जरा भी अस्वाभाविकता नही है, यही दिखाने के लिए नेपाल का गत दो शताब्दी का इतिहास ऊपर दिया गया है।

'नेपाल की वो बेटी' के कथानक का काल है सन् १९२०-२३ ई०—चंद्रशमशेर के कठोरतम शासन का काल—नेपाल के घोरतम पतन का काल। जहॉ उसमे महेद्र हमाल, राजा हरिबहादुर शाह और मुखिया जयशकर पत जैसे अत्यन्त पतित और नीच पात्र पाये जाते हैं वही हरिशकर और रूपबहादुर जैसे उदात्तचरित्र भी। हरिशकर का चरित्र स्वाभिमानी वीर युवक का चरित्र है जो परिस्थितियों से समझौता करना नही जानता, जूझना जानता है; जो टूट जाता है, पर मुडता नही, जो आगा पीछा सोचे बिना आन पर मिटना जानता है; जिसके लिए वर्तमान की सत्ता है, भविष्य की नहीं है। वह किसी भी अन्याय के सामने झुके बिना उसका प्रतिरोध करता है, फलाफल की चिन्ता नही करता, वह गजारूढ बंदूकधारी राजा का मुकाबला पैदल कुल्हाड़े से करता है, और मर्द की मौत मरता है।

उपन्यास के सभी मुख्य नारी चरित्र—हेमा, कुसुमा, पार्वती और जयशंकर की माइली पत्नी अबला होते हुए भी सबला हैं। कदाचित् हिंदी-भाषी क्षेत्र के पाठकों को यह कुछ अखरे, अस्वाभाविक लगे। परन्तु नेपाल की महिलाओं के लिए यह नितान्त स्वाभाविक है। गोरखा युग में बराबर

कोई न कोई रानी या राजमाता राजस्थानीय (नायब) रही। नेपाल की महिलाएँ इस युग में बराबर पुरुषों के कंधे से कंधा भिड़ा कर शत्रु से जूझती रही। 'रणजोर ने जब...जैथक छोड़ा तब वहाँ १५०० नेपाली सैनिक और १००० स्त्री बच्चे थे, पर उनके गढ़ मे अन्न एक दिन का भी नही था।'[१८] नालापानी के जिस युद्ध का ऊपर उल्लेख हुआ है उसका वर्णन करते हुए इतिहासकार लिखते हैं—

'बलभद्र का देहरादून वाला अड्डा जिसे अंग्रेजों ने गढ़ या किला माना, वास्तव मे सालो की पॉत से घिरी पत्थरों की बाड़ थी। नेपाली उसके पीछे ऐसे सजग डटे थे कि अंग्रेजी सैनिक उनकी ऑख बचा कर आगे नहीं जा सकते थे। अग्रेज सेनापति ने पहाड़ के सामने तोपे लगा दी। तोपो की मार जहॉ 'गढ़' मे छेद करती वहॉ उस मार के बीच नेपाली उसकी मरम्मत कर लेते।

'नेपोलियन के साथी को जावा मे हराने वाले जिलेस्पी से यह सहा न गया कि मुट्ठी भर हिन्दुस्तानी (जिलेस्पी के पास साढ़े तीन हजार सेना और तोपे थी, बलभद्र के पास कुल २५० सैनिक और 'जिंजल' बन्दूकें।) उसका यो सामना करें। ३ दिन मे पहाड़ का पूरा घेरा डाल कर उसने 'गढ़' पर हल्ला बोला (३१-१०-१८१४)। तोप की मार से गढ़ मे जहॉ छेद हो गया था वही अपने सैनिकों को ले जाने के लिए वह उनके आगे तलवार घुमाता उन्हे बढ़ावा देता चल रहा था। किन्तु उस छेद मे अपने जीते जी शत्रु को न घुसने देने का प्रण करके नेपाली वीरांगनाएँ आ डटी थी। उनमे से किसी की चलाई गोली कलेजे मे खा कर जिलेस्पी ने वही वीरगति पाई।...

'जिलेस्पी का उत्तराधिकारी महीना भर घेरा डाले पड़ा रहा। नई कुमुक आने पर २७ नवंबर को 'किले' पर फिर हल्ला बोला और फिर उसी तरह धकेले गये। इसके बाद उन्होंने नेपालियो की पानी लेने की जगह स्थानीय लोगो से मालूम की। उस पहाड के नीचे नालापानी के सुन्दर झरने से नेपाली पानी ले जाते थे। अंग्रेजो ने उस झरने पर तोपो का मुँह

---

१८. जयचन्द्र विद्यालंकार—भारतीय राष्ट्र का विकास ह्रास और पुनरुत्थान, पृ० ५१६।

७२ घंटे लगातार खोले रक्खा। ३० नवम्बर को तोपें चुप हुईं, तब गढ़ से बंदूकें चलना भी बन्द हुआ, और ७० आदमी हाथ में कृपाण और कंधे पर पत्थरकला लिये, कमर में खुखरी और सिर पर चक्र बाँधे, और स्त्रियाँ बच्चों को पीठ पर लपेटे, नालापानी के मीठे झरने पर उतरे, और वहाँ अपनी प्यास बुझा कर अंग्रेजी पाँत के बीच से राह काटते चले गये! स्तब्ध अंग्रेजी सेना ने उन्हें साफ निकल जाने दिया और तब तीसरी बार गढ़ पर हल्ला बोल कर उसे जमींदोज कर दिया।' [१९]

तो जब राजा हरिबहादुर शाह का राजकुमार हरिशंकर को धमकी दे गया तो हरिशकर ने अपनी पत्नियो से कहा—'मै यह देखना चाहता हूँ बने की आमाँ, कि कौन माई का लाल अपनी आमाँ की गोद से मुझे अलग फेंकने की हिम्मत करता है। और कौन हरामी राजा-रजवाड़ मेरे बाप की इस जायदाद से मुझे भगाता है, मुझे अलग करता है! या तो उस भगाने वाले को मटियामेट कर दूँगा! या खुद अपनी आमाँ की प्यारी गोद मे लोट कर उसकी मिट्टी में मिल जाऊँगा! मैने जो कुछ किया है ठीक किया है! अब तुम दोनो बने को ले कर पहाड़ मे चली जाओ बने की आमाँ!' उस समय हेमा का यह उत्तर कितना स्वाभाविक है—'छी! क्या बोलते हो तुम भी बने के बा! मै तुम्हें अकेला छोड़ कर चली जाऊँ यहाँ से गाँव की ओर! छी! क्या समझ रखा है तुमने भी!' और तब उसके अपनी सौत से यह पूछने पर—'बहिनी! क्या विचार है तेरा? बने को लेकर तू जायगी आमाँज्यू के पास?' कुसुमा का उत्तर भी कितना स्वाभाविक है—'दीदी! यह क्या कहती हो तुम? जब जियेंगे, सब साथ जियेंगे! मरेंगे, सब साथ मरेंगे! और जहाँ रहेगे, सब साथ रहेंगे! इस लोक मे भी, परलोक मे भी! बने के लिए तो भगवान...' और उतना ही स्वाभाविक है राजा और उसके अनुचरों के आक्रमण करने पर हेमा और कुसुमा का पति के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर युद्ध करना।

इस उपन्यास की नायिका है हेमा। या यों कहिए कि नायक-प्रधान उपन्यासों की घिसी-पिटी लकीर को छोड़ कर लेखक ने यह नायिका-प्रधान

---

१९. जयचद्र विद्यालंकार—भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पृ० ६७९–८०

उपन्यास हमें दिया है। इस उपन्यास की प्रधान पात्री है हेमा। और वह हेमा किसी राजवंश या अभिजात वर्ग की कुमारी नहीं, एक निर्धन ऋणग्रस्त गुरुङ किसान की अनपढ़ परन्तु अनुपम सुन्दरी बेटी है। कथा के आरम्भ में तरुणी विधवा के रूप में उससे हमारा परिचय होता है। लेखक उसके प्रथम पति प्रेमबहादुर से उसकी प्रणय-लीला का वृत्तान्त देना भूले नहीं हैं। स्वामी शंकराचार्य भारतीदेवी के कामशास्त्र के प्रश्न का उत्तर अनुभव न होने के कारण न दे पाये थे। परन्तु प्रणय और विवाह का वैयक्तिक अनुभव न होने पर भी बलभद्र ठाकुर ने प्रेमबहादुर और हेमा के प्रणय और गांधर्व विवाह का ऐसा सच्चा और सटीक चित्रण कैसे किया यह आलोचकों की खोज का विषय है। बलभद्र ठाकुर की नायिका हेमा न तो बिहारी की नायिका है, न सिनेमा की तारिका, न 'सोसाइटी गर्ल'। वह है नेपाली वीरांगना! वह जंगल में ढोरों को चराती हुई पत्थर पर बैठी गा रही है; प्रेमबहादुर पीछे से आ कर अपने सबल हाथों से उसकी आँखें मूँद लेता है। वह कहती है—'बेशरम! चोर! निरदई! इतने जोर से हाथ गड़ा दिये कि मारे दरद के आँसू आ गया!' ये सब प्रेम-संबोधन नहीं हैं, परन्तु इनमे कितना प्रेम भरा है, यह कोई भुक्त-भोगी ही बता सकता है! वह उठ कर चल देती है; प्रेमबहादुर उसका हाथ पकड़ लेता है; वह कहती है—'छोड़! बेशरम! रास्ता है! कोई हँटारू (राही) देख लेगा!' प्रेमबहादुर हाथ छोड़ कर उसके पीछे-पीछे चलने लगता है। एकान्त निरापद स्थान पर पहुँच कर वह फिर उसका हाथ पकड़ लेता है; अब हेमा प्रतिरोध नहीं करती! कदाचित् लेखक छिपे खडे इस प्रणय-लीला को देख रहे थे! उनके विवाह मे बाधा है जात-पाँत की। प्रेमबहादुर प्रस्ताव करता है—'आज तुम्हें लेने आया हूँ! गाय-बकरी को बाप के घर की ओर विदा कर दो! और चलो, हम दोनों काली तैर कर उस पार चलें!' हेमा के चुप रहने पर वह धमकी देता है—'तुम्हें मेरी कसम! अगर नहीं चलोगी, काली में डूब कर जान दे दूँगा!' हेमा का प्रेम घुट-घुट कर मरने वाला प्रेम नहीं है। वह है स्वस्थ और सबल तरुणी का स्वस्थ प्रेम। वह जात-पाँत की, समाज की, परवाह न कर काली तैर कर अपने प्रेमी के साथ चली जाती है। उसका पिता गांधर्व-

विवाह को स्वीकार कर लेता है। परन्तु जल्द ही हेमा विधवा हो कर पिता के घर लौट आती है। ऐसी अवस्था मे जिम्मावाल की कामुक आँखें उस पर पडती हैं। वह उसके विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देती है। परन्तु जब जिम्मावाल उसके पिता को जाति-च्युत करने मे सफल हो जाता है तो अपने पिता की रक्षा के लिए वह अपने आप को बलि चढ़ा देती है, उसी जिम्मावाल के घर स्वयं जा कर उसकी 'ल्याइता' बन जाती है। परन्तु उसे वह सदा घृणा ही करती रही। जब उसे मालूम होता है कि जिम्मावाल रूपा को भी ल्याइता बनाने के प्रयास मे है तो रूपा के अनिष्ट की आशका से उसका हृदय कॉप उठता है, वह उसे सावधान कर देती है। और एक दिन फिर एक अल्हड़ युवक हरिशकर से उसकी आँखें चार होती हैं। वह जिम्मावाल के घर से भाग निकलती है। उसका अधेड जेठ जयशंकर तरुणी कुसुमा के पति को जेल मे डलवा और मरवा कर उसे अपने घर डालना चाहता है तो कुसुमा उसी से शरण मॉगती है। कुसुमा के दुःख से हेमा का हृदय पसीज उठता है, वह जयशकर के अन्याय के प्रतिरोध मे छाती तान कर खड़ी होती है। अपना सर्वस्व—अपना पति तक—दे कर कुसुमा की रक्षा करती है। और फिर जब उसे जयशकर के पार्वती पर किये अत्याचार का पता लगता है तो वह अपने पति के हाथ में खुकुरी देते हुए कहती है—'लो जी, खून कर दो इस पापी का! गॉव की बला टल जाय! इसके चलते चाहे हम सब बरबाद ही हो जायॅ! हम सब का खून भले ही हो जाय! मगर एक पाप तो टले गॉव के सिर से! इसके चलते कुछ भी हो जाय! फिकर नही! परवाह नही!' जयशकर के साथ हुए संघर्ष के फलस्वरूप हरिशंकर कंगाल हो जाता है, हेमा और कुसुमा उसका साथ नही छोड़ती। तराई के जंगल मे गोठ मे भी उसके साथ जाती हैं। गोठ मे बातचीत के प्रसग मे हरिशंकर कहता है—'हम दाल-भात नही खायेंगे! क्योकि हरामी लोग इसे पसद करते हैं! इसकी परससा करते हैं!' तो हेमा उत्तर देती है—'तो क्या अमीर हरामी लोग ही दाल-भात पैदा करते हैं जो हम न खाये? वाह जी! फूट कर जवान हो गये, मगर मन से बचपना नहीं गया! अकल नही आई! हम गरीब लोग ही तो आखिर मकई भी पैदा करते हैं, कोदो भी, चाउर भी, और दाल भी?

फिर अपनी पैदा की हुई चीज से परहेज रखने से बढ़ कर मूरखताई और क्या होगी भला !...' और जब बुटबल बाजार मे जलेबी खा कर हरिशंकर जलेबी के लालच से 'लाहुरे' बनने का प्रस्ताव करता है तो वह उत्तर देती है—'मगर रूपदाई तो मदेस मे 'लाहुरे' रह कर भी आखिर फिर अपने पहाड़ मे ही लौटा ! अपना मुलुक कैसा भी हो अच्छा होता है ! मदिसे गरीबो को थोड़े ही ऐसी 'जुल्फी' (जलेबी) खाने को मिलती होगी ?' गोठ में 'लाहुरे' के गीत 'ए आमॉ न रोओ ! तुम्हारे लिए पेनसिन कटा कर छोड जाऊँगा' की व्याख्या रूपबहादुर से सुन कर उसकी आँखे भर आती हैं, वह कहती है—'अगर मेहनत मशक्कत करके अपने घर मे ही दो रोटी मिल जाय तो कभी 'लाहुरे' न बनना चाहिए रूपदाई ! अपने घर परिवार को तियाग कर सिरफ पेट की खातिर, और सो भी परायो की खातिर दूर देश मे जान गँवाने का डड भगवान किसी को भी न दे !'

पार्वती पतिता करार दी जाती है। वह काशी की ओर प्रस्थान करती है। परन्तु तराई के जगल तक पहुँचते-पहुँचते हेमा के गोठ के पास ही वह झाड़ी मे शिशु को जन्म देती है। हरिशकर से सूचना पा कर हेमा और कुसुमा दौड़ कर वहाँ पहुँचती हैं। प्राणि-मात्र के दुख से पसीज उठने वाला हेमा का हृदय उस दुखिया को देख कर हाहाकार कर उठता है। समाज द्वारा परित्यक्ता उस 'पतिता' को वह सगी बहन की तरह अपना कर उसे उठा कर अपने गोठ मे लाती है जहाँ पार्वती दम तोड देती है। तब तो हेमा के धैर्य का बाँध टूट जाता है ! वह जमीन पर हाथ पैर पटक कर चिल्ला-चिल्ला कर रोती है ! पर शीघ्र ही पार्वती के दुःख के मूल कारण पापी जयशंकर के पाप को स्मरण कर उसका शोक क्रोध में बदल जाता है, वह उससे बदला लेने को उतारू हो जाती है। तगाधारी ब्राह्मण के ऐसे पापों को देख उसे जनेऊ से घृणा हो जाती है, वह लपक कर पति का जनेऊ तोड देती है और तोड देती है सदियों की समाज की उन शृखलाओ को जिनके कारण उनका 'भांसा' पृथक्-पृथक् था। विद्रोहिणी हेमा सीना तान कर समाज की रूढियों के विरोध मे खड़ी हो जाती है, और साथ ही उनकी रसोई एक हो जाती है। पार्वती के सद्योजात मातृहीन शिशु को वह अपने गर्भ-जात शिशु के स्नेह से पालती है।

भगवान ने उसकी कोख न भरी, परन्तु हृदय उसका वात्सल्य से भरा है। मृगों पर चलती गोली का शब्द सुन कर और यह सोच कर कि मृगों में कई बच्चे भी होंगे, उसका हृदय रो उठता है। जयबहादुर उसके पति की हत्या करने को खुकुरी निकालता है; हेमा उस पर गाज की तरह गिरती है, उससे खुकुरी छीन कर उसे पकड़ लेती है। जयबहादुर गिडगिड़ा कर उससे प्राणों की भीख माँगता है और अन्त में कहता है—'मेरे बाल-बच्चों का ख्याल करके मुझ पर तो दया करो बहिनी!' बाल बच्चों का नाम सुनते ही वह क्रुद्ध सिंहिनी तुरन्त उसकी 'बहिनी' बन जाती है। प्राणदान तो उसे देती ही है, अपने हिस्से की रोटियाँ भी उसे खाने को दे देती है। कदाचित् ऐसे हृदयों के लिए ही कवि ने कहा था—'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।'

और अन्त मे जब उसका पति राजा को चुनौती दे कर उससे लड़ने को खड़ा होता है तो वीरांगना हेमा अपने पति के कधे से कंधा भिड़ा कर राजा के हाथी पर आक्रमण करती है। युद्ध में उसका पति और सौत वीर-गति पा जाते हैं, और वह अपने पति और सौत के हत्यारे को गला घोट कर मारती है। माँ-बाप उसके पहले ही छूट चुके थे। मातृ-तुल्य सास को छोड़ कर पति और सौत के साथ गोठ में आई थी। अब प्राणाधिक पति और प्राणाधिका सौत भी उसे छोड़ गये! हेमा दुबारा विधवा हो गई! इस भरे-पूरे ससार में अकेली रह गई! परन्तु उसी समय मिला उसे एक धर्म-भाई! और था उसका धर्म-शिशु! जिसे पालने के लिए जीने का अनुरोध उसकी कुसुमा मरते समय उससे कर गई थी। 'बने' के लिए उसे जीना था, परन्तु 'राज-न्याय' उसके प्राणो का ग्राहक था! 'धने' और 'बने' को ले कर वह उसी रात नेपाल छोड़ 'मदेस' मे 'लाहुरे' बनने को चल पड़ी! उपन्यास के आरंभ मे हेमा विधवा थी, अन्त मे भी वह विधवा है!

हेमा के रूप मे बलभद्र ठाकुर ने हमे नायाब मोती दिया है। ऐसा सबल और स्वस्थ नारी-चरित्र हिन्दी साहित्य में दूसरा नहीं है।

प्रयाग
वसन्त पचमी,
२०१५ वि०

—इन्द्रचन्द्र नारंग

पाठकों से....!

सन् १९५४ के दिसम्बर से सन् १९५६ के फरवरी के आरम्भ तक लगातार मै पश्चिमी नेपाल के विभिन्न भागों की यात्राएँ करता रहा, जगह-जगह रुकता रहा। और इस दीर्घ यात्रा के अन्तिम आठ महीने मैंने नेपाल की राजधानी 'काठमॉडौ' (काठमांडू) एवं उसकी उपत्यका मे व्यतीत किये। इससे पूर्व मैं पूर्व में दार्जिलिङ एवं सिक्कम के भारतीय अंचलों के नेपाली जीवन का अध्ययन भी बहुत कुछ कर चुका था। इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग तीन वर्ष के लबे अध्ययन-अनुभव के आधार पर लिखते-लिखते नेपाली समाज के जीवन पर मैं पूरे पॉच उपन्यास लिख गया। उन्हीं मे से "नेपाल की वो बेटी" प्रथम उपन्यास है।

इस उपन्यास के कथानक का काल सन् १९२०-२३ ईस्वी है और विषय है पश्चिमी नेपाल के एक विशेष क्षेत्र—काली गंडकी उपत्यका—का ग्रामीण पहाडी जीवन। नेपाल के सैकड़ों मील लम्बे समस्त पश्चिमी भाग का ठेठ पहाड़ी ग्रामीण जीवन इस उपन्यास मे चित्रित जीवन से भिन्न नहीं है। सामन्ती शासन एवं सस्कृति की बेड़ियों मे जकडा हुआ वह जीवन जैसे जड़वत् आज भी जहॉ-का-तहॉ मौजूद है। हॉ, सन् १९५०-५१ की राजनीतिक क्रांति मे राणाशाही के बाह्य ध्वस के बाद अवश्य कुछ-कुछ जागरण का चिह्न मुझे दिखाई दिया। किन्तु समाज के ढॉचे मे कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया, और न शासन की पूर्व-निर्मित शृंखला मे।

नेपाली जीवन पर शेष चार उपन्यासो की रचना भी उत्तरवर्ती काल-क्रम के आधार पर की गई है। अंतिम उपन्यास का आधार है नेपाल की सन् १९५०-५१ की राजनीतिक क्रान्ति।

सन् १९५५ के सितम्बर-अक्टूबर मे, नेपाल की राजधानी काठमांडू मे इस उपन्यास की रचना की गई। नेपाल के कतिपय तरुण साहित्यकार इसके लिखे अध्यायो को बड़े चाव से सुना करते थे। नेपाली इतिहास एवं साहित्य के प्रकांड वयोवृद्ध विद्वान पं० श्रीबाबूरामजी आचार्य 'ऐतिहासिक शिरोमणि' ने आरम्भ के छह-सात अध्याय मेरे मुँह से सुनकर चित्रण की शत-प्रतिशत यथार्थता को मुक्त कठ से स्वीकार किया था, खूब सराहा था। इस उपन्यास की रचना के समय कतिपय तथ्यों के सम्बन्ध मे मै उनसे विचार-विमर्श भी किया करता, और उपन्यास मे उल्लिखित नेपाली सती-दाह की उनकी आँखो-देखी कहानी मैने उन्हीं के मुख से सुनी थी। अतः मै वयोवृद्ध आचार्यजी का कम कृतज्ञ नहीं हूँ! कतिपय अन्य साहित्यिक नेपाली मित्रों ने भी चित्रण की यथार्थता को कम दाद नही दिया। परन्तु फिर भी कथा-वस्तु, कला और रस-परिपाक की दृष्टि से यह उपन्यास कहाँ तक सफल हो सका है इसका निर्णय पाठको के अधीन है। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः।'

किसी भी समाज मे असाधारण व्यक्तित्व वाले पात्र बहुत थोड़े होते हैं। लेकिन होते अवश्य हैं। और मनुष्य का मौलिक मन, नई सस्कृतियो की कैद मे पड़कर भी युग-युग तक असाधारण पात्रो को प्यार करता रहेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अतः नेपाल के सामान्य जनसमाज में से ही हेमा, कुसुमा और हरिशकर को ढूँढ़कर मैंने पाठको के समक्ष पेश किया है। और 'मुख्या जयशंकर बाजे' भी अपने क्षेत्र मे असाधारण है, और साथ ही बिलकुल यथार्थ भी! 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ।' और मै ठहरा घाट-घाट का पानी पीने वाला जन्मजात घुमक्कड़! अतः यदि कुछ पाठकों को मेरे ढूँढ़े यथार्थ पात्र भी निरे कल्पित प्रतीत हों तो दोष मेरा नही, दोष है उनके संस्कार और···।

उपन्यास के अतिम भाग मे 'बुटवल' के जंगल में घटी दुर्घटना का चित्रण काल और स्थान की दृष्टि से कल्पित अवश्य है, किन्तु

तथ्य की दृष्टि से नहीं! मैने स्वयं अपनी आँखों नेपाल की तराई के एक दूसरे जगल में उस दुर्घटना का हूबहू पूर्वरूप घटित होते देखा था। उसी का स्वाभाविक चरम विकास या परिपाक मेरी कल्पना की देन है।

अपने नेपालो मित्र श्रीजनकलाल शर्मा 'साहित्य रत्न' का अपने साहित्यिक कार्य मे उनकी कतिपय सहायताओं के लिए मै कम आभारी नहीं हूँ, और कतिपय अन्य मित्रों का भी।

'राष्ट्रभारती' के कथा-भंडार में इस नये उपहार-पुष्प को विश्वास-पूर्वक विसर्जित कर रहा हूँ!

—बलभद्र ठाकुर

नेपाल की वो बेटी

(१)

उसका नाम हिमकुमारी अथवा हेमकुमारी था, पर उसके माँ-बाप उसे 'हेमा' कहकर पुकारते। हेमा की उम्र अठारह-उन्नीस से अधिक अभी न थी। और 'गुरुङ' माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण उसके चेहरे पर मंगोल रक्त की 'किराती' शाखा की खूबियाँ मौजूद थीं। किराती रक्त की असुंदरता के बजाय उस रक्त की सुंदरता उसे अपनी माँ से विरासत मे मिली थी। उसके चेहरे के सुनहले रंग पर गुलाबी लाली यो खेला करती जैसे दोनों रंगों में एक-दूसरे को दबाने का द्वन्द्व चल रहा हो! और गालो के उभार में तनिक दबी हुई आँखे बिलकुल दबी प्रतीत न होतीं। बल्कि इस दबाव से जैसे नाराज होकर वे उछल-उछलकर ऊपर आ जाना चाहतीं। इस कारण वे स्वाभाविक आकार से कुछ बड़ी दिखाई देतीं। और उनको काली-काली पुतलियों में कुछ ऐसा आकर्षण प्रतीत होता जिससे अनायास कोई भी खिंचे बगैर नहीं रह सकता। और तनिक दबी-सी नाक के नथुने से लटकती हुई सोने की बुलाकी उसके पतले-पतले गुलाबी ओठों के सौंदर्य पर यो खेला करती जैसे पीले पराग से सना हुआ भौंरा लाल कमल की पंखुड़ियों पर खेल रहा हो! और नाक की बगल से चिपकी हुई सोने की 'फुली' (लौग), और कानों से लटकती साने की 'मरोड़ी', और मरोडी पर सोने की 'ढुडरी' उसके नैसर्गिक सौंदर्य के ग्राम्य आकर्षण मे जैसे चार चाँद लगाया करतीं।

उसकी 'गुन्यू'[1] और 'चोलो' (चोली, कुर्ता) का रग अक्सर

---

१. लुंगीनुमा साड़ी।

काला होता, पर उसका 'पटुका'[1] लाल या गुलाबी अथवा बैगनी रंग का। और यज्ञोपवीत की तरह कधे और बगल से लपेटी हुई, उसकी उभरी छातियों को छिपाये, भड़कीली छीट की 'घलेक' बहुत कुछ यो प्रतीत होतीं जैसे काले पट पर रग-बिरंगी फूलो की जड़ी हुई माला उसके गले और वक्ष की शोभा बढ़ा रही हो! और सिर पर बँधे हुए लाल अथवा काले रग के 'मुजेत्र' (रुमाल) के बन्धन से निकलकर उसकी गुँथी हुई चोटी, गरदन से नीचे उसकी पीठ पर यो लहराया करती मानो 'चोलो' के प्रभाहीन काले रग का हॅस-हॅसकर मजाक उड़ा रही हो!

लेकिन कुछ दिनों से हेमा स्वय बड़ी उदास रहा करती। अनावश्यक प्रसाधनों और परिधानों का परित्याग वह कर चुकी थी। एक अशुभ समाचार ने उसकी आशाओं और आकांक्षाओं पर जैसे पानी फेर दिया था। उसका तरुण पति 'प्रेमबहादुर' भारतीय सेना में भरती होकर लगभग दो साल से उससे अलग था। लेकिन इस अलगाव के बावजूद उसके मन की कलियाँ खिल-खिलकर मन-ही-मन दूरस्थ प्रेमी पर लुटा करती। मिलन की आशा आकांक्षाओ के अंक मे सुख-सपने लेती। आह, आकांक्षाओं के कितने सुन्दर, सुगधित फूल खिला करते उसके हृदय मे! लेकिन कुछ दिनों से वे फूल आशंका के उत्ताप से मुरझाने लग पडे। और एक दिन जब वह आशका सही साबित हुई तो वे मुरझाये फूल भी बिलकुल सूख चले! नवयौवन की आशाओं का वह उपवन अचानक उजाड बन गया! वीरान बन गया!

कुछ महीनों से प्रेमबहादुर का कोई हाल-पता उसे मिला न था। घर पर कोई चिट्ठी-पत्री तक आई न थी। प्रेमबहादुर के माँ-बाप का भी बड़ी चिता हुई। अतः एक दिन हेमा का ससुर नरबहादुर अपने पुत्र का हाल-पता जानने और उसका वेतन वसूलने गोरखपुर की ओर चला।

---

१. कमरबद की तरह कमर से लपेटा हुआ चार-पाँच गज लम्बा कपड़ा।

पश्चिमी नेपाल के कठिन पहाड़ी रास्ते को पैरों से नापते कई दिन बाद वह गोरखपुर पहुँचा। और सैनिक कार्यालय मे उसका सच्चा हाल-पता पाकर छाती-कपार पीटते एक दिन वह घर वापस आया। प्रेम-बहादुर अब ससार से कूच कर चुका था! अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा मे पठानों के कबाइली इलाके मे वह वीर-गति पा चुका था!

हेमा के दिन निराशाभरी उदासी में कटने लगे। लेकिन जीवन के ढर्रे में मशीन के पुर्जे की तरह वह घिसटती रही। पहले की ही तरह वह ससुर के घर-बाहर का काम सम्हालती। जंगलों में उसी तरह गाय-बकरियाँ चराने जाया करती। लेकिन अब वह दूसरी चरवाहिनों से अक्सर अलग अकेले में बैठा करती। गायों और बकरियों को जंगल में चरती छोड़ आज वह एक पत्थर के चबूतरे पर बैठी थी। वर्षों पहले गाँव के मुखिया ने पुण्य के लोभ से प्रथा के अनुसार समानान्तर बड़-पीपल के पेड़ रोपकर यह चबूतरा बनवाया था। पेड़ बढ़कर छायादार बन चुके थे। और चबूतरे के पास से एक छोटा-सा सोता बहकर काली गंडकी में गिर रहा था। जैसे पहाड़ के पेट के सुराख से सफेद-सफेद खून का एक नाला बह रहा हो!

हेमा छाया मे चबूतरे पर बैठी कभी विचारो में खो जाती, और कभी आँखें दौड़ाकर निकट और दूर के दृश्यों को देखने लग जाती। चबूतरे से कुछ सौ गज नीचे काली गडकी की नीली-नीली सवेग धारा बह रही थी। और काली के उस पार की पहाड़ी ढालों पर लाल मिट्टी से पुते हुए विरल-विरल घरों वाले नेपाली गाँव थे। और जीने की तरह एक-दूसरे पर चढे हुए खेत, और खेतों में जौ-गेहूँ की हरी-हरी फसल, और उनके ऊपर की ढालों पर हरे-हरे जंगल! जैसे प्रकृति के हरे घाघरे पर हरे रग का गाढ़ा कटिबन्ध जडा हो! और एक जगह जंगल के किनारे से पहाड़ के पेट के चौड़े सुराख से सफेद-सफेद खून-जैसे स्वच्छ-सफेद जल का एक बड़ा-सा झरना बह रहा था। और ढालो पर बल खाता हुआ काली गंडकी की ओर बढ़ा आ रहा था। उसके जल

को जहाँ-तहाँ से किसानों ने नालियों की राह अपने-अपने खेतों में मोड़ भी दिया था। मानो लुढ़कते श्वेत अजगर की अनेक भुजाएँ पैदा हो-होकर अगल-बगल फैल चली हों! इसी झरने के किनारे हेमा के मायके का गाँव था।

चबूतरे पर बैठी हुई हेमा अपने मायके के उस गाँव को अब एक-टक से देख रही थी। अपने पिता का घर उसे साफ दिखाई दे रहा था। लाल मिट्टी से पुतो हुई दीवाल पर चौकोनिया ढालुवाँ छप्पर का एक किनारा उसके सामने था। और उस किनारे के एक छोर पर केले के हरे-हरे झाड़ सुंदर निकुंज-से दिखाई दे रहे थे। घर के आँगन मे खड़े आम के हरे-भरे पेड़ को भी वह देख रही थी, और अड़ोस-पडोस के दूसरे घरों को भी। फिर उसकी आँखे दौड़ चलीं मायके के उस जंगल की ओर जिसके साथ उसके बचपन और जवानी की जाने कितनी रगीन स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। वहाँ गाय-बकरियों के चराने और सखी-सहेलियों के साथ क्रीड़ा-कौतुक के अनेक सुख-भरे क्षण भी उसे याद आने लग पड़े। और साथ ही वे दिन और वे क्षण भी उसकी स्मृतियो मे उभर-कर उसके हृदय में गहरी टीस और आँखो मे व्यथा के आँसू भरने लग पड़े जिनका सम्बन्ध उसके और प्रेमबहादुर के अभिसार-मिलन से जुड़ा हुआ था। अगल-बगल सतर्क नेत्रों से देख हेमा अब रोने लगी थी।

प्रेमबहादुर अब रहा नहीं! उससे फिर मिलने की उमीद अब रही नही! अतः ससुराल का यह नीरस और आशाहीन जीवन उसके मन को मायके की ओर बार-बार मोड़ रहा था। मानो वृक्ष के सूखने पर उससे चिपकी हुई लता धरती माता की ओर उन्मुख हो चली हो! शैशव से लेकर विवाह से पहले तक का जीवन सिलसिलेवार उसके मन की आँखों में उभर रहा था। मनोव्यथा की गहरी टीस आँसुओं मे परिणत हो आँखों में उतर रही थी। जैसे पर्वत की छाती में संचित जल-राशि भूकम्प के धक्के खा-खाकर बाहर निकल रही हो!

प्रेमबहादुर से पहली मुलाकात की घटना भी उसके मन में उभर

आई। अब से तीन साल पहले वसत-पंचमी का वह दिन था। गाँव के मुखिया के यहाँ 'घाँटु' नाच हो रहा था। काली के आर-पार के लोग भी उस नृत्य को देखने आये थे। प्रेमबहादुर भी पहुँचा था। हेमा से उसकी आँखें मिलीं, और हेमा की आँखें उससे। प्रेमबहादुर की उम्र उन्नीस-बीस से ज्यादा न थी। चेहरे पर यौवन की नवीन व भरी-भरी आभा थी। उसका नाक-नक्श और गेहुँआ रंग तनिक साँवलापन लिये हुए भी, हेमा को कम पसद न आया। लेकिन प्रेमबहादुर तो हेमा के जादू में पागल हो उठा। जैसे वासना का सोया तरुण सिंह रूप यौवन का चाबुक खाकर उछल पड़ा हो! वह किसी बहाने अक्सर, लुक-छिपकर, काली-पार से हेमा को देखने उसके गाँव आता। जंगल में भी उसका पीछा करता। उससे प्रेम का प्रस्ताव करता। लेकिन हेमा स्वभाव से मानिनी थी। एकाएक किसी के हाथ में आने वाली न थी। किन्तु फिर भी वह प्रेमबहादुर को प्यार करने लगी। उसे देखे बिना मन उसका बेचैन रहने लगा। उसका हृदय उसे वरण करने को आकुल रहने लगा। मानो चुम्बक के जोरदार आकर्षण ने लोहे को परास्त कर दिया था।

लेकिन जब प्रेमबहादुर के पिता ने हेमा के पिता से उसकी मँगनी की, तो हेमा का पिता नाराज हो पड़ा। क्योंकि वह स्वय 'चार-जाति' वाला था और प्रेमबहादुर का पिता 'सोलह-जाति' वाला! जाति रूप से चार-जाति वालों से वह हीन था। अकुलीन था। हेमा के पिता मानबहादुर के मन में अपनी कुलीनता का मान और स्वाभिमान जाग उठा। उसने अपनी एकमात्र कन्या को अपने से हीन कुल में ब्याहने से इनकार कर दिया। लेकिन यह अस्वीकृति उन प्रेमियों के मन को एक-दूसरे से हटाने में सफल न हो सकी। बल्कि इस अस्वीकार ने उनकी स्वीकार-भावना को और भी उभार दिया। जैसे नदियाँ समुद्र से मिलने के मार्ग में किसी भी बाधा-व्यवधान को स्वीकार नहीं करतीं। उसे तोड़-फोड़कर मार्ग बना ही लेती हैं।

सो, हेमा और प्रेमबहादुर के मन में भी जात-पॉत के व्यवधान को तोड़-फोडकर मिल जाने की आकांक्षा प्रबल हो उठी। दोनों ही 'गुरुङ' जाति के थे, पर सोलह और चार का व्यवधान बाधक हो उठा था। लेकिन फिर भी हेमा मे कुछ हिचक थी। नारी-सुलभ सकोच और अपनी मॉ-बाप की इच्छा के सम्मान की भावना जंजीर बनकर उसके हृदय को रोका करती। आखिर अपने मॉ-बाप की वह एकमात्र संतान थी। स्वभाव से सुशील, बडी प्यारी!

एक दिन हेमा अपने गॉव के जंगल में पगडडी के चबूतरे पर अकेली बैठी थी। यद्यपि हिमभरित शिखर उसकी ऑखो के सामने न थे, लेकिन फिर भी वह सुन्दर सुरीले स्वर में गुनगुना रही थी—

"हिमालइ[1] चुली त्यो पल्लो पट्टि हिम कइले जामिन्थ्यो ?
पारीको माया वारी न आये, मन कइले थामिन्थ्यो ?"

अर्थात्—"हिमालय के उस पार भी कभी हिम जम सकता है? और उस पार का प्रेम इस पार आये बिना क्या मन कभी थम सकता है?" उसके मधुर कंठ मे सगीत का धीमा-धीमा स्वर, मानो विरह की वेदना को मिलन की आकांक्षा मे मिलाकर आस-पास की झाड़ियों से टकरा रहा था। मानो उस पार के अपने प्रेमी प्रेमबहादुर को बुला रहा था। आमन्त्रित कर रहा था। और इस एकान्त-निमत्रण के जादू मे बॅधा हुआ जाने कहॉ से प्रेमबहादुर उस दिन एकाएक वहॉ प्रकट भी हो पडा। उसने पीछे से चुपके-चुपके आकर हेमा के दोनो नेत्र अपने हाथों से मूॅद दिये। हेमा की तन्मयता सहसा भंग हो चली।

१, मूल नेपाली में 'हिमालै' लिखा जाता है और 'ऐ' का उच्चारण संस्कृत के अनुसार 'अइ' होता है। उपन्यास में उद्धृत नेपाली शब्दों के 'ऐ' और 'औ' स्वरों को क्रमशः 'अइ' और 'अउ' मे रूपान्तरित किया गया है।—लेखक

मानो हृदय-पुष्प में गूँजता हुआ भौंरा कराघात से सहसा आहत होकर घबड़ा उठा। हेमा ने चौंककर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। उन हाथों को पहचानते उसे देर न लगी। लेकिन अप्रतिभ होकर उन हाथों को अपनी आँखो से हटाने का प्रयास वह करने लगी। और प्रेमबहादुर झट हाथ अलग करके एकाएक खिल-खिला पड़ा।

हेमा पूरी तरह होश में आ चुकी थी। झट 'घलेक' में आँसू-भरी आँखे पोंछकर कृत्रिम फटकारभरे स्वर में झिंहुसती हुई-सी वह बोली—"बेशरम! चोर! निरदई! इतने जोर से हाथ गड़ा दिये कि मारे दरद के आँसू आ गया!"

और जवाब मे प्रेमबहादुर खिलखिलाते हुए तनिक मुँह बनाकर, थपड़ी मारकर उसे चिढ़ाते हुए बोला—"**पारीको माया वारी न आए, मन कइले थामिन्थ्यो ?**"

हेमा की कनपट्टी तक लाल हो उठी। जैसे ऐन मौके पर चोरी पकड़ ली गई। अपनी झेंप मिटाने के लिए झट वह उठकर गाय-बकरी की ओर चलती बनी, लेकिन प्रेमबहादुर ने उसका हाथ पकड़ लिया। हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करके भी वह हाथ न छुड़ा सकी। आगे न बढ़ सकी। मानो शिव की पकड़ में पड़ी पार्वती की तरह न वह आगे बढ़ सकी, न खड़ी रह सकी। 'शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ'।

लेकिन उससे छूटने का प्रयास करते हुए भौंहे तिरछी करके कृत्रिम क्रोध के स्वर में वह फिर बोली—"छोड़, बेशरम! रास्ता है! कोई 'हॅटारू' (राही) देख लेगा!"

प्रेमबहादुर ने झट उसका हाथ छोड़ दिया। लेकिन उसके पीछे-पीछे झाड़ियों के भीतर वह चल पड़ा। कुछ क्षण बाद ही निरापद एकान्त पाकर उसने हेमा का हाथ फिर पकड़ लिया। लेकिन इस बार हेमा ने विरोध न किया।

वह हेमा को भुजाओं मे जकड़कर उसका मुँह चूमकर चुपके से

उसके कान में बोला—"आज तुम्हें लेने आया हूँ ! गाय-बकरी को बाप के घर की ओर विदा कर दो ! और चलो, हम दोनों काली तैरकर उस पार चलें !"

लेकिन हेमा ने कुछ जवाब न दिया। और प्रेमबहादुर ने तब शपथ के साथ धमकी भी दी—"तुम्हे मेरी कसम ! अगर नहीं चलोगी, काली में डूबकर जान दे दूँगा !"

और तब हेमा के लिए सिवा सहमत होने के कोई चारा न रह गया। और कुछ समय बाद हेमा के पिता का मन भी ठिकाने आ गया। जैसे धन-गर्वित व्यक्ति का गर्व धन के लुट जाने पर स्वयं शान्त हो जाता है। हेमा की माँ अपनी एकमात्र पुत्री का भला कैसे परित्याग कर पाती ! उसने पति पर जोर डाला, और एक दिन हेमा के पिता ने दामाद-सहित अपनी पुत्री को अपने घर निमन्त्रित किया। और उन दोनो के ललाट पर अबीर-मिश्रित दही-चावल का टीका लगाकर उनके गान्धर्व-विवाह को सामाजिक विवाह बना दिया। प्रेमबहादुर को उसने बाकायदा अपना दामाद स्वीकार कर लिया।

इस क्षण हेमा के मानस-पट पर लगभग तीन साल पहले की वे सारी घटनाएँ एक-एककर चल-चित्र की भाँति गुजर चलीं। जैसे किसी पवित्र नदी मे विसर्जित पुष्प उसके प्रवाह मे बहते जा रहे हों ! और तब एकाएक उसके स्मृति-पट पर उस 'घाँटु' नाच के सती-नृत्य का एक गीत भी उभर आया। उसके व्यथाभरे हृदय में उस गीत के पद मानो अपने-आप मुखरित होने लगे—

"हा हा···बादुराए बादुराए अम्बावती
आजुरऽ दिनइमा आजुरऽ दिनइमा !
हिमचुली देवता जुहारेलाँ
मुख्याजुए आंगनमा अम्बावती रानी नाचेला !"

इस लोक-गीत का सम्बन्ध एक अत्यंत करुण प्रसंग से है। किसी

युग में पशरामु (परशुराम) राजा वहाँ हो चुका था। वह किसी युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुआ। उसकी रानी अम्बावती अपने पुत्र बालेकृष्ण को समाज के हाथ में सौपकर स्वयं अपने पति के शव के साथ सती होने जा रही थी। उसने सती होने से पूर्व सारे समाज के सामने समाज के मुखिया के आँगन में नृत्य किया था। उसी का उल्लेख इस गीत में किया गया है।

सो, मन-ही-मन इस गीत को गाते हुए हेमा की आँखों से झर-झरकर आँसू बहने लगे। उसका प्रेमबहादुर भी तो युद्ध में मारा गया है! पर हेमा, रानी अम्बावतो की भाँति सती होने नहीं जा रही! वह सती न हो सकी! सती होने का युग और जमाना अब खतम होता जा रहा है! गुरुङ जाति मे सती-दाह की प्रथा नहो है। ब्राह्मण-ठकुरी आदि जनेउधारी जातियाँ भी अब उसे छोड़ती जा रही हैं! लेकिन फिर भी यदि वह पति के नाम पर काली में डूबकर सती होना चाहती तो उसे रोकता कौन? कितने दुख की बात है कि आज वह संसार मे रहते हुए भी अकेली है! उसके जोवन के प्रभात में ही सध्या का अँधेरा है! यद्यपि आजीवन विधवा बनी रहने का प्रतिबन्ध उसकी जाति मे न था, लेकिन प्रेमबहादुर के प्रति उसके हृदय में जमा हुआ प्रेम और गाढ़ी आसक्ति उसके मन को जकड़कर मानो किसी अन्य पुरुष की ओर से उसे अधी बना चुकी थी। पुनर्विवाह के सम्बन्ध में जैसे सोच सकना भी उसे पापपूर्ण अपराध लग रहा था। अतः वह शून्य हृदय के अँधेरे में मार्ग-हारा-सी बनी हुई व्यथा से विमूढ़ बनी हुई थी।

(२)

ठाकुर महेन्द्र हमाल के वंश का सम्बन्ध सुदूर पश्चिमी नेपाल के किसो राजवंश से बताया जाता। उसके प्रपितामह श्रीगोविन्द शाह ने राजा या राजकुमार की उपाधि-श्रृंखला से पृथक् होकर अथवा किये जा-

कर 'चौतरिया' की लघुतर उपाधि को ग्रहण किया। फिर उन्हीं के कुल की किसी कन्या ने किसी ब्राह्मण प्रेमी को वरण किया। किन्तु नेपाली प्रथा के अनुसार स्व-जाति की न होने के कारण वह उस ब्राह्मण की विवाहिता पत्नी न बन सकी। वह 'ल्याइता'[1] की श्रेणी में शामिल हुई। उसने अपने गर्भ से कई पुत्र उत्पन्न किये। लेकिन नेपाली वर्ण-व्यवस्था के अनुसार उन पुत्रों को अपने पिता की जाति न मिल सकी। किन्तु माता की जाति तनिक हेर-फेर के साथ कायम रही। अर्थात् वे विशुद्ध 'ठकुरी' न रहकर 'हमाल ठकुरी' इस नई जाति में दाखिल हुए। और इसी कारण उनकी उपाधि भी 'शाह' से बदल-कर 'हमाल' बन गई। ब्राह्मण-वीर्य से उत्पन्न होने के कारण यद्यपि अन्य ठकुरियो से वे अपने को जाति रूप से श्रेष्ठ मानते, पर विशुद्ध ठकुरी लोग उनकी श्रेष्ठता का यह दावा स्वीकार नही करते।

महेन्द्र हमाल के पिता बजरंगबहादुर हमाल ने सुदूर पश्चिम के 'करनाली' नदी के पैतृक इलाके से 'काली गंडकी' के इलाके मे निवास कायम किया। नेपाल सरकार से 'जिम्मावाली' हासिल की। महेन्द्र हमाल भी अपने पिता की ही तरह अपने आस-पास के गॉवों मे माना हुआ व्यक्ति था। पॉच-छह गॉवों का 'जिम्मावाल'[2]! अर्थात् उन गॉवो का छोटा-मोटा राजा, बहुत बड़ा जमीनदार! लक्ष्मी का प्रचुर कृपापात्र! सांसारिक सुख-भोग के साधनों को जुटाने में सदा सन्नद्ध! धर्म को वह मानता था, पर आचार में धर्म को दिन-रात धत्ते दिखाया करता। जैसे व्यवहारतः भौतिकवाद के एक-निष्ठ पुजारी लोग अध्यात्मवाद का नारा खूब जोर से लगाया करते हैं। चार्वाक ऋषि की वह निन्दा किया करता, किन्तु आचारतः सदा इस चार्वाकी आदर्श के पथ पर चला करता—

---

१. नेपाली समाज में विवाहिता पत्नी को 'ब्याहिता' अथवा 'ब्याइता' कहते हैं और अतिरिक्त को 'लयाइता' (उपपत्नी)।

२. 'जिम्मावाल' को स्थान-भेद से 'जिम्मावार' भी कहते हैं।

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् !" अतः वह नेपाल की सामन्ती संस्कृति और शान के अनुसार विभिन्न जातियों की सुन्दरियो के संग्रह में सदा सावधान रहता। लेकिन जाति से 'ठकुरी' होने के कारण धर्मतः किसी ब्राह्मण-सुन्दरी के संग्रह का अधिकारी वह न था। इस क्षेत्र में वह ब्राह्मणों से न्यूनत्व अनुभव किया करता। क्योकि नेपाली समाज-व्यवस्था के अनुसार केवल अछूत-कन्या को छोड़ ब्राह्मणों को चारों वर्णों की कन्याओं का पति बनने का अधिकार प्राप्त है। अतः वह परम्परा से प्राप्त अपने ब्राह्मण-रक्त पर अहंकार करते हुए भी मन-ही-मन ब्राह्मणों से जला करता। घृणा करता। लेकिन मर्यादा आखिर मर्यादा ठहरी ! और तिसपर राजकीय कानून का भय भी !

किन्तु फिर भी उसके लिए पत्नी-संग्रह का विशाल क्षेत्र तो मौजूद था ही। ठकुरी, छेत्री, खत्री, गुरुङ, मगर, नेवार, भोटिया, सन्यासी, नाथ और घरती आदि सभी ग्रहणीय जातियों की दर्जन से अधिक स्त्रियाँ उसके पत्नीत्व को शृंखला में बँध चुकी थीं। नेपाली शब्द-कोश में पत्नियों और संतानों को क्रमवार सम्बोधित करने के शायद नौ शब्द ही आविष्कृत हुए हैं[1]। अतः वह अपनी नौवीं के बाद की पत्नियों को 'ठूली कांछी' या सिर्फ 'कांछी' इत्यादि सम्बोधनों से पुकारा करता। इनके अतिरिक्त घर की लगभग आधा दर्जन नौजवान दास-स्त्रियाँ भी गैर-कानूनी रूप से उसके पत्नीत्व की शृखला मे बँधी हुई थीं, यद्यपि

---

१. सन्तान को पुकारने के क्रमवार पुँल्लिग सम्बोधन—(१) जेठा अथवा ठूला; (२) माहिला; (३) साहिला; (४) काहिला; (५) ठॉहिला; (६) र्‍याँहिला; (७) गोहिला; (८) अन्तरे; (९) कांछा।

इन्हीं शब्दों के अंतिम स्वर को 'ई' मे बदलकर स्त्री-सन्तान एवं पत्नियों को पुकारते हैं ; जैसे—जेठी अथवा ठूली, माहिली, साहिली इत्यादि। किन्तु बोल-चाल या पुकार में पुँल्लिग या स्त्रीलिंग में 'ह' लुप्त होकर केवल स्वर रह जाता है; जैसे—'माइला' 'माइली' इत्यादि।

उन दिनों नेपाल-राज्य में दास-प्रथा बिलकुल कानूनी थी।[1] लेकिन वे नौजवान दासियाँ भोग्य होती हुई भी कानूनी तौर पर न पत्नी या 'ल्याइता' मानी जाने की अधिकारिणी थीं, और न उनमें उत्पन्न सन्तान ही वैध सन्तान मानी जाती थी। बल्कि दासों के कतिपय मालिक अपनी दासियों में अपने ही वीर्य से उत्पन्न सन्तान को ढोर-डंगरों की तरह बेच भी दिया करते थे। इन्हीं मालिको में महेन्द्र हमाल भी एक था।

पहाड़ मे पॉच-छह गॉवों की जिम्मावाली के अतिरिक्त नेपाल की तराई में भी उसकी काफी बड़ी जमीनदारी थी। और तिसपर मनमाने सूद पर रुपये-पैसे की लगानी का काम भी कम बडा न था। इस कारण उस इलाके के प्रतिष्ठित राजा श्रीहरिबहादुर शाह से भी धन-दौलत में वह आगे था और सुन्दरियों के संग्रह-सचय में भी। क्योकि राजा हरिबहादुर शाह की विभिन्न जाति की पत्नियों और उप-पत्नियो की संख्या अभी एक दर्जन से भी कम थी। अतः राजा हरिबहादुर शाह महेन्द्र हमाल से खूब जला करता। लेकिन जला करते रहने के बावजूद उसका कुछ बिगाड़ सकने में समर्थ वह न था। क्योंकि महेन्द्र हमाल की जिम्मावाली उसके राज की सीमा मे न थी।

महेन्द्र हमाल की कई ल्याइताएँ अपने मायके में ही रहने को मजबूर थीं। क्योंकि सबको अपने घर मे स्थान देकर अपने घर को

---

१. संवत् १६८१, मार्ग १४ गते, शुक्रवार (ईस्वी सन् १६२६) को नेपाल के तत्कालीन प्रधान मंत्री राणा चन्द्र शमशेर ने अन्तरराष्ट्रीय निन्दा के दबाव में आकर नेपाल से कानूनन दास-प्रथा को समाप्त किया। इन दासों को प्रदेश-भेद से 'करिया' या 'कमारो' कहा जाता और दास-स्त्री को 'कमारी'। बिलकुल पशुओं की तरह इनकी खरीद-बिक्री हुआ करती थी।

वह कलह और कूटनीति का अड्डा बनने देना नहीं चाह रहा था। और एक दूसरा कारण भी था। वह अपनी 'जुमली'[1] घोड़ी पर सवार हो अक्सर अपने जिम्मा के गॉवो का दौरा किया करता। गॉव के मुखियों द्वारा पैदा किये झगड़ो को निबटाने मे उनका हाथ बॅटाता। अपने कर्जखोर असामियों की खोज-खबर भी लेता। और रात उन गॉवो की अपनी ससुराल मे बिताता। ससुरालें मानो उसके दौरे मे पड़ावों का काम देतीं। और ससुराल वालों को भी अपने इस कुटुम्बी पर कम गर्व और अहकार न था। अतः वे भी अपने को गॉव के मुखिया से कम नहीं माना करते। इस गर्व और अहंकार के बल पर वे चाहे कुछ भी करके कानून और मर्यादा की मार से बेदाग बचे रहते।

हेमा अपनी आशाहीन ससुराल को सदा के लिए त्यागकर मायके में वापस आ चुकी थी। वैधव्य के बाद उसके पीछे मॅडराने वाले युवकों या प्रौढ़ों की कमी न थी, लेकिन हेमा की दृढ़ उदासीनता किसी को भी प्रोत्साहित न कर पाती। मॉ-बाप उसे सलाह देते—"नानी![2] इस जिंदगी को यों ही बरबाद न कर!" लेकिन हेमा फिर भी प्रोत्साहित न हो पाती। उसके हृदय में प्रेमबहादुर की स्मृति पर अब भी पर्दा पड़ा न था। उसपर पर्दा डालने वाला कोई पुरुष उसकी नजरो में अभी आया न था। घर-बाहर के काम में मॉ-बाप का हाथ बॅटाते हुए अपने जीवन की गाडी को धकेले वह जा रही थी। लेकिन ऊपर से संतोष का नाट्य करके भी भीतर-ही-भीतर वेदना को चिनगारियों

---

१. सुदूर पश्चिमी नेपाल मे 'जुमला' (सिजा) एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। ईसा की चौदहवीं-पन्द्रहवी सदी मे वहॉ के मल्लवशी राजा बड़े शक्तिशाली थे। जुमला का प्रदेश आज भी अपने सुन्दर और तेज घोड़ों के लिए मशहूर है।

२. नेपाली में सतान, शिशु अथवा उम्र या रिश्ते में छोटे के लिए प्यारभरा संबोधन। अर्थात् नन्ही अथवा नन्हे!

मे वह झुलसी जा रही थी। किन्तु फिर भी उसके चेहरे पर से संयम और यौवन का लावण्य अलग न हो सका। मानो सयम और वेदना की आग में तपकर वह और भी प्रभा-पुष्ट होने लगा।

उस दिन महेन्द्र हमाल हेमा के गॉव मे आया था। उसके आने का उद्देश्य महान था। काली गडकी पर कोई पुल न होने के कारण उस इलाके के आर-पार के गॉवो को यातायात की बड़ी कठिनाई थी। नाव के सहारे और भरोसे यह कठिनाई कुछ हद तक ही हल हो पाती। और बरसात मे तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती। जब गडकी की परम प्रखर धारा खूब फैलकर अपने दोनो किनारों को पहाड़ी चट्टानों से टकराती, धक्कम-धुक्का करती, मानो विफल क्रोध से गरजती हुई दौड़ने लगती तो नाव का सहारा भी बेकार बन जाता। किसी काम न आता। अतः हमाल के दिमाग में एक झूला-पुल बनाने की बात उठ आई। और चूँकि लाभ जनता को होना था, अतः उसके विचार से उसका खर्च भी जनता को ही उठाना चाहिए था। जिम्मावाल की जिम्मेदारी तो जनता से पैसे वसूलकर उसके लाभ का काम कर देने भर से ही पूरी होती थी। सो, महेन्द्र हमाल अपने जिम्मा के बाहर के गॉवो मे भी घूम-घूमकर पुल का चन्दा उगाहने लगा था। उन गॉवों के मुखियों का सहयोग भी उसे प्राप्त था। और चदा देने से कतराने वालों को पुल का उपयोग न करने देने की धमकी भी चदे की वसूली में सहायक हो रही थी। जिम्मावाली का रोब, आतंक और यह धमकी बिलकुल व्यर्थ न जा रहे थे।

हेमा का गॉव हमाल के जिम्मा के भीतर था। अतः वहॉ चदे की वसूली में जिम्मावाल का रोब और आतंक ही पर्याप्त थे। जिम्मावाल उस गॉव के मुखिया के घर बैठा हुआ गॉव के रैयतों को बुलवाकर, पकड़वाकर चदे की वसूली किये जा रहा था। अन्य रैयतों के साथ हेमा का पिता भी वहॉ उपस्थित हुआ था। और तमाशा देखने के ख्याल से गाँव के अन्य नर-नारियों की भीड़ भी इकट्ठी थी। बच्चो को

आँखों में कौतूहल था, और स्त्रियो की आँखों में सकोच का तनिक बोझ और चेहरे पर आतक का अक भी।

सुबह का समय था। जिम्मावाल, मोटे कबल के आसन पर मसनद के सहारे ओङठे हुए हुक्का गुडगुड़ा रहा था, रैयतो को पुल की उपयोगिता समझा रहा था, और बीच-बीच मे स्त्रियो की भीड़ में अपनी आँखे भी दौड़ा रहा था। लेकिन उसकी आँखे केवल एक पर ही कुछ क्षण के लिए टिक जातीं, और माना उन आँखों के आघात को बर्दाश्त न कर सकने के कारण ही उस तरुणी की आँखें भी झुक जातीं अथवा झट किसी महिला के पीठ-पीछे छिप जातीं।

हेमा अब वहाँ अधिक देर तक टिकी न रह सकी। अपनी माँ के साथ अपने घर की ओर वह चलती बनी। लेकिन जिम्मावाल की आँखें उसे ढूँढ़ने से विरत न हो सकीं। बल्कि अपने लक्ष्य को सामने न पा कहीं अधिक उत्सुकता और आकांक्षा उनमें जाग उठो। उस लक्ष्य के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल करने का कौतूहल उसमे जाग उठा। उसने चदे की वसूली से बहुत जल्द फुर्सत पा ली। शौचादि से निबटकर अपना 'मैलपोश' (लम्बा बगलबन्दी जामा) और 'सुरुवाल' (पायजामा) खोलकर उसने धोती पहनी। स्नान के नाम पर हाथ-मुँह पखार लेना ही पर्याप्त समझा। ब्राह्मण रसोइये ने झट आसन बिछाकर सध्योपासन के लिए जल से भरा पचपात्र और आचमनी रख दी। और दर्पण के साथ स्तोत्र-पाठ के लिए 'बृहत् स्तात्र-रत्नाकर' की पोथी भी।

हमाल ने दर्पण मे मुँह निहारा। उम्र साठ के पास पहुँच चुकी थी, लेकिन उसे मानो स्वयं इसकी खबर न थो। सुपुष्ट भोजन से परिपुष्ट अपने चेहरे को बड़ी आकाक्षा से वह बार-बार निहारने लगा। इसके पश्चात् वह सध्योपासन मे लगा। लेकिन उसका मन उस उपासना के साथ न रह किसी और ही उपासना मे जा लगा था। सध्योपासन मे पाँच मिनट भो न लगा अब वह स्तोत्र-पाठ मे लग पड़ा। लेकिन जीभ स्तोत्र के श्लोकों से लगी थी, और मन हेमा के परिपुष्ट यौवन से,

उसके अतुल रूप-माधुर्य से।

उस गाँव का मुखिया भी गुरुङ ही था। बौद्ध-धर्मी भी। चार-जाति में 'घले' जाति का होने के कारण वह नेवारों की तरह भैंस का मांस, मगरो एवं अन्य आदिम जातियों की तरह मुर्गे या सुअर का मांस, एव जनेउधारी उच्च-वर्णियों की तरह बकरे का मांस न खाता। भेड़ या जंगली पशु-पक्षियों के मांस पर ही वह संतोष करता। और महेन्द्र हमाल जनेउधारी उच्चवर्णी होने के कारण बकरा, हिरन, जगली सुअर या कुछ इने-गिने पंछियो का मांस ही खा पाता। अतः मुखिया ने उसके लिये खसी मरवाया। लेकिन खसी की कीमत गॉव के रैयतो से ही वसूल की गई। और अलावा इसके बतौर नजराने के तरुल (रतालू), केला, दूध, दही और घी भी रैयतों ने ही पेश किये।

ब्राह्मण रसोइये के हाथ का बना मांस जिम्मावाल को पसद न था। अतः वह स्वयं घी और मसाले में मांस को भून रहा था। लेकिन मन उसका फिर भी उसके साथ न था। मांस की महक से जीभ उसकी जरूर गीली बन रही थी, लेकिन मन गीला बना हुआ था हेमा के रूप और यौवन की मीठी-मीठी याद से। धोती पहने, शिखा बॉधे, ब्राह्मण रसोइया उधर भात एवं उड़द की काली दाल और तरुल की तरकारी बनाये चौके की सीमा मे उकडूँ होकर बैठा था। अपनी जीभ पर रह-रहकर आते पानी को घोटते हुए मांस की तैयारी के इंतजार मे था। क्योंकि भोजन से पहले चौके की सीमा से बाहर होना और फिर वहाँ पहुँचना सारे चौके को अपवित्र करना था। वह मन-ही-मन मालिक के मन को भी भॉप रहा था। वर्षो से साथ रहने के कारण मालिक का मन उसकी समझ से बाहर न था।

रसोई का कमरा अभी एकांत था। जिम्मावाल ने अगल-बगल आँखें दौड़ाकर धीरे से रसोइये को सबोधित किया—"बाहुन!"

"प्रभु!"—बाहुन ने विनयभरे स्वर में जवाब दिया।

"तुम उसे जानते हो?"

"किसे प्रभु ?"

जिम्मावाल क्षण भर चुप रहकर अपने गजे सिर पर हाथ फेरते मानो स्मृति को बटोरते हुए तनिक सकोचकुचित स्वर में बोला—"अरे ! वह जो थी न, एक छोरी, गोरी-गोरी-सी, सिर पर लाल रंग का मुजेत्र बॉधे ? और उसकी नाक मे बुलाकी भी थी, और फुली भी ? और एक बुढ़िया के पीछे जो झट यहॉ से हट चली थी ? और तुम खुद भी तो रस ले-लेकर उसे बार-बार निहार रहे थे ?"—यह कहते हुए जिम्मावाल के ओठों पर एक हलकी मुसकुराहट भी दौड़ आई।

और तब बाहुन भी मुसकुराया। परिचय का इतना सकेत ही उसके लिए काफी था। वह अनेक बार इस गॉव में आ-जा चुका था।

"हॉ प्रभु !"—अपनी स्मृति से जैसे पूर्ण सतुष्ट हो खूब हृष्ट स्वर मे वह बोल उठा—"मानबहादुर गुरुङ की छोरी है वह ! अभी-अभी ही विधवा बनी है ! खसम हिन्दुस्तान की फौज में था। वहीं लडाई मे मारा गया।"

सुनकर जिम्मावाल की बॉछे खिल उठीं। विधवा भी, और मानबहादुर गुरुङ की छोरी भी ! मानबहादुर स्वयं उसका कर्जखोर असामी था। और विधवा होने के कारण हेमा उसकी पहुँच से अधिक दूर न थी।

मांस पक चुका था। बाहुन ने प्रभु के 'ज्युनार'[1] को सजा दिया। थाल में भात परोसा, कटोरे में दाल, और दूसरे कटोरे मे शोरवादार मांस। और शाल के पत्तों की दोनियों में अलग-अलग चार-पॉच तरह की तरकारियॉ और अचार। और भोजन से पहले अग्नि-होत्र के लिए थाल की बगल में आग की चिनगारी भी रख दी। हमाल पके अन्न का तोला भर भाग अग्निदेव को भेंट कर स्वयं भोजन में

---

१. नेपाल में सामंतों के भोजन को आदर से 'ज्युनार' कहा जाता है। 'जेवनार' का बिगड़ा रूप।

मशगूल हो गया।

हमाल अपनी जीभ से इस स्वादिष्ट जेवनार का स्वाद ले रहा था, लेकिन मन उसका उस सुंदरी के रूप के आस्वाद में लगा था। वह मन-ही-मन उस परम सुंदरी को हस्तगत करने के उपाय सोच भी रहा था।

(३)

अपने घर पर आज रामबहादुर मुखिया की जिम्मावाल महेन्द्र हमाल ने बड़ी आव-भगत की। मुखिया को जीवन मे न कभी ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला था, न ऐसा सम्मान। समाज के ये दोनो नायक अकेले कमरे मे बैठकर आहिस्ते से बहुत कुछ बोल रहे थे, बतिया रहे थे। मुखिया के गॉव के पूरे जगल को मुखिया के नाम सरकारी 'लाल-मोहर' (छाप) कराने मे अपने पूरे सहयोग और समर्थन का हमाल उसे शपथपूर्वक विश्वास दिला रहा था। और पुल के लिए संचित चन्दे मे उसके उचित हक से भी अधिक रकम देने का वचन भी दे रहा था। और मुखिया मन-ही-मन अत्यत खुश हो उसका जीवन भर दास और बफादार बने रहने का वचन दे रहा था, विश्वास दिला रहा था।

महेन्द्र हमाल स्वयं हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। फिर एकाएक कुछ याद कर अत्यंत आत्मीयता और आदर के स्वर मे वह बोला—"अरे, मै तो भूल ही गया था मुख्याज्यू! आपके लिए एक बड़ी कीमती सौगात रखे हुए हूँ! याद ही नहीं रहा कि उसे दे सकूँ!"—कहकर वह उठकर चला गया कोने मे रखी अपनी सदूकडी के पास, और झट वापस आकर बड़े आदर से मुखिया के हाथ मोटर-मार्का सिगरेट का एक पूरा डब्बा थमाते हुए अत्यत प्रेमभरे स्वर मे बोला—"मुख्याज्यू! इसे लीजिए! यह हमारी दोस्ती की भेंट!" फिर ऑखो को गर्व से नचाते हुए—"बड़े-बड़े साहेब लोग, फिरंगी लोग इस चुरट को पीते हैं! पहाड़ में इसे देखने का किसी को नसीब कहॉ! मै जब पिछले 'ग्रहण'

में बनारस गया था, अपने खास-खास दोस्तों के लिए कुछ डब्बे खरीदकर साथ लेता आया ! जरा पीकर देखिए तो ! एक ही फूँक में वो मजा आ जाय कि सैकड़ों चिलम फूँकने से भी न आ सके ! एक जरा पीकर देखिए ! मेरे सामने ही पीकर देखिए !"

मुखिया जिम्मावाल का इतना प्रेमभरा आग्रह और आदेश कैसे टाल सकता भला ! उस जमाने मे,[1] नेपाल के उस पिछड़े पहाड़ी प्रदेश में मोटर-मार्का सिगरेट भी कम अनोखी और अलभ्य वस्तु न थी। और सबसे अनोखी बात यह, कि स्वयं जिम्मावाल इतने आदर और आग्रह से उसे पेश कर रहा था !

एक सिगरेट हाथ में लेकर अत्यंत विनय के साथ कृतज्ञताभरे स्वर में वह बोला—"हम जंगली गरीबो को ऐसी कीमती चीज नसीब कहाँ प्रभु ? या तो साहेब-फिरंगी लोग ही पी सकते हैं, या हजूर-जैसे राजा-जिम्वाल लोग !"—कहकर सिगरेट को जिम्मावाल की चिलम की आग मे सुलगाकर वह पीने भी लगा।

सिगरेट के सुगंधित धुएँ से उसका मन-मस्तिष्क जैसे भर उठा। उत्फुल्ल हो उठा।

सिगरेट का धुआँ मुँह से फेंककर अत्यंत कृतज्ञताभरे स्वर में हाथ जोड़कर वह बोला—"सेवक अपने प्रभु के पाँव के तले हमेशा हाजिर रहेगा हजूर ! हुकुम बकसा जाय !"

जिम्मावाल अपनी शुरू की सफलता पर मन-ही-मन खुश हो उठा। फिर हुक्का गुड़गुड़ाकर मुँह से धुआँ फेंक विनम्रता और आत्मीयता से भरे स्वर में आहिस्ते से बोला—"सेवक मत कहो मुख्याज्यू ! अपना मित्र कहो ! मुझे अपना मित्र समझो ! सच्चे मित्र का काम है मित्र की हर तरह से मदद करना ! हर तरह से साथ देना ! सहायता करना ! मैं आपकी मदद करूँ, और आप मेरी ! क्यों ?"

---

१. चंद्र शमशेर राणा के शासन-काल मे।

"यह गरीब तो हमेशा, हर दम प्रभु की सेवा में हाजिर है हजूर! हुकुम बकसा जाय! जहाँ हजूर का पसीना वहाँ इस दास का खून! मुझपर विश्वास बकसा जाय प्रभु! गरीब-परवर!"

और तब जिम्मावाल खूब विश्वस्त हो एकाएक तनिक याचनाभरे स्वर मे बोला—"विश्वास तो है ही मुख्याज्यू! भगवान कसम! अपने गाँवों के सभी मुखियों से आपमे ही मेरा सबसे ज्यादा विश्वास है! और इस विश्वास के बल पर ही अभी आपसे एक याचना करना चाहता हूँ! और विश्वास करता हूँ कि आपकी मदद मुझे जरूर मिलेगी! काम मेरा फतह जरूर होगा!"

और मुखिया ने दृढ़ स्वर मे जैसे पुनः विश्वास दिलाते हुए कहा—"हुकुम बकसा जाय हजूर!"

और तब हजूर ने चुपके-चुपके हुकुम बकसना यो शुरू किया—"शास्त्र-पुराणो में लिखा है मुख्याज्यू, कि धन-दौलत सुख के लिए है, शोभा के लिए है! आदमी की जिंदगी सुख के लिए है, भोग के लिए है! इहलोक-सुख, परलोक-सुख! परलोक-सुख के लिए हम दान-पुन्न करते हैं, धर्म करते हैं! देखो न, मैंने बड़-पीपल के तीन चबूतरे कई जगह बनवाये! उनके ब्याह का यज्ञ भी रचाया! हजारों खरच किये! और आपने भी अपने गाँव की सरहद मे चबूतरा बनवाया, यज्ञ किया! क्यों? किस लिए? परलोक-सुख के लिए ही तो? दूसरे जन्म के लिए ही तो? आखिर हमने पहले जन्म मे कुछ किया है तभी तो उसके पुन्न-प्रताप से आप अपने गाँव के मुख्या बने, और महेन्द्र हमाल कई गाँवों का जिम्वाल? इहलोक-सुख भी परलोक-सुख से कम कीमती नहीं है मुख्याज्यू! शास्त्र-पुराणो मे लिखा है—जिसका इहलोक नहीं बना, उसका परलोक भी नहीं बन सकता! बगैर धन-दौलत के कोई दान-पुन्न नहीं कर सकता! धर्म के काम नहीं कर सकता! और न इहलोक का सुख ही भोग सकता है! और आप जानते ही हैं मुख्याज्यू, कि इहलोक का सबसे बड़ा सुख है स्त्री-सुख! और जिस घर में स्त्री नहीं

उस घर की कोई शोभा नहीं!"

इतना कहकर हुक्के के दो-तीन कश लेकर उसने पुनः कहना आरभ किया—"यो, महेन्द्र हमाल को स्त्रियों को कमी कभी नहीं रही! और कमी इसलिए नहीं रही कि उसने पूर्वजन्म में दान किया है, पुन्न किया है! मगर जिस तरह हम धन-दौलत को बढ़ाने में संतोष नहीं करते, पुरुषार्थ करते रहते हैं, उसी तरह हमें स्त्री-धन को बढ़ाने में भी संतोष न करना चाहिए! किसी तरह का भी संकोच न करना चाहिए! इसके लिए पुरुषार्थ से कभी हटना न चाहिए! शास्त्रों में लिखा है—थोड़े में सतोष कर लेना और पुरुषार्थ से हट जाना एक क्षत्रिय के लिए घोर पाप है! घोर लज्जा! हींजडेपन की जबर्दस्त निशानी! भगवान कृष्ण महाराज क्षत्रिय थे। इसीलिये एक-दो नहीं, उन्होंने सोलह हजार रानियाँ इकट्ठी की थीं! और भगवान राम के पिता महाराज दशरथ के भी तीन सौ साठ थीं! तो, अगर महेन्द्र हमाल ने नौ-दस रख ही लीं तो कौन-सा बड़ा पुरुषार्थ कर लिया मुख्याज्यू? नेपाल के 'तीन सरकारो' (प्रधान मत्रियों) को देखिए! राणा जंगबहादुर के छोरे राणा पद्मजग के एक सौ आठ थीं! और सैकड़ों जवान-जवान 'केटियाॅ' (दासियाॅ) सो अलग! स्वयं जगबहादुर के महल में अनगिनत सुंदरियाॅ थीं! नेपाल के हर हिस्से से हर पाॅचवें वर्ष चुन-चुनकर खूबसूरत नौजवान लड़कियाॅ जबरन पकड़वाकर उनके महल मे कैद की जाया करती थीं। तब से राणा 'खलक' (कुल) के सभी 'तीन सरकार' खूब जी भरकर स्त्री-सुख भोगने के लिए ऐसा ही करते आ रहे हैं! और आज उसी 'राणा खलक' के श्री तीन सरकार राणा चंद्र शमशेर को देखिए! अनगिनत रानियाॅ-केटियाॅ दिन-रात उनके महल की शोभा बढ़ा रही हैं! क्यो? क्योंकि उन्होंने पूर्व जन्म में दान-पुन्न किया! इस जन्म में पुरुषार्थ किया! उसी पुन्न-प्रताप से वे आज नेपाल के महाराजा हैं! हम लोगों के भगवान हैं! पूज्य हैं! और संसार के सारे सुख खूब मजे में भोग रहे हैं!"

मुखिया रामबहादुर बड़ी उत्सुकता से चुपचाप उसका लंबा भाषण सुनता जा रहा था।

हुक्के की आग बुझ चुकी थी। जिम्मावाल ने आवाज लगाई—"ओ कान्छी ! कांछी !!!! ओ कांछी !!!"

और तब झट दूसरे कमरे से—'हजूर !'—यह आवाज लगाती हुई जिम्मावाल की सबसे छोटी पत्नी वहाँ आ पहुँची। और पति के आदेश पर झट नई चिलम भरकर हुक्के पर रख भी गई।

जिम्मावाल ने मुखिया से आग्रह किया—"चिलम तो जीवन भर पीते आये हो मुख्याज्यू ! एक चुरट और पिओ ! चिंता न करो ! मैं एक दूसरा डब्बा भी दूँगा आपको घर ले जाने के लिए !"

मुखिया ने नया सिगरेट सुलगाया। और जिम्मावाल ने हुक्का गुड़-गुड़ाते हुए पुनः आहिस्ते से कहना शुरू किया—"शास्त्रों में लिखा है मुख्याज्यू, कि पूर्व जन्म की विद्या और पूर्व जन्म की पत्नी अगले जन्म में भी साथ नहीं छोड़ती ! मैंने जिस किसी स्त्री को भी रखा, उसे अपनी पूर्वजन्म की 'स्वास्नी' (पत्नी) मानकर ही ! मुझे विश्वास है कि पराई स्त्री पर मेरा मन नहीं दौड़ता ! और जिसपर दौड़ता है, उसे अगर मैं न ले सकूँ, उसे पाने का जतन न करूँ, तो समझता हूँ कि मैं पापी हूँ ! पुरुषार्थ से हीन हूँ ! हींजड़ा हूँ ! और मै सच कहता हूँ मुख्याज्यू, कि आपके गाँव मे, आपकी जात-बिरादर मे, मेरी एक पूर्वजन्म की 'स्वास्नी' आज मौजूद है ! उसे पाने के लिए मेरा मन छटपटा रहा है ! और आपसे यही मेरी आरजू है, यही मेरी बिन्ती है, कि उसके पाने में आप मेरी मदद करें ! सहायता करें ! सच्चे मित्र का फर्ज आप जरूर अदा करें मुख्याज्यू !"

"कौन ? कौन है हजूर ?"—मुखिया ने जरा आँखें फैलाकर, सिर खुजलाते हुए, बड़ी उत्सुकता और कौतूहल से प्रश्न किया।

और जिम्मावाल ने झट जवाब दिया—"मानबहादुर गुरुङ की छोरी 'हेमा' मुख्याज्यू ! मुझे मालूम है कि हेमा अब विधवा है ! और

वह विधवा भी इसीलिए बनी कि उसका पहला पति दरअसल उसका असल पति न था! उसने ब्याह करने में भूल की थी! सो, भगवान ने उसका फैसला कर दिया! अब वह मेरी है! और उसे मुझ तक पहुँचाने की सारी जिम्मेदारी अब आप पर है मुख्याज्यू!"

मुखिया कुछ क्षण चुप रहा। उसे हेमा और हेमा के माँ-बाप का स्वभाव याद आ गया। सिर खुजलाते हुए जरा हिचक-भरे स्वर में वह बोला—"मगर वह तो बड़ी घमंडी छोरी है प्रभु! अपने रूप का उसे बड़ा गुमान है! और उसके माँ-बाप भी कम घमंडी नहीं हैं!"

जिम्मावाल ने हुक्के के कई कश लेकर झट जवाब दिया—"इसीलिए तो मै मानता और समझता हूँ कि वह मेरी है! और मैं यह भी जानता हूँ कि हेमा कुछ देर नखरे जरूर करेगी! आखिर वह जवान है! तिस पर खूब खूबसूरत भी! नखरे तो करेगी ही वह! ऐसी औरतों के नखरे भी अच्छे ही लगते हैं मुख्याज्यू! और उसके माँ-बाप भी नखरे जरूर करेंगे! खूबसूरत छोरी के माँ-बाप जो ठहरे! मगर उन लोगों ने अगर ज्यादा घमंड दिखाया तो उस घमंड को तोड़ने की तदबीर भी है मुख्याज्यू! और आप यह भी जानते हैं कि चाँदी का जूता किसी का भी घमंड बहुत जल्द तोड़ देता है! हेमा के माँ-बाप से आप कहना—'मै कर्ज के सारे रुपये माफ कर दूँगा! कर्ज का तमस्सुक फाड़ दूँगा! और हेमा के सारे अंग तो सोने के गहनों से इस तरह सजा दूँगा कि वह साक्षात् स्वर्ग की अप्सरा दीखेगी, अप्सरा! उसे इस घर की मालकिन बनाऊँगा, मालकिन! वह इस घर की रानी बनेगी, और दूसरी उसकी दासियाँ!'" और फिर एकाएक मुसकाते हुए—"और बदले में मुख्या रामबहादुरज्यू भी मुँहमाँगी बकशीश पायेंगे, मुँहमाँगी बकशीश! समझे मुख्याज्यू!'

मुँहमाँगी बकशीश का नाम सुनकर मुखिया का मन प्रफुल्ल अवश्य हो उठा, लेकिन फिर भी जरा हिचक-भरे स्वर में वह बोला—"मै तो आपके घर का आदमी हूँ हजूर! बकशीश का लोभ मुझे नहीं है! मगर कसम खाकर कहता हूँ कि अपनी ओर से किसी कोशिश मे मैं

कसर न रखूँगा प्रभु ! भगवान चाहेगा तो…!"

जिम्मावाल ने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा—"भगवान भी उसी की मदद करता है मुख्याज्यू, जो खुद पुरुषार्थ करे ! खुद जतन करे ! केवल भगवान के भरोसे बैठा न रहे ! और मुख्याज्यू, अपने घर के आदमी का तो हर बात में ज्यादा हक होता है ! अपने घर के आदमी को कुछ देने में, उसकी मदद करने मे जितनी ज्यादा खुशी होती है उतनी परायो को देने मे नही ! परायो की मदद करने मे नहीं ! इसे अपना ही काम समझकर आप जी-जान से लग जायें ! पुरुषार्थ करें ! भगवान भी आपकी मदद जरूर करेगा ! और भगवान का दास महेन्द्र हमाल भी ! विश्वास रखें आप !"—कहकर वह पुनः चाँदी-जड़े पेचवान को मुँह मे डालकर हुक्का गुडगुड़ाने लगा ।

और मुखिया एकाएक हाथ जोड़ विदा माँगते हुए बोला—"तो अब विदा का हुकुम बकसा जाय हजूर ! सेवक अपनी ओर से कोई कसर उठा न रखेगा !"

"जरूर ! जरूर !"—कहकर मुखिया को आदरपूर्वक विदा करते हुए हमाल स्वयं भी उसके पीछे-पीछे काफी दूर तक चला गया ।

(४)

हेमा का पिता मानबहादुर, मुखिया का प्रस्ताव सुनकर एकाएक आग-बबूला हो उठा । आपे से बाहर हो गया । हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़कर गुस्साभरे स्वर में वह बोला—"छी, मुख्या ! मानबहादुर इतना पतित नही कि अपनी छोरी का 'माँसू' बेचकर खाये ! जिम्वाल तो पक्का खबीश है, खबीश ! उस खबीश की हवस तो मरते दम तक कभी मिटने की नहीं ! बूढ़ा हो गया ! मुझसे भी उम्र में बड़ा ! मुँह में नकली दाँत लगाये फिरता है ! मगर फिर भी कोई लाज नहीं ! शरम नहीं ! दूसरे की बहू-बेटियों को घूरता है ! तरह-तरह के जाल-फंद मे फँसाकर उनकी इज्जत-आबरू लूटता है ! घर में जवान-जवान औरतें मौजूद हैं !

कितनी कमारियाँ हैं ! मगर फिर भी संतोश नहीं ! शरम नहीं ! ऊँची जात का बनता है ! ठकुरी कहलाता है ! मगर 'सारकी' (चमार), 'दमाई' (दरजी), लुहार वगैरह अछूत छोरियों को भी नहीं छोड़ता ! दूसरा कोई अगर इसी काम मे पकड़ा जाय तो उसपर 'पानी को मुद्दा'[1] लागू हो जाय ! वह इहलोक-परलोक दोनों से बिगड़ जाय ! मगर ये बड़े कहे जाने वाले लोग, हाकिम-हुक्काम लोग, यह सब करके भी बेदाग बचे रह जायँ ! भले और ऊँचे ही बने रह जायँ ! क्योंकि अड्डा-अदालत इनके हाथ मे हैं ! कानून इनके हाथ मे है ! इनके खिलाफ न कोई सिर उठा सकता है, न कुछ बोल सकता है ! और बलि का बकरा बनता है हर हालत में गरीब बेचारा ! यह तुम लोगों का अड्डा-अदालत, आइन-कानून सब दिखावे के हैं मुख्या ! धोखे के जाल हैं, जाल ! गरीबो को सताने और लूटने के चालाकी और शैतानी के जाल !"

कहते-कहते मानबहादुर मारे क्रोध के काँपने लगा । हाँफने लगा । और मुखिया का मुँह मारे अपमान के चोंगा बन गया । लेकिन, चूँकि मानबहादुर उसकी अपनी जात-बिरादरी का था, और रिश्ते में बड़ा भाई लगता था, और इस समय वह विशेष उद्देश्य लेकर पहुँचा था, अतः मन मे उठे क्रोध और ग्लानि को मन-ही-मन दबाकर अपना-सा मुँह लिये चुपचाप सब कुछ सुनता रहा ।

लेकिन फिर भी उसने हिम्मत न हारी । मानबहादुर को समझाते हुए प्रेम-भरे गभीर स्वर मे वह बोला—"दाज्यू ![2] तुम्हारा कहना

---

१. नेपाली सामन्ती कानून के अनुसार यदि कोई सवर्ण किसी अछूत का पानी या हुक्का-चिलम पी ले अथवा अछूत स्त्रियों से यौन संबंध स्थापित कर ले, तो उस पर 'पानी का मुद्दा' नामक धारा लगाकर उसे जेल और जुर्माने की सजा होती है । जाति से बहिष्कृत भी किया जाता है ।

२. बड़े भाई के लिये आदर का संबोधन ।

बिलकुल ठीक है ! सोलह आने ठीक ! मगर सब कुछ देखते हुए भी, समझते हुए भी, संसार से हम बाहर तो नहीं रह सकते ? बाहर तो नहीं जा सकते ? सब जगह का तो यही हाल है ! बडे लोग छोटे लोगो को हर तरह से सताते हैं ! लूटते हैं ! जब सारी दुनिया ही ऐसी है तो हम गरीब भागकर जायॅ कहाॅ ? मै मुख्या जरूर हूॅ, मगर तुम लोगो से अलग तो नहीं हूॅ ! इन बड़े बेईमानो से किसी तरह हिल-मिलकर अपने गरीब भाइयो की सेवा करता हूॅ ! उनका बचाव और हिफाजत करता हूॅ ! अगर इनसे मिलकर न रहा जाय दाज्यू, तो हम सबो को ये दिन-दहाड़े लूट न खायॅ ? अपने बाप-दादों की जमीन से हमेशा के लिए उजाड़ न दें ? भगा न दें ? मटियामेट न कर दें ? क्या किया जाय ? न चाहते हुए भी सब कुछ मजबूरन सहना और करना पड़ता है दाज्यू !"

मुखिया के इन विनयभरे वाक्यों से मानबहादुर का क्रोध कुछ शांत अवश्य हुआ, पर क्षोभ न मिट सका। सुबह का समय होने के कारण हेमा और हेमा की माॅ अपने खेतों में काम पर थीं। एकांत होने के कारण कोई बाधा-व्यवधान न देख मुखिया ने निःसंकोच हो प्रस्ताव कर दिया था। और मानबहादुर के सरल एवं क्रोधी स्वभाव से परिचित होते हुए भी उसे लेकिन इतने क्रोध और क्षोभ की उमीद न थी। अतः इस सरल-हृदय मानव को उसने कूटनीति की चापलूसी से वश मे करने का निर्णय किया। और ऊपर-लिखी बातें कही।

लेकिन मानबहादुर अपने जाति-गौरव की याद दिलाते हुए क्षोभ-भरे स्वर मे फिर बोला—"हम 'चार-थरी' गुरुङ हैं मुख्या ! 'घले' जाति के ! जॉड़-रक्सी[1] से भले ही हम परहेज न रखे, मगर फिर भी इन ऊॅचे कहे जाने वाले ब्राहुन-ठाकुरो से चाल-चलन, खान-पान में

---

१. नेपाल के पहाड़ों में घर की बनी शराब को 'रक्सी' कहते हैं तथा चावल मकई आदि को सड़ाकर बनाये नशीले पेय पदार्थ को 'जॉड़'।

हम कहीं ऊँचे हैं ! कहीं सिरीष्ट हैं ! इनसे हमारा ईमान ऊँचा है ! चाल-चलन अच्छा है ! तुम्हीं बताओ मुख्या, कि इस हमाल-सरीखे बदमाश बूढे ठकुरी को हम कैसे अपनी लड़की दे दें ? आखिर हेमा तुम्हारी भी तो लड़की है ! छोरी-तुल्ल है ! तुम्हीं बताओ कि इस तरह हमारी नाक नहीं कटेगी ? और हेमा की जिन्दगी बरबाद न हो जायेगी ? आखिर धन-दौलत और सोने के गहने ही तो जिन्दगी का सब कुछ नहीं हैं ? हम किसान हैं ! हेमा किसान की छोरी है ! उसे तो किसी अमीर बदमाश जिम्वाल के बदले किसी जवान गरीब किसान के साथ कहीं अधिक सुख मिलेगा ! कहीं अधिक सुखी रहेगी ! मैं बाप होकर कैसे अपनी बेटी का बुरा करूँ और सोचूँ मुख्या ?''—कहते-कहते उसकी आँखों मे आँसू उमड़ आये।

मुखिया उन आँसुओं से प्रभावित हुआ, अप्रतिभ भी। लेकिन फिर भी अपने वांछित कार्य की सफलता को ध्यान मे रखकर सहानुभूति का नाट्य करते हुए वह फिर बोला—“बात तुम्हारी ठीक है दाज्यू ! और हेमा मेरी भी छोरी-तुल्ल है ! अपनी छोरी 'सुखवन्ती' के तुल्ल ही उसे मानता भी हूँ ! समझता भी हूँ ! भला मै इतना पतित और पापी कैसे बनूँगा दाज्यू, कि अपनी ही छोरी का बुरा सोचूँ ? उसकी ही जिन्दगी को बरबाद करने की सलाह तुम्हें दूँ ? मगर दाज्यू ! तुम सीधे-सादे सतजुगी लोग हो ! पुन्नात्मा हो ! इसीलिए आज के कलजुगी छक्का-पजे के जानकार तुम नहीं हो ! क्रोध में काम बनता नहीं, बिगड़ता है ! कहा भी है कि 'जो मजा नरमी मे है वो गरमी मे नहीं !' अपनी जात-बिरादर के, और दूसरी ऊँची जात के कई जवान मर्द हेमा से सम्बन्ध करना चाह रहे हैं ! मगर हेमा नहीं मानती ! तुम्हारी बात भी उसने कई बार टाल दी, और मेरी भी ! मैं यह भी मानता हूँ कि जिम्वाल उसके लायक नहीं है। मगर जब हेमा यों भी बरबाद ही होना चाहती है, 'विध्वा' ही रहना चाहती है, तो समझ लो कि जिम्वाल की 'ल्याइता' बनकर भी वह 'विध्वा' ही

रहेगी ! जिम्वाल की ल्याइता बनने पर धन-दौलत तो उसके हाथ लगेगी ? उस धन-दौलत से वह दान-पुन्न करके, धरम का काम करके अपना इहलोक-परलोक तो बनायेगी ? तुम्हें तो सुख पहुँचा सकेगी ? द्वार पर आई हुई लछमी को दुरदुराना बुद्धिमानी तो नहीं दाज्यू ?"

मानबहादुर कुछ क्षण के लिए चुप रह गया। लेकिन मुखिया की बातो का कोई अनुकूल असर उसपर नहीं पड़ा। वह जवाब ढूँढ़ता रहा। धीरे-धीरे हुक्का गुड़गुड़ाता रहा।

फिर हुक्के को मुखिया के हाथ थमाकर जवाब सूझने पर दो-तीन बार खाँसकर वह बोला—"मुख्या ! मगर जिम्वाल तुम्हारा जितना लम्पट है, उतना ही धूर्त और पतित भी ! वर्षों से उसके पाप देखता आ रहा हूँ ! अब तो बाल सफेद होने लगे ! तुम्हें खुद मालूम है कि अपनी जवान ल्याइताओं का वह कितनी तरह से इस्तेमाल करता है ! वह खुद उनकी इज्जत-आबरू तो लूटता ही है, साथ मे इन्हीं ल्याइताओं के जरिये वह दूसरो की इज्जत-आबरू भी लूट लेता है, और उनकी जमीन-जायदाद भी ! उन्हें कंगाल बना छोड़ता है ! बेईमान ने ल्याइताओं को उनके मायके मे रख छोड़ा ही इसलिए है कि कोई गाँठ का भरा-पूरा, जमीन-जायदाद वाला, बेवकूफ नौजवान उनसे फँस जाय, और तब अड्डे-अदालत की मदद से उस बेचारे को 'पंचखत'[1] के मुद्दे मे फाँस दिया जाय ! 'जारी'[2] में उसका सर्वस हरन

१. नेपाल के सामती कानून के अनुसार किसी दूसरे की पत्नी को भगाने या बिगाड़ने में 'पचखत' का मुद्दा लागू होता है। इस मुद्दे के अनुसार दंड हैं—(१) पति द्वारा 'जार' (उपपति) की हत्या; अथवा (२) हरजाने की रकम जार से वसूलना; अथवा (३) अभक्ष्य-भक्षण कराकर (सुअर, गाय आदि का मांस खिलाकर) जाति-च्युत करना; अथवा (४) देश-निकाला, अथवा (५) पति की दोनों टाँगो के बीच से निकलने के लिये जार को बाध्य करना।

२. पंचखत के अंतर्गत हरजाने की रकम को 'जारी' कहते हैं।

करके उसे कंगाल बना दिया जाय ! और इस तरह अपना घर भरा जाय ! अभी साल भर पहले की ही तो बात है ? उस गुरुङ 'लाहुरे'[1] की क्या दुर्दसा हुई याद नहीं तुम्हें ? और हेमा को भी ल्याइता बनाकर वह यही सब करवायेगा मुख्या ! अनेक गरीबों का घर उजड़वायेगा ! नहीं मुख्या, नहीं ! ऐसा नही होने का !"--कहते हुए निषेध के आवेश मे उसने अपना दाँया हाथ कई बार हिला दिया।

इस जवाब से मुखिया खूब अप्रतिभ हो उठा। लेकिन सारी लाज-शरम मानो ताक पर रखकर वह फिर बोला—"अगर औरत ही खराप हो, वह खुद दूसरों को खराप करना चाहे, तो इसमें जिम्वाल का क्या कसूर दाज्यू ? और यह तो सरकार का कानून है, और हमारे पहाड़ का सनातन से चलन भी, कि कोई दूसरे की औरत को भगा या बहका कर खराप कर दे तो सरकार की ओर से उसे डंड जरूर मिलना चाहिए ! नहीं तो समाज मे अन्धेर मच जाय ! जो चाहे किसी दूसरे की औरत को भगा ले जाय ! मगर मुझे तो विश्वास है दाज्यू, कि अपनी हेमा ऐसा नहीं करेगी ! जिम्वाल के इशारा देने पर भी नहीं ! खुलकर कहने पर भी नहीं ! हमारी हेमा कोई खराप सुभाव की छोरी तो नहीं दाज्यू !"

और मानबहादुर ने झट जवाब दिया—"तुम खुद इतने 'छट्टू' (चतुर-चालाक) होकर भी क्या इतना भी नहीं समझते मुख्या, कि हेमा अभी नौजवान है ? अभी कोई नौजवान मरद उसकी आँखो में नहीं जँचा, इसीलिए वह 'विध्वा' बनी हुई है ? मगर आदमी का ही तो मन ठहरा आखिर ! जिम्वाल की 'ल्याइता' बनने के बाद अगर कोई जवान मरद उसकी आँखों में जँच गया, और अपनी इच्छा से ही उस जवान के साथ वह भाग निकली, तो उस जवान का तो सत्यानास होकर

---

१. भारत या विदेश में नौकरी करने वाले पहाड़ी नेपाली को नेपाल में 'लाहुरे' कहते हैं।

रहेगा मुख्या ? हाकिम-हुक्काम, अड्डा-अदालत सब जिम्वाल के हाथ में हैं ! वह हेमा को भी बेइज्जत करायेगा, और जेवर-जेवरात की चोरी का मुद्दा लगाकर हेमा के उस खसम से मनचाही रकम भी वसूल करेगा ! और अगर जिम्वाल की ल्याइता बनने से पहले उसने अपने मन से किसी पुरुख से संबध कर लिया तो यह जाल तो वहाँ न फैलेगा ? हेमा का वह खसम बरबाद तो न होगा ? खुद हेमा तो बरबाद न होगी ? मुझे तुम अब और समझाने का जतन न करो मुख्या ! मै खुद सब समझता हूँ ! मगर लाचार हूँ ! मजबूर हूँ ! कुछ बोल नहीं सकता ! कुछ कर नहीं सकता !"

मानबहादुर ने मानो मुखिया का मुँह बन्द कर दिया । मुखिया का भ्रम बिलकुल टूट गया कि मानबहादुर सीधा है, सरल है, नासमझ है । और यह सोचकर वह और भी अप्रतिभ हो चला कि मानबहादुर उसका असली इरादा शायद ताड़ गया है । जिम्वाल से उसके घूस-रिश्वत और बकशीश पाने की बात भी वह समझ गया है । अपने चेहरे पर विफलता-जन्य क्रोध और निराशा लिये वह वहाँ से विदा हो गया ।

× × ×

उधर मुखिया रामबहादुर हेमा के पिता से बातों में उलझा हुआ था, और इधर महेन्द्र हमाल अपने कमरे में अपनी गद्दी और मसनद के सहारे करवटें लेते हुए अपने लालसा-भरे मन से हेमा के सम्बन्ध मे सोच रहा था । जिम्मावाली की शान और समृद्धि के अनुसार अन्य पहाड़ी लोगों के घरों से उसके घर की काट और बनावट अलग थी । घर खूब बड़ा और तिमंजिला था । घर की दीवाल पक्की ईंटों की थी, और चौकोना ढलानी छप्पर घास-फूस का न होकर खपरैल था, और छप्पर के चारो किनारे लकड़ी की कामदार पाटियो से जड़े थे । और कमरे की खिड़कियाँ ऐसी थीं जहाँ बैठने वाले की निगाह बाहर खूब जा सकती थी, पर बाहर की निगाह वहाँ पहुँचने मे कतई सफल न हो पाती । कमारों के लिए छोटे-छोटे कच्चे घर अलग-अलग थे,

जिनमे खिड़कियाँ नाम को भी न थीं। और दरवाजे इतने छोटे और सॅकरे कि बगैर धरती को चूमे अदर जा सकना अथवा अदर से बाहर आ सकना आसान न था। लेकिन ढोरो का विशाल कच्चा घर एक हॉल-जैसा था, काफी खुला हुआ। और जनेउधारी होने के कारण यद्यपि उसके अपने घर मे मुर्गी पालना निषिद्ध था, पर उसके कमारों के घर मुर्गों की बांग एवं मुर्गियों की चहल-पहल से खूब गुलजार थे। उसने कुछ बत्तख और हस भी अवश्य पाल रखे थे, लेकिन लोगो मे यह कानाफूसी भी चालू थी कि मुर्गे-मुर्गियाँ कमारो के लिए न होकर स्वय जिम्वाल के लिए थीं। जिम्वाल जिस प्रकार अपनी नौजवान कमारियो का गुप्त उपभोक्ता था उसी प्रकार उन मुर्गे-मुर्गियो का भी। और घर के सामने तनिक निचली ढलान पर जमीन से एक पतली धारा भी निकल रही थी जिसके पास की जगह को पत्थर के चबूतरे से ठोस बनाया गया था, और धारा के मुँह मे पत्थर की गोमुखी नली लगाकर पानी की धारा को जोरदार बना दिया गया था। इस समय भी जिम्मावाल के बच्चे और स्त्रियाँ धारा से पानी ले रहे थे, अथवा हाथ-मुँह धोते हुए आपस की बतकही में मशगूल थे। और धारा से बहते बेकार जल को एक गड्ढे मे रोकने का प्रबन्ध भी था जिसमें हंसों और बत्तखों की चहल-कदमी उस वक्त भी चालू थी।

हमाल अपने कमरे में खिडकी के पास बैठा हुआ धारा के पास अपने परिवार को देख रहा था। वहाँ उसकी तीन स्त्रियाँ मौजूद थीं। कांछी भी थी। मन-ही-मन उसने हेमा के रूप और यौवन से एक-एक कर उन सबकी तुलना की। उनमे एक तो बिलकुल बूढ़ी थी, हेमा की माँ से भी अधिक उम्र की, और दूसरी प्रौढ़ा थी। लेकिन सोलहसाला कांछी अपने नव-यौवन और रूप के बावजूद इस क्षण उसकी नजरों मे हेमा के पासंग में भी न आ सकी। बुढ़ापे की कामुकता मे उत्तेजना अधिक होती है, पर जोर कम होता है। बिना सामर्थ्य की इस उत्तेजना में आकांक्षा अपने पंख खूब फैलाती है। पर देर तक टिकने का सामर्थ्य

उसमें नहीं होता। लेकिन फिर भी वह उड़ती है, गिरती है, फड़फड़ाती है, और फिर-फिर उड़ते रहने का संकल्प करती रहती है। हेमा से संबद्ध हमाल की आकांक्षा का अभी यही हाल था। हेमा-जैसी स्त्री-रत्न को पा लेने की आकांक्षा कभी उसे आकाश में उडा ले जाती, और कभी यह सोचकर कि वह हेमा के योग्य नहीं, हेमा उसके हाथ मे आ सके या नहीं, पुनः धरती मे गिरकर फड़फड़ाने लग जाती।

अब उसने बड़े आइने में अपना चेहरा देखा। बार-बार देखता रहा। चेहरे पर लाली थी। बुढ़ापे की शिकन की रेखाएँ उस लाली मे छिपी प्रतीत हो रही थीं। उसकी उम्र के अनेक गरीब बूढ़ों के चेहरो पर झुर्रियाँ जोर-जोर से झाँका करतीं, पर उसे अपना चेहरा झुर्रियों से रिक्त दिखाई दिया। आशा और आकांक्षा के पंख फिर फड़फड़ा उठे। वह सुन चुका था कि मूँछें उम्र को बढ़ाकर बताती हैं। अतः अपनी तनी और मरोड़ी मूँछें उसे ठीक न जची। पिता का स्वर्गवास वर्षो पहले हो चुका था। अतः उन मूछों को साफ करा देने मे अब कोई धार्मिक या सामाजिक प्रतिबन्ध न था। उसने झटपट अपने नाई को बुलवा लिया। मूँछें बिलकुल साफ करा दीं। फिर आइने में चेहरा देखा। लगा कि वह सचमुच कुछ जवान हो चला है। उसने झट रसोइये ब्राह्मण को बुलवाया। वह मानो उसका एक साथ पीर भी था, बावर्ची, भिश्ती और खर भी। वह रसोइया भी था, उसका नर्म-सचिव भी। उसके जीवन की कोई बात उससे छिपी न थी। वह छिपाता भी न था। अभी पूजा-पाठ या रसोई का समय न था। अतः 'दउरा' (बगलबदी जामा) और 'सुरुवाल' (पायजामा) पहने, तिलक-युक्त ललाट के साथ वह स्वामी के सामने उपस्थित हुआ। खूब झुककर दोनों हाथो को जैसे उलीचते हुए 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद भी निवेदन किया। आसन से नीचे विनयपूर्वक धरती पर ही वह बैठ गया। स्वामी के आदेश का चुपचाप इन्तजार करने लगा।

आइने में अपने मुँह का मुआयना करते-करते ही जिम्मावाल ने

जिज्ञासा की—"बाहुन ! बताओ तो ! अब मैं कैसा लग रहा हूँ? मेरी उम्र अब कितनी लग रही है ?"

और बाहुन ने निचले ओठ मे दबे तमाकू को जीभ की नोक से ठेलकर तनिक और दबाते हुए थूक घोंटकर पूरी चापलूसी के स्वर में जवाब दिया—"बहुत अच्छा प्रभु ! लिलाट पर जैसे नई जवानी लहरा रही हो ! और सच कहता हूँ, हजूर की उमर तीस-पैंतीस से अधिक नहीं दिखाई देती !"

प्रभु को अब अपने यौवन और जवानी के जोर पर जैसे दृढ़ विश्वास हो गया। आकांक्षाओं के पंख मे खूब बल आ गया। और उसी समय एक नौकर ने मुखिया रामबहादुर के आगमन की सूचना दी। और एकाएक जिम्मावाल की नसों मे जैसे उत्तेजना छा गई। और चेहरे पर पसीने की कुछ बूँदें भी। मुखिया को सीधे वही ले आने का हुक्म हुआ, और रसोइये को वहाँ से हट जाने का भी। मुखिया कमरे मे प्रविष्ट हुआ। दाँये हाथ की अँगुलियों को अपने झुके सिर के पास बार-बार हिलाकर उसने बन्दगी की। विनीत भाव से नीचे बैठ गया। लेकिन मुखिया का चेहरा देख जिम्मावाल का मन प्रोत्साहित न हो सका। आशा की कली मुकुलित न हो सकी। लेकिन फिर भी अनुकूल समाचार की आशा उसके मन से मिट न सकी।

किन्तु, जब मुखिया ने हेमा के बाप से हुई बातों के बारे मे कुछ हिचकते और हकलाते स्वर मे विस्तार से बता दिया तो कुछ देर पहले सातवें आसमान मे उडती उसकी आशा के सवेग पख जैसे एकाएक कटकर धराशायी हो गये। पराजय-जन्य विक्षोभ से वह और उग्र हो उठा। क्रोधाग्नि से उद्दीप्त ! उसमे करूँ या मरूँ का सकल्प जैसे जाग्रत हो उठा।

"हाँ, तो मुख्या !"—मारे क्रोध के अपने ओठ चबाते हुए तर्जनी तानकर वह बोल उठा—"अब तो हम, या हेमा, या हेमा का वह खबीस बाप ! यह अच्छी तरह जान लो तुम ! यह सारी धन-दौलत और यह

जिम्वाली आखिर रहेगी किस दिन के लिए ? छी ! एक नंगे और भूखे गये-बीते रैयत की इतनी हिम्मत ! उसकी इतनी शोखी कि वह जिम्वाल को अपनी छोरी देने से इनकार करे! तुमने कहा था मुख्या, कि वह बूढ़ा बडा घमडी है ! तो घमंड झाड़ दो उसका ! कोई ज्यादा तरद्दुद की जरूरत न पडेगी ! जिस तरह कपडे में लगी धूल को हम बगैर तरद्दुद के झाड़ देते हैं, उसी तरह उसके घमंड को भी झाड़ने में कोई ज्यादा कठिनाई न होगी ! क्यो, क्या ख्याल है तुम्हारा ?"—कहते-कहते जिम्मावाल की आँखों से जैसे चिनगारियाँ बरसने लगीं।

जिम्मावाल की उग्र मूर्ति देख मुखिया भी मन-ही-मन डर गया। विनय-भरे स्वर मे हाथ जोड़कर बोला—"जैसा हजूर का हुकुम !"

और हजूर ने झट हुक्म भी फरमा दिया—"पानी के मुद्दे मे फँसाओ इस शैतान खबीस बूढ़े को !"

मुखिया कुछ क्षण चुप रहा। गरदन उसकी नीची हो चली। फिर हाथ जोड़ विनय-भरे स्वर मे बोला—"तो इस मुद्दे को खड़ा करने का क्या उपाय किया जाय प्रभु ?"

और प्रभु ने अहकार-भरे स्वर मे उसे फटकारते हुए आश्वस्त भी किया—"अरे ! इतना भी नही जानते तुम ? और पूरे गाँव के मुख्या बन गये? मुख्यागीरी इस अक्ल से तो चलती नहीं भइया ! बेफिक्र रहो ! आखिर मैने इतने 'सारकी' और 'दमाई' आदि पाल रखे हैं किस दिन के लिए ? तुम्हारा तो काम होगा केवल पूरे दिल से इस काम मे सहयोग भर देना ! बोलो, तैयार हो ? आगा-पीछा तो नहीं करोगे बाद मे ?"

मुखिया को लगा जैसे जिम्मावाल के क्रोध की आग में कहीं उसकी अपनी मुखियागीरी ही न जलकर राख बन जाय ! सहयोग से इनकार करना कम खतरे से खाली उसे दिखाई न दिया।

"तो जैसा प्रभु का हुकुम !"—उसने पुनः हाथ जोड़ भयभीत व विनय-भरे स्वर में जवाब दिया—"मै तो वचन दे चुका हूँ कि जहाँ

हजूर का पसीना वहाँ इस दास का खून ! वचन से मै पीछे नहीं हट सकता ! आखिर मै भी छत्री का बालक हूँ प्रभु ! गुरुङ भी छत्री ही होता है प्रभु !"—कहते-कहते एकाएक उसके चेहरे पर जैसे क्षत्रियत्व का गर्व भी झलक आया ।

प्रभु प्रसन्न हो उठे । प्रसन्न स्वर मे बोले—"यही तो चाहिए मुख्याज्यू ! यही तो चाहिए ! अगर हम लोग इन नंगों से दब गये, जरा भी डर गये, तो फिर कहीं के भी न रह जायेंगे ! हुकूमत हमारी चल नहीं सकेगी ! न तुम्हारी मुख्यागीरी चल सकेगी, न मेरी जिम्वाली ! समझे ?"

"समझ गया प्रभु !"—मुखिया ने अब सहर्ष सहमति जताई । दोनों मे कुछ देर चुपके-चुपके बातें होने के बाद गोष्ठी बर्खास्त हो गई ।

(५)

'सारकी' (चमार) दिलबहादुर के दिल का अजीब हाल हो चला । 'करूँ या न करूँ' की दुविधा के दो पाटों के बीच उसका दिल चूर-चूर होने लगा । अपने मालिक के आदेश का पालन करने का साफ मतलब है एक बेगुनाह गरीब का सत्यानास, और पालन न करने का साफ मतलब है अपने निज का सत्यानास ! सारकी जैसी अछूत जाति मे जन्म लेने के बावजूद वह पाप-पुण्य के विचार से अछूता न था । पूर्व जन्म के किसी जघन्य पाप के परिणाम-स्वरूप ही तो वह सारकी जैसी अधम जाति मे उत्पन्न हुआ था यह अन्ध-संस्कार उसके मन पर सवार था । पर यदि इस जन्म मे भी मालिक के बहकाने पर किसी निरपराध को कलंकित करने का पाप उसने कर दिया, तब तो कहीं का भी न रहा वह ! इहलोक तो उसका नष्ट हो ही चुका है, पर परलोक को भी नष्ट कर लेने का यह घोर पाप और अपराध वह कैसे करे ? यह सोचते ही उसका हृदय दुविधा और व्यथा से विमूढ़ हो उठा ।

"हाय भगवान !"—मसोसते हुए दिल से वह बार-बार बोलने लगा—"क्या हम अभागों के लिए तेरे दिल मे जरा भी दया नहीं ? क्या हम अभागों को तूने इसीलिए पैदा किया कि जनम-जनम मे पाप करते रहें, और जनम-जनम मे उस पाप का फल भोगते रहें ? दूसरों के पॉवो तले पिसते रहें ? दूसरों के इशारे और हुकुम पर जो न करना चाहिए वो भी करते रहें ?"

उसकी ऑखों मे ऑसू भर आये। रात आधी से भी ज्यादा बीत चुकी थी। अपने ॲधेरे, अस्वच्छ और क्षुद्र कमरे मे अपनी मैली 'गुन्द्री' (पुआल की चटाई) पर पड़े-पड़े वह करवटे लेता जा रहा था। नीद ऑंखों से रूठ चुकी थी, यद्यपि उसका परिवार उसी नींद मे बेखबर हो सो रहा था। उसकी तरुणी पत्नी अपने दो-वर्षी शिशु को गोद में थामे नींद का आनन्द ले रही थी। लेकिन वह अभागा कर्तव्य-अकर्तव्य की दुविधा के कॉटो से बिधा मारे व्यथा के कराह रहा था।

अपनी पत्नी के गरम-गरम खर्राटे उसके कानो मे आ रहे थे। पुत्र की नरम-नरम उसॉसें भी वह सुन रहा था। इस क्षण उन दोनों पर ध्यान जाते ही प्यार और वात्सल्य के बजाय उसके हृदय मे कड़वी वितृष्णा जाग उठी। उसने पारी-पारी से पॉच शादियॉ कीं। उनमे चार बगैर संतान दिये ही एक-एक कर चल बसी। अब पचास से अधिक उम्र मे उसने अपने साले की परम सुन्दरी सोलहसाला पुत्री से पॉचवॉ ब्याह रचाया था; सतान का मुॅह देखने की लालसा और उमीद से। बुढ़ापे मे एक पुत्र का मुॅह देखने का सौभाग्य उसे अवश्य प्राप्त हुआ, लेकिन जब-जब उसे यह बात याद आती कि यह पुत्र उसकी औरस संतान नहीं, तो वह ग्लानि और लज्जा से गड़कर क्षणिक क्रोध के आवेश मे मन-ही-मन जल भी उठता। लेकिन यहॉ भी वही मजबूरी थी। समाज की ऑखें बचाकर अक्सर जिम्मावाल महेन्द्र हमाल उसकी सुन्दर तरुणी पत्नी के सतीत्व से खेला करता यह रहस्य उससे छिपा कतई न था। किन्तु विरोध या प्रतिशोध का साहस उसे

नही होता। होता कैसे? ऐसे साहस का साफ मतलब और नतीजा उसे मालूम था। भूख और मौत इन दोनों भयानक तथ्यों से अन्य अनेक अभागो की तरह वह भी बुरी तरह डरा करता। उसकी रोटी पर पूरी तरह जिम्मावाल का अधिकार था, और इस प्रकार उसकी मौत अर्थात् जीवन पर भी। वह अच्छी तरह जानता और समझता था कि उसकी रोटी, उसका जीवन, उसकी मृत्यु, उसका घर-परिवार—सब कुछ उसके मालिक का है! इस विशाल संसार मे उसका अपना कुछ नही! और मालिक को अपनी सपत्ति का किसी भी रूप मे इस्तेमाल करने का पूरा-पूरा अधिकार है! उस अभागे की ही तरह वे कमारे और कमारियाँ भी जिम्मावाल की जायदाद हैं! इसीलिए तो वह अपनी कमारी तरुणियो के यौवन से भी खुलकर खेला करता है! पशुओं की तरह उनकी खरीद-बिक्री भी करता है! लेकिन उसकी अपनी पत्नी के सतीत्व से खुलकर खेलने के बजाय छिपकर इसलिए खेला करता है कि उसे समाज का भय है! सरकार और सरकार के कानून का भी! क्योंकि दिलबहादुर 'सारकी' है! अछूत है! अछूत औरत से खुले-आम यौन सम्बन्ध स्थापित करने का साफ मतलब है अपनी ऊँची जात से हाथ धोना! सरकारी कानून के द्वारा खुले-आम 'पतित' करार दिये जाना! लेकिन आश्चर्य कि ऐसे कर्म करते हुए भी किसी भी धनवान को न जाति से हाथ धोना पड़ता है, न धर्म से, न धन से! पतिताई जैसे उसके पास फटकने पाती ही नहीं! समाज और सरकार के हथियार भी या तो उसकी ओर बढ़ते ही नही, अथवा बढ़कर भी पूरी तरह वार करते नहीं! क्यों? क्योंकि वह धनवान है! धन की तेज तलवार उसके पास है! इस तलवार की धार से टकराकर समाज के हथियार भी कट जाते हैं, और सरकारी कानून के हथियार भी!

दिलबहादुर अपने सरल बेबस हृदय से इन आश्चर्यजनक सीधे-सादे सामाजिक तथ्यो पर सोचता-विचारता जा रहा था। और तब वह और भी क्षुब्ध और वितृष्ण स्वर मे उस परमपिता परमेश्वर को धिक्कारते

हुए मन-ही-मन बोलने लगा—"भगवान ! तेरी आँखें क्यों अंधी हैं ? तू क्यो अधा बना हुआ है ? अगर तू अधा नहीं तो ऐसे पतित-पापियो को तू क्यों बरदास करता जा रहा है ? आज जिम्वाल मुझे हुकुम दे चुका है, अगर मै उस बूढ़े गरीब गुरुङ पर मेरे हाथ की रक्सी पीने का कलक लगाने से इनकार करूँ तो वह मुझे कडी-से-कडी सजा देगा ! मुझे राह का भिखारी बना देगा ! मुझे मेरे घर-परिवार से अलग कर देगा ! उस पापी पिशाच के लिए ऐसा करना कोई बडी बात नहीं ! वो तो हमेशा से ही यह सब किये जा रहा है ! जिन कमारियो के पेट से उसने खुद बच्चे पैदा किये, उन बच्चो तक को बचपन मे ही उनकी रोती-पीटती माताओ की गोद से अलग करके बेच देते भी उसे दया-माया नहीं आती ! शरम नहीं आती ! फिर मै तो मै हूँ ! हुकुम इनकार करने पर काँटेदार छडी से पिटवाकर, मेरी खाल खिंचवाकर, फिर घर-परिवार से अलग करके इस बुढापे मे मुझे राह का भिखारी बना देगा !...हाय भगवान ! फिर मै कैसे मानूँ कि तेरे आँख भी है, तेरे दिल भी है ? और तेरे दिल मे दया-माया का लेंश भी है ? और हम अभागे भी तेरे ही बाल-बच्चे हैं ?"

अब उसके हृदय मे मानो क्रोध और अविश्वास की आग भभक उठी । वह मन-ही-मन बोलने लगा—"सब झूठ ! सब धोखा ! तू भी झूठा, और तेरे नाम पर धरम-करम की सारी बात भी झूठी ! तेरे ये तगाधारी बाहुन-ठकुरी भी झूठे ! और तेरे घर की बनी ऊँच-नीच जात-पाँत की बात भी झूठी ! छिपकर दुनिया भर के पाप-कुकरम भी कर लें, और ऊँची जात का गरब भी करें 'जाँटा'[१] ! बेईमान ! हरामी ! सत्तानास हो तुम पापियों का ! तुम बदमाशो का ! उस बेगुनाह गरीब गुरुङ पर मै नहीं लगाऊँगा कलंक ! नहीं लगाऊँगा !! भले ही मै मर जाऊँ ! भले ही उजड़ जाऊँ ! मगर ऐसा कुकरम मै नहीं करूँगा ! नहीं करूँगा !! गले में

---

१. 'जाँटा' = एक परम अश्लील गँवारू नेपाली गाली ।

फँसरी लगाकर मर जाऊँगा, मगर ऐसा पाप नही करूँगा! नहीं करूँगा !!"

कुछ देर तक इस दृढ सकल्प की बिजली उसकी नसों में, उसके हृदय के रेशे-रेशे मे कौदती रही। कुछ देर के लिए जैसे सचमुच उसका दलित हृदय उड़कर एकाएक इनसानियत की ऊँचाई पर जा पहुँचा। इस ऊँचाई के बोध से वह गर्वान्वित भी हो चला। इनसानियत की उत्तेजना उसे सभी मुसीबतो को सहर्ष झेल लेने को उत्तेजित करने लगी। अनजाने ही एक समय नीद का मीठा नशा भी उसपर हावी हो चला। निद्रा माता की गोद मे वह छिप चला। और फिर स्वप्न की दुनिया मे प्रविष्ट हो गया। स्वप्न मे भी यह समस्या उसका साथ न छोड़ सकी। लेकिन समस्या दूसरे रूप मे प्रकट हुई। एक भयानक दुर्घटना के रूप मे! और उस भयानक दुर्घटना से भयभीत हो वह स्वप्न मे ही बड़े जोर से चीख उठा। भय के आतंक के जैसे धक्के खाकर उसकी नींद भी टूट गई।

उसने स्वप्न मे देखा था—जिम्मावाल के मुँह पर ही बडे साहस-पूर्वक उसने जिम्मावाल का आदेश पालन करने से साफ इनकार कर दिया है! और तब जिम्मावाल के क्रोध की सीमा न रही! काँटेदार छड़ी की पिटाई उसके नंगे बदन पर ताबड़तोड यों बरसने लग पडी जैसे गंजे सिर पर बडे-बडे ओलो की घनघोर वर्षा! और उसकी तरुणी पत्नी को उससे छीनकर उस पीटने वाले दूसरे सारकी के हवाले कर दिया गया है! और वह दोसाला सुन्दर बच्चा भी उससे छीन लिया गया है! और वह बच्चा अपने बाप की पिटाई पर जोर-जोर से चीखते हुए अपनी तुतली बोली मे 'बा-बा' करते हुए रोने लग पड़ा है!

जब दिलबहादुर की नींद खुली तो देखा कि सबेरा हो चुका है। उसकी पत्नी घर-बाहर झाड़ू लगा रही है। मुर्गे जोर-जोर से बाँग दे रहे हैं। और वह बच्चा भी बिछौने पर बैठा सचमुच चीख रहा है। उसकी पत्नी अब तक रोज की आदत के अनुसार पुत्र की चीख की उपेक्षा किये जा रही थी, पर पति की आकस्मिक भयानक चीख की

उपेक्षा वह न कर सकी। पति की चीख सुनकर झाड़ू देना छोड़कर वह झट भीतर आ गई। उसने पति से चीखने का कारण पूछा, और बच्चे को झट गोद में उठा उसे पुचकारने भी लगी।

दिलबहादुर अपने सपने की बात पत्नी से छिपा गया, और उस रोते हुए बच्चे को झट पत्नी की गोद से लेकर घर के अदर से निकलकर अपने सँकरे बरामदे मे आ बैठा। बाप की गोद में बच्चा चुप हो चला। पत्नी ने चिलम भरकर हुक्का उसके हाथ में थमा दिया। गोदी की बगल में अपने बच्चे को थामे वह धीरे-धीरे हुक्का गुड़गुड़ाने लगा, और अपने रात के सकल्प तथा स्वप्न की दुर्घटना पर सोचने लगा। सकल्प की दृढ़ता और उत्तेजना नष्ट हो चली। बच्चे की तुतली बोली की वह आकुल मिठास, इस क्षण भी 'बा-बा' इस उच्चारण मे उसकी गोद मे बार-बार जैसे मुखरित होने लगी।

दिलबहादुर का हृदय बार-बार बोलने लगा—"नही नही! इस बच्चे को जिम्वाल ने नही, मैने जना है! सिरफ मैने! इसका बाप मै हूँ, जिम्वाल नहीं! इसकी खातिर मुझे जीना पडेगा ही! जिम्वाल का हुकुम मानना पडेगा ही! जिनगी भर तरसने के बाद कहीं बुढ़ापे मे यह गोद भरी! मेरी गोद मे यह फूल खिला!"

स्नेहावेश मे उसने उस शिशु के सुन्दर मटमैले मुख को कई बार चूमा, और पत्नी के लिए भी उसके हृदय मे आसक्ति का तूफान उमड़ आया। और इस तूफान मे कुछ देर पहले की इनसानियत की वह उत्तेजना जैसे अपने-आप नष्ट हो चली। विनष्ट हो चली। स्नेह के बंधन और जीने की आकांक्षा की मजबूरी ने जैसे एकाएक उसे चोटी से धकेलकर गहरे गड्ढे में गिरा दिया! फेंक दिया!

(६)

हेमा के पिता को ऐसी मुसीबत में फँसने की उमीद कतई न थी। आवेश में वह बहुत कुछ बोल गया था। लेकिन जब उस आवेश का

अभिशाप साकार हो उसके सामने उपस्थित हुआ तो उसकी अक्ल ठिकाने न रही। न रह सकी। एक सवर्ण के लिए, जात्यभिमानी के लिए, 'पानी का मुद्दा' कम भयंकर नहीं होता। 'सब तें कठिन जाति अपमाना!' तो क्या, वह सरे-आम, सारी जात-बिरादरी के सामने, सारे समाज के सामने, एक 'सारकी' के हाथ की रक्सी जान-बूझकर पीने का अपराधी साबित किया जायगा? और इस अपराध में जेल-जुर्माने के दंड भुगतने के अतिरिक्त अपनी जाति से बहिष्कृत भी किया जायगा? वह 'चार-थरिया' गुरुङ न रहकर 'सारकी' की निकृष्ट जाति मे शामिल किया जायगा?

"हे भगवान!"—रो-रोकर छाती-कपार पीटते हुए बूढ़ा मानबहादुर बार-बार बोलने लगा—"मैने कौन-सा पाप किया कि इस बुढापे में ऐसा डड? इस डंड को भोगवाने से पहले ही मुझे ले चलो भगवान! इस दुनिया से उठा लो मुझे! इस अभागे को अब और अधिक न सताओ भगवान!"

मानबहादुर को अब घर से निकलने का साहस न था। अपने खिड़की-हीन घर के एक अँधेरे कोने मे 'गुद्री' (चटाई) पर पड़ा हुआ वह मन-ही-मन बिलख रहा था। लेकिन भगवान के कान मानो मुँदे हुए थे। समाज के कान मुँदे हुए थे। और सरकार का कानून उसपर बरस पड़ना चाह रहा था। क्योंकि एक घृणित 'सारकी' के हाथ की रक्सी पी लेना धर्म, समाज और सरकार इन सबकी आँखों में कम भयानक अपराध न था। एक भयानक अपराधी के दर्द की सुनवाई कैसी? उसके लिए सहानुभूति कैसी? समाज की मर्यादा भंग करने वाले एक 'पतित' की आह और कराह बजाय करुणा के घृणा पैदा करती है! बजाय सहानुभूति के समाज के नेत्रों और वाणी में व्यग का तिरछापन भरती है! सिवा हेमा और उसकी माँ के उस गरीब के दर्द-भरे आँसुओं के लिए, और उस मर्मान्तक मानसिक व्यथा की कराह के लिए किसी अन्य के दिल में न दर्द था, न सहानुभूति थी।

लेकिन हेमा और हेमा की माँ भी इस क्षण उसके पास न थीं। खेतों मे मकई की पौदे जमीन से बीता भर ऊपर उठ चुकी थीं। मिट्टी खोद-कर उनकी जड़ों मे चढ़ानी थी। दोनों माँ-बेटी अभी उसी काम में लगी थीं।

संध्या को वे दोनो माँ-बेटी जगल से पीठ पर घास-पात के बोझ लादे, अपने ढोर-बकरियों को हाँकते हुए घर पहुँची। हेमा झट 'डोका'[१] मे पीतल की गागरी डाल और 'नाम्लो'[२] के सहारे उसे पीठ पर लादे लगभग दो फर्लांग दूर झरने से पानी लेने चली, और हेमा की माँ ढोर-बकरियो को बाँध, उनके आगे घास डालकर घर के अदर-बाहर झाड़ू देने लगी। फिर लोहे के तीन-पाये चूल्हे (ओधान) को जला-कर लोहे की 'ताप्के'[३] में मकई भूँजने लगी। क्योकि दिन के भोजन के लिए 'कोदो' (मडुआ) की रोटी ही बनी थी। और रात में नमक-मिर्च के साथ मकई का चबेना ही किसानो का मुख्य आहार होता है।

मानबहादुर का मन आश्चर्य से सन्न हो उठा कि कब उसने किसी सारकी के हाथ की रक्सी पी? कब उसने यह अपराध किया? वह रक्सी जरूर पीता है! उसकी जाति के सभी लोग पीते हैं! मडुआ, मकई, चावल आदि की रक्सी स्वयं उसके घर मे बनती है! वह स्वयं पीता है! दूसरो को पिलाता भी है! फिर उसे कमी क्या पड गई कि वह एक अछूत 'सारकी' के घर की रक्सी पीये? उसके घर रक्सी पीने जाय? जाने-अनजाने स्वप्न मे भी यह अपराध उसने किया

---

१. पीठ पर लादने की लम्बी टोकरी, जिसे 'डोका' भी कहते हैं और प्रदेश-भेद से 'डोको' भी।

२. डोके से लपेटी हुई रस्सी जो कपार से अटकी हुई, डोके को पीठ पर थामे रहती है।

३. लोहे का एक बड़ा कटोरा जैसा, जिसमें पकड़ने के लिये लोहे का लगभग एक फुट लबा डंडा भी लगा होता है।

हो उसे याद न आ रहा था। फिर इस अपराध का जन्म हुआ कैसे ? लेकिन उस बेईमान सारकी ने तो सरे-आम इस अपराध की गवाही भी दे डाली ! ऐलान भी कर डाला ! हाय ! उस अछूत बेईमान को इस बूढे पर तनिक भी दया न आई ! अपने दीन-ईमान का तनिक भी ख्याल न आया !

मानबहादुर के मन पर अब एकाएक जिम्मावाल की जालसाजी अंकित हो उठी। सब कुछ उसकी समझ में आ गया। हाँ, जिम्वाल उससे बदला लेना चाहता है ! क्योंकि उसने उसे अपनी छोरी देने से साफ इनकार कर दिया ! हेमा ने उसकी ल्याइता बनने से इनकार कर दिया ! लेकिन वह सारकी किस अपराध का बदला लेना चाह रहा है उससे ? वह किस अपराध का बदला चुका रहा है ? उसका तो इस बूढ़े ने कभी कुछ बिगाडा नहीं ? कभी कोई कष्ट उसे दिया नहीं ? कभी कोई कटु वचन तक सुनाया नही ? यहाँ तक कि कभी उसके गाँव मे जाकर उसके निकट बैठा तक नही ?

यह सब सोचकर उसका हृदय असंभावित आश्चर्य, अकल्पित क्रूर व्यथा, और विस्फूर्जित विवश क्रोध के थपेडे खा-खाकर शून्य बना हुआ कराह रहा था ! वह स्वय मौन बन चला था। पत्नी और पुत्री तक से बोलने का साहस और सामर्थ्य उसमे न रह गया था। पत्नी चुपचाप हुक्के पर चिलम चढ़ाकर उसके आगे रख गई। लेकिन हुक्का पीने तक से उसे विरक्ति हो चली। सारकी की शरारत का मूल कारण भी अब उसकी समझ मे आ गया। ससार के सभी लोगो की तरह वह सारकी भी जीना चाहता है ! जीने से उसे भी मोह है ! उसे भी रोटी से मोह है ! घरबार से मोह है ! वह जिम्वाल की जमीन में बसा हुआ है ! रोटी-रोजी के लिए वह जिम्वाल का मुहताज है ! उसी पर निर्भर है ! अतः अपने स्वामी के आदेश की अवहेलना वह नहीं कर सकता ! अवहेलना का साफ मतलब है रोटी-रोजी से हाथ धोना ! प्राणों से, और घर-बार से भी ! और अपने पुरखों की डीह से उजडकर दर-दर

की ठोकरें खाने का भयानक भय भी ! इस भय ने, इस मोह ने ही उस सारकी को इनसान नहीं रहने दिया ! शैतान ने उसे शैतान बनने पर मजबूर कर दिया !

इस प्रकार के विविध तर्कों और व्यथाओं की प्रचड लहरों मे डूबते-उतराते उस अभागे बूढे ने आज रात मकई का 'खाजा' (चबेना) खाने से भी इनकार कर दिया। हेमा और हेमा की माँ ने मान-मनौती की, समझाया-बुझाया, लेकिन बूढे का हृदय व्यथा से और भी अधीर हो उठा। वह तनिक जोर से रो भी पडा ! हेमा और हेमा की माँ के हृदय भी विचलित हो उच्छ्वसित हो उठे। एक प्रकार से, उस सारकी के कलंक लगाने के बाद से ही यह सारा परिवार गाँव की आँखो मे अछूत बन चुका था। उसका हुक्का-पानी बंद हो चुका था। यद्यपि सरकार का न्याय अब भी उसपर बरसा न था, पर समाज का न्याय पहले ही बरस चुका था !

आज तीनो का रात का उपवास रहा। हेमा अपनी 'गुंद्री' पर पड़ी हुई पछता रही थी। अपने रूप-यौवन को धिक्कार रही थी। अपने परिवार की इस मुसीबत का मूल स्वयं अपने-आपको मानकर मारे क्रोध, क्षोभ, ग्लानि और शर्म से वह गड़ी जा रही थी। वह सोच रही थी, पछता रही थी, कि उस कुलच्छनी ने क्यो नहीं प्रेमबहादुर की मृत्यु की खबर पाते ही काली मे डूबकर अपना अन्त कर लिया ? अथवा क्यों नहीं जन्म लेते ही वह मौत के मुँह मे समा गई ? अथवा इस पतित और शैतान समाज में, इस पापी ससार में, उसने जन्म ही क्यो लिया ? हाय ! वह जन्म लेकर और जीवित रहकर अपने प्रिय माता-पिता की विपत्ति का कारण ही तो बनी ? यह सोचकर अब वह चुपके-चुपके रोने भी लगी। रो-रोकर मन-ही-मन बोलने लगी—"क्यों न अब भी 'काली' में डूबकर सारा खेल ही खतम कर दिया जाय ? न रहे बाँस न बजे बाँसुरी ! न मै संसार मे रहूँगी, न मेरे कारण मेरे माँ-बाप को यह अपमान बर्दाश्त करना पड़ेगा !" लेकिन झट यह तथ्य भी उसके मन पर प्रकट हो पड़ा

कि आत्म-हत्या भी उपाय अब न रह गई थी ! अपने जीवन का खेल खत्म कर देने के बावजूद अब वह पिता की जाति न बचा सकेगी ! समाज के अपमान और तिरस्कार से उसका निस्तार न कर सकेगी ! सरकारी कानून के दंड से उसे बचा न सकेगी ! और उस शैतान जिम्वाल के हृदय मे भी कोई करुणा न जगा सकेगी !

यह सोचकर वह व्यथा से और भी अधीर हो उठी। घर-बाहर रात का अँधेरा था, और उसका हृदय व्यथा और निरुपायता के अँधेरे मे कोई पथ टटोल रहा था। कोई ऐसा पथ जो उसके पिता को बेदाग कालिखपुते अंधकार से निकालकर उजाले में पहुँचा दे ! लेकिन कोई रास्ता उसे दिखाई न दे रहा था। कभी उसका हृदय थककर निरुपाय हो बैठ जाता। कभी पुनः साहस करके उस अँधेरे में मार्ग ढूँढ़ने के प्रयास मे लग जाता। लेकिन एक समय उस अँधेरे मे ही प्रकाश की क्षीण रेखा उसके मन की आँखों में कौंद उठी। बार-बार कौंदने लगी। धीमा-धीमा प्रकाश पथ के चौराहो का दिग्दर्शन कराता-सा प्रतीत होने लगा। शकित, आतंकित और संदिग्ध हृदय से उन चौराहों पर वह नजर डालने लगी। लेकिन अन्ततः हृदय के इन भावों को दबाकर विश्वस्त भाव से चोराहे के एक रास्ते को चुन लेने का निर्णय उसने कर लिया। लेकिन इस रास्ते पर कीचड़ था। कीचड की सड़ी-गली बदबू थी। और कीचड़ मे काँटे भी थे। किन्तु उसे 'डूबते हुए को तिनके का सहारा' मानकर उसपर चलने का संकल्प वह कर बैठी। मुसीबत को पार करना था। पिता की जाति उसे बचानी थी। समाज के अपमान और सरकार के कानून से उसकी रक्षा उसे करनी थी। अतः इस रास्ते की गंदगी को मुँह-नाक पर हाथ रखकर वह पार कर लेगी। इस प्रकार अपने पिता की जाति तो वह बचा लेगी ? यह उद्देश्य उसके लिए कम पवित्र न था। अपवित्र मार्ग से पवित्र स्थल की ओर बढ़ना कोई अपराध नहीं माना जाता। बाद मे पैरों से लिपटी कीचड़ की गंदगी को वह धो लेगी।

उसने पूरे साहस और संकल्प से अब अपने-आपको सबोधित किया—"तैयार हो जा हेमा ! किसी भी उपाय से अपने 'बा' (पिता) को बचा ले ! उसकी जात को बचा ले ! दुनिया की आँखों में उसे गिरने और कलंकित होने से बचा ले !"

कुछ देर पहले की थकान और निरुपायता उसके मन से अचानक मिट चली। वह साहस करके अपने अंधकारमय घर के भीतर से पाँव बचाते हुए बाहर निकली। उसने आकाश को देखा। तारों को देखा। आधी रात के बाद का वह समय था। मुर्गे ने अभी बाँग न दी थी। कम-से-कम छे-सात मील रास्ता उसे चलना था। फिर घर के भीतर जाकर उसने चुपके से कपड़े बदले। शायद माँ-बाप निराशा की गाढी निद्रा में बेखबर सोये पड़े थे। अतः वे हेमा को घर से निकलकर विदा होते न जान सके। न देख सके।

(७)

जिम्मावाल के हृदय मे तिरस्कारजन्य घृणा थी, असाफल्य का क्रोध था, प्रतिशोध की भावना थी। उसके ओठों पर जब-तब प्रतिशोध की उग्र मुसकान खेल रही थी। उस बूढे गुरुङ की मनोदशा मन से ही भाँपकर और दुर्दशा की बात जानकर वह मन-ही-मन अट्टहास भी कर रहा था। मन-ही-मन बोल भी रहा था—"एँ ! नगा चला था जिम्मावाल को हेकड़ी दिखाने ! ऐंठ दिखाने ! बदमाश ! अब देख कि क्या-क्या दुर्दशा कराता हूँ तेरी ! शृगाल सिंह को आँख दिखाने चला था ! तैश दिखाने चला था ! जो पैरो की धूल के बराबर भी नहीं वह उड़कर सिर पर पैर रखने चला था ! सिह बनने चला था ! लेकिन एक घुड़की में ही सारी शेखी भूल गई ! अड्डा-अदालत तो काफी दूर है अभी !"—कहकर वह मन-ही-मन फिर अट्टहास कर उठा। उस हँसी की ध्वनि कंठ से बाहर भी आई, लेकिन किसी और को सुनाई न दी।

अब अपने कमरे में चहल-कदमी करते हुए दाँत पीस-पीसकर

घृणा और तिरस्कार के स्वर में मन-ही-मन वह बोलने लगा—"हुँह! हेमा-जैसी रडियाँ! क्या औरतो की कमी है जिम्मावाल को? जाने कितनी ऐसी रंडियाँ उसके चरण चूम चुकी हैं! चरण चूमती रहेंगी भी! ऐ! रूप-यौवन का घमंड करने चली है! अब देख रंडो, कि तेरे भी घमड को किस प्रकार जिम्मावाल अपने पैरो से पीसता है! उसे पीसकर किस तरह धूल में मिलाता है!"—कहते-कहते उसके दॉत एकाएक किटकिटा उठे।

हेमा अपने समस्त रूप-लावण्य के साथ उसके मन में प्रकट होकर भी इस क्षण उसमे करुणा पैदा न कर सकी। मोह का जादू न भर सकी। अपने आशिक को मीठे उन्माद मे अवश न कर सकी। मानो हेमा का सारा रूप, उसका सारा लावण्य, दर्पभरी ललकार और चुनौती बनकर अपने आशिक की आँखो में अब प्रकट हुआ। इस ललकार और चुनौती ने मानो आशिक के मन से सारे माधुर्य को मिटाकर उसे प्रतिशोध का पिशाच बना दिया। उस पिशाच मे अब आसक्ति का माधुर्य न था। आत्मीयता की ममता न थी। मानव-हृदय की करुणा न थी। लेकिन फिर भी उसमे आसक्ति का प्रबल नशा अवश्य था। वह नशा ही मानो इस क्षण प्रतिशोध का पिशाच बना हुआ जिम्मावाल के मन में दहाड़ रहा था।

अब रात के भोजन का समय हो चला। एक थाल में गेहूँ की कुछ पतली रोटियाँ और फूल की कटोरी मे शोरबादार मांस लिये कांछी ने कमरे मे प्रवेश किया। काछी 'नेवार' जाति की कन्या थी। अपने पति से हीन जाति की होने के बावजूद नेपाली प्रथा के अनुसार उसके हाथ का रोटी-मांस अग्राह्य न था। दिन मे सारे घर के लिए भात बनता। लेकिन जिम्मावाल के लिए घी डालकर अलग महीन चावल पकाया जाता। और दूसरों के लिए मोटा सूखा चावल। पर रात में अक्सर रोटी बनती। लेकिन यहाँ भी विभेद था। केवल जिम्मावाल के लिए गेहूँ की, और दूसरो के लिए मकई, फापर या

मड़ुए की। जिम्मावाल के लिए सूखे भुने मांस, घी और मसाले अलग कांछी के संदूक मे धरे रहते। वह जिम्मावाल के लिए मांस स्वयं अलग पकाती। नेवार-पुत्री होने के कारण वह स्वादिष्ट तरकारियाँ बनाने में सिद्धहस्त थी। सो, कांछी के कमरे में प्रवेश करते ही जिम्मावाल की प्रतिशोध-भावना की गाड़ी मंद हो चली। बिछौने पर बैठे-बैठे ही उसने भोजन किया। रोटी का भोजन होने के कारण धोती पहनने की जरूरत न थी। चौके में जाने की आवश्यकता न थी। अलग पीढ़े पर बैठने की जरूरत भी न थी। क्योंकि कच्ची रोटी का भोजन वहाँ 'पूरी' की ही तरह पक्का पवित्र भोजन माना जाता है।

कुछ देर बाद तैयार हो कांछी पुनः कमरे मे आई। किवाड़ बंद किया। गद्देदार पलंग पर पति के पैताने मे बैठकर सरसों तेल की मालिश मे उसके हाथ अब सक्रिय हो उठे। लेकिन हेमा जिम्मावाल के मन से इस क्षण भी अलग न हो सकी। बल्कि कांछी के कर-स्पर्श ने हेमा की याद को और भी ताजा कर दिया। किंतु इस क्षण की याद मे प्रतिशोध की वह उग्रता और निष्ठुरता न थी। हेमा के रूप, लावण्य और यौवन मे जैसे उत्तरोत्तर माधुर्य बोलने लगा। इस बोल का जादू जिम्मावाल के मन मे लालसा की लहरियाँ पैदा करने लगा। वह मन-ही-मन बोलने लगा—"अहा, यदि हेमा भी इसी प्रकार इस पैताने में बैठकर इन पैरों मे हाथ लगाये!" और तब उत्तरोत्तर उसकी यह लालसा प्रबल होने लगी। उस नारी-रत्न को किसी भी प्रकार प्राप्त करने का सकल्प उसका सबल होने लगा। लेकिन झट उसे याद आया कि उसने तो उसका सत्यानास भी करा दिया है! उस परिवार को सारकी से पतित भी घोषित करा दिया है! और समाज इस बात पर विश्वास भी कर चुका है! केवल अभी कानून की मुहर उसपर नहीं लग सकी। फिर, एक जाति से पतित परिवार की कन्या को वह कैसे ब्याहता बना सकेगा? कैसे उसे पा सकेगा? लेकिन फिर भी हेमा को पाने की आकांक्षा उसकी दब न सकी। बल्कि उसे अप्राप्य और अलभ्य

मानकर अब वह और भी प्रबल हो उठी।

कुछ देर ऐसा सोचते रहने के पश्चात् उसकी स्मृति में एकाएक नेपाल के राणा प्रधान मंत्रियो के आचरण के अनेक उदाहरण उभर आये। प्रथम राणा प्रधान मंत्री जंगबहादुर ने 'साल्मी' (तेली) का पानी चलाकर उस अछूत जाति को एकाएक सवर्ण बना दिया! प्रधान मंत्री वीर शमशेर राणा का मन किसी नेवारी लुहार जाति की एक परम सुन्दरी तरुणी पर मचल उठा। और अत मे वह तरुणी 'अति-प्रचण्ड-भुजदण्ड' महाराज वीर शमशेर की 'कांछी महारानी' के नाम से प्रख्यात हुई! और तब 'चार भंज्याग'[1] (काठमांडू उपत्यका) के 'नेवारी लुहार' (कउ) उन धर्माभिमानियों के लिए भी सवर्ण बन गये जो पहले उन्हें अछूत माना करते थे! अछूत मानकर उनके हाथ का हुक्का-पानी नहीं पिया करते थे! और इसी प्रकार नेपाल के शासकों द्वारा गो-मांस-भक्षी 'भोटिया' जाति भी सवर्ण मान ली गई! क्योंकि सुन्दरी भोटियानियाँ उनके महलों की शोभा थीं! उनके भोग-विलास की परम सुन्दर रमणीय सामग्री! जिस किसी भी अछूत जाति की सुंदर सलोनी कन्या पर शासको का मन मचला कि उस जाति का अछूतपन नष्ट होते देर न लगी! और तब उदार हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को भी उसे गले लगाते कोई बाधा न रही! कोई हिचक न रही!

यह सोचते ही वह मन-ही-मन ठठाकर हँस पड़ा। मन-ही-मन बोल उठा—"वाह रे हिन्दू धर्म! और वाह रे हिन्दू समाज! तलवार के भय के सामने सभी चुप!" फिर वह सोचने लगा—"मै नेपाल का राणा प्रधान मंत्री न सही, लेकिन कई गॉवो का जिम्मावाल तो हूँ!

---

१. नेपाली मे 'भंज्याग' उस पहाडी दर्रे को कहते हैं जिसके रास्ते उपत्यका मे आमतौर पर प्रवेश किया जाय और उससे निकला जाय। काठमांडू उपत्यका में प्रवेश के मुख्यतः चार दर्रे हैं। अतः उस उपत्यका को 'चार भंज्यांग' भी कहा जाता है।

अपने जिम्मा के गाँवों का 'राणा' तो हूँ ? तो क्या हेमा के लिए मैं अपने ही पैदा किये झगड़े को भी शात नहीं कर सकता ? अपने ही बुने जाल को भी मैं काट नही सकता ? तो धिक्कार है मेरी जिम्मावाली को ! और धिक्कार है मेरी शक्ति और प्रभुता को ! नहीं नहीं ! मैं हेमा को पाकर रहूँगा ! स्त्रियो में रत्न है वह ! रत्न को पाने के लिए इनसान ने क्या-क्या नहीं किया ! क्या-क्या नहीं करता आया है वह ?"

इस प्रकार के अनेक तर्क-वितर्कों और संकल्प-विकल्पों के बाद उसे नींद आ गई। लेकिन नीद मे भी हेमा उसका साथ न छोड़ सकी। हेमा को आलंबन बनाकर उसका अवचेतन मन जाने कितनी स्थितियो से गुजरने लगा। जाने आशा और निराशा की कितनी लहरियों से खेलने लगा। स्वप्न मे उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि गुलाब का एक ताजा-ताजा खिला फूल उसके पैरो पर आ गिरा है ! उस फूल को वह हाथ से उठाता भी है ! और फिर क्षण मात्र मे जादू की करामात की तरह वही फूल हेमा के रूप मे परिवर्तित हो जाता है ! जिम्मावाल खुशी मे अचानक जैसे पागल हो हेमा को भुजाओ मे कस लेता है ! लेकिन दूसरे ही क्षण भुज-बन्धन से वह उडकर यों विलुप्त हो जाती है जैसे वर्षा ऋतु मे पहाडी ढालो पर जमा हुआ बादल हवा के आघात से ! और फिर कुछ क्षण बाद नये पहाडी बादलो की तरह वह प्रकट भी हो जाती है ! लेकिन अब उसकी भुजाओ के बजाय अतरिक्ष मे ! जिम्मावाल आश्चर्यभरे नेत्रो से आकाश की ओर देखने लग जाता है ! परियो की तरह हेमा के भी उभय पार्श्व से सटे जुडे दो सुनहले पंख आकाश मे फडफड़ा और लहरा रहे हैं ! और कुछ क्षण बाद ही उन पखो मे अचानक आग जल उठती-सी दिखाई देती है ! और क्षण मात्र मे वह आग भयानक लपटों मे बदलकर जल-जलकर जिम्मावाल के सिर पर गिरने भी लग जाती है ! जिम्मावाल स्वयं जलने लग जाता है, और उसका सारा घर भी ! चारों ओर केवल आग की लपटें और हाहाकार के आर्त करुण स्वर !

जिम्मावाल चीख उठता है ! लेकिन तत्काल वर्षा शुरू हो चलती है, और उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि हेमा उस रिमझिम वर्षा में सर्वांग-नग्न नहा रही है ! मुसकुरा रही है ! आग की लपटें अब शान्त हो चली हैं ! और जिम्मावाल मुग्ध हो, आँखें फाड़-फाड़कर उसके अंगों के उन्मुक्त मादक मधुर सौंदर्य को निहारने लग जाता है !

लेकिन कुछ क्षण बाद फिर अचानक जादू के चमत्कार की भाँति हेमा के दोनों हाथ दो बडे पखों मे बदल चलते हैं ! वह स्वर्ग-लोक की परी की तरह मानो स्वर्ग-लोक के उद्देश्य से आकाश में उड भी चलती है ! जिम्मावाल हक्का-बक्का रह जाता है ! और क्षण भर बाद ही दोनों हाथों को ऊपर फैलाये—"ओ, कहाँ चली ? कहाँ चली ?"—चीखते हुए वह हेमा की ओर दौड भी पडता है ! लेकिन हेमा अब तक आकाश मे काफी ऊँचे उठ चुकी थी। और जिम्मावाल ने फिर आश्चर्यभरे फैले नेत्रों से देखा कि बड़े-बडे सुनहले सुन्दर पंखों वाला एक अत्यन्त सुन्दर पक्षी मानो बाज की तरह झपटकर हेमा को अंक मे दबाकर आकाश में तिरोहित हो चलता है ! और जिम्मावाल मानो हेमा के वियोग मे पछाड खाकर जमीन पर गिर पडता है !

स्वप्न की वह मूर्च्छा उसकी कब टूटी उसे पता न चला। लेकिन नये सिरे से फिर अनेक नये सपने वह देखने लगा। स्वप्नो का कोई खास सिलसिला न था, जैसे उन्मत्त व्यक्ति के विचारों मे कोई सिलसिला नही होता। पर, फिर भी वह सपने देखता रहा। और दूसरे दिन, दिन-उठे तक अनेक स्वप्नो के राज्य मे विचरता हुआ शय्या पर ही पड़ा रहा। काछी लेकिन सूर्योदय से पहले ही उसकी शय्या से उठकर घर के काम-काज में लग चुकी थी। वह उस कमरे मे झाड़ू भी लगा गई, लेकिन पति की नींद तोड़ने का साहस न कर सकी।

जिम्मावाल की नींद आखिर खुली। लेकिन फिर भी वह बिछौने पर पड़ा रहा। अब भी स्वप्न की हेमा उसके मन पर मँडरा रही थी। स्वप्न की आतंकजनक घटनाएँ उसकी स्मृतियों में अब भी कौंद, कौंद

रही थी ! किन्तु आतकजनक स्मृतियो के बावजूद हेमा का वह सर्वांग-नग्न-सौन्दर्य उसे इस क्षण भी बडा मोहक लग रहा था । जैसे किसी तेज शराब का नशा आतक की स्मृतियो को दबाये जा रहा हो ! वह हेमा के रूप-यौवन की याद मे मशगूल हो चला । कांछी हुक्का-चिलम भरकर उसके सामने रख गई । कांछी के पद-चाप एवं तमाकू की सुगंध ने जैसे क्षणभर के लिए उसके नशे को तोड़ दिया । चॉदी-जडे लबे पेचवान को मुँह मे डालकर पडे-पडे ही वह धीरे-धीरे हुक्का गुड़गुड़ाने लगा । हेमा को किसी भी प्रकार पाने के उपायो पर फिर से सोचने लगा । और उसी समय रसोइया 'धर्मराज बाजे'[1] नहा-धोकर, चदन-तिलक लगाये, धोती पहने, और तैयार सुरती को मुँह मे डालते हुए कमरे मे प्रविष्ट हुआ । उसने धरती में खूब झुककर जुड़े हाथों को उलीचते हुए 'स्वस्ति' कहकर मालिक को आशीर्वाद निवेदन किया । मालिक ने जवाब मे केवल उसकी ओर ताक दिया ।

"कहो बाजे ? कैसी खबर ?"—मालिक ने धर्मराज बाजे के समुत्सुक प्रसन्न चेहरे को देख मुसकाकर प्रश्न किया ।

" 'असाध्य राम्रो' (अत्यन्त सुन्दर) प्रभु !"—प्रसन्नताभरे स्वर मे जवाब देकर धर्मराज बाजे ने सुरती की पीक एक कोने में फेकी । उसने फिर से चुपके से जवाब दिया—"वो तो आ गई प्रभु ! बुला ले आऊँ यहाँ ?"

जिम्मावाल एकाएक आश्चर्य से आँखे फैलाकर बोल उठा—"अरे ! कौन ? किसे भइया ?"

"हेमा को प्रभु ! उस 'गुरुङसेनी'[2] छोरी को !"

---

१. नेपाल में ब्राह्मणो को 'बाजे' कहकर पुकारते है । बाबाजी का बिगड़ा रूप 'बाजे' ।

२. नेपाली मे 'गुरुङ' शब्द का स्त्रीलिग मे 'गुरुङसेनी' रूप होता है ।

आह, कैसा आश्चर्यजनक सत्य ! जिम्मावाल अचानक मानो खुशी और आश्चर्य से उछलकर बिछौने पर बैठकर बोल उठा--"हेमा आ गई ? कैसे आई ? क्यों आई ? अच्छा ! तो ले आओ उसे ! अभी बुला ले आओ !"

कुछ क्षण बाद ही धर्मराज बाजे के साथ हेमा कमरे में प्रविष्ट हुई। सारे घर मे आश्चर्य की हवा दौड गई। दूसरी औरतों ने झाँका और घर के बच्चे भी दौड आये। लेकिन जिम्मावाल ने सबको डॉट-फटकार कर जल्द अलग कर दिया। और स्वामी का इशारा पाकर धर्मराज बाजे भी वहाँ से चलता बना।

हेमा निगाह नीची किये जिम्मावाल के सामने खडी थी। खडे होने के इस लहजे मे कम जादू न था। इस लहजे ने जिम्मावाल के मन से प्रतिशोध और क्रोध की समस्त भावना को जैसे जड-मूल से मिटा दिया। उसने हेमा को नीचे से ऊपर तक निहारा। खिडकी से छन-छनकर आती हुई धीमी-सी रोशनी में वह रूप उसे बिलकुल अपरूप प्रतीत हुआ। जैसे बाल रवि की रश्मियों मे प्रातःकाल के खिले ताजे फूल और भी सुन्दर दिखाई देते हैं। जिम्मावाल का कुछ देर पहले का स्वप्न मानो स्वयं साकार उपस्थित हो गया हो ! कठिन पहाडी रास्ते से चलकर आने का श्रम और उत्तेजना हेमा के चेहरे को और भी खिला रही थी ! उसका साहस और सकल्प हृदय की अरुचि और व्यथा को दबाये थे। अरुचि ऊपर नहीं आ रही थी, पर रह-रहकर व्यथा की उभरती रेखाएँ उसके आकर्षण को और भी बढ़ा देतीं।

जिम्मावाल अत्यन्त नरम स्वर में मुसकाते हुए उससे बोला—"क्यों ? कैसे तकलीफ की इस अवेले में तुमने ?"

और हेमा जिम्मावाल के नरम लहजे से मन-ही-मन आश्वस्त हो उठी। लेकिन गरदन नीची किये ही व्यथाभरे स्वर मे वह बोली—"एक दुखिया के लिए अवेला क्या ? और कुवेला क्या ?"

और जिम्मावाल ने अज्ञान का नाट्य करते हुए आश्चर्यभरे स्वर में प्रश्न किया—"क्यो ? किसने दुख पहुँचाया तुम्हे ?"

हेमा ने अब एकाएक गरदन सीधी कर ली। एक बार अपनी आँखे जिम्मावाल की आँखों मे डालकर जरा क्रुद्ध स्वर में वह बोली—"क्यों ? अपने सारकी दिलबहादुर की करतूतो का नहीं पता आपको ? और ऊपर से पूछ रहे है कि किसने दुख पहुँचाया तुम्हें ?"

यह उलहना भी जैसे जादू का बड़ा जबर्दस्त तीर था। उलहने का यह क्रुद्ध लहजा भी जिम्मावाल को कम लुभावना न लगा। और क्रोध में उन बडी-बड़ी आँखो की फैली तिरछी चितवन मे माधुर्य का अनुपम विलास ! तीर ठीक निशाने पर जा लगा। जिम्मावाल को लगा जैसे इस उलहने में परायेपन का स्वर कतई नही ! हेमा मानो उसे अपना मानकर ही अब मान करने आई है ! उलहना देने आई है ! किंतु शिकायत में सचाई थी, और जिम्मावाल इस सचाई से झेंप गया।

क्रोध का दिखावा करते हुए हकलाते स्वर में वह बोला—"ऐं ! क्या, क्या—क्या कहा तुमने ? दिलबहादुर ने बदमाशी की ? उस पाजी ने, उस 'जाँटा' बदमाश ने क्या किया ? जरा बताओ तो ? मैं अभी बुलवाता हूँ उसे ! अभी सजा देता हूँ ! बताओ हेमा ! निडर होकर बताओ !"

हेमा को जिम्मावाल की बात पर सचमुच विश्वास हो गया। वह मन-ही-मन पसीज भी चली। जिम्मावाल जैसे एकाएक उसकी नजरों में भला बनकर प्रकट हुआ। उसने खूब विश्वस्त हो एक-एक कर सब बात बता दी। अपने पिता की मानसिक दशा और समाज की टेढ़ी भौंहो के संबध मे भी। फिर एकाएक जिम्मावाल के पैर पकड़कर वह रो भी पड़ी।

रोते-रोते ही वह बोल पडी—"बड़ा एहसान मानूँगी जिम्वाल-ज्यू ! जैसा हुकुम बकसेंगे, करूँगी हजूर ! मेरे 'बा' को बचा लें ! मेरे 'बा' की इज्जत को बचा लें ! उस सारकी को सारे समाज के सामने

सजा दें प्रभु! बड़ा एहसान मानूँगी आपका! जैसा हुकुम बकसेंगे, करूँगी हजूर!"

और हजूर को मानो स्वर्ग का साम्राज्य मिल गया। मानो कुछ देर पहले स्वप्न मे देखी स्वर्ग की वही अप्सरा अब उसके चरणों मे लोट-लोटकर रो रही थी। मानो स्वय स्वर्ग उसके चरणो मे लोट रहा था! अब अदेय कुछ नहीं रह गया। और इस अप्सरा के लिए अकार्य भी कुछ नहीं रह गया। मनोरथ उसका पूरा हो गया! षड्यंत्र उसका सफल हो गया!

(८)

चैत के महीने में वसन्त अपनी पूर्ण प्रौढ़ता में पहुँच चुका था। जैसे प्रियतम वसन्त के स्वागत मे प्रकृति-पटरानी दरबार सजाकर मुसकरा रही थी। पहाड़ की ढालो पर नीचे-ऊपर खडे आम के पेड़ो की कतारें, रंग-बिरंगे बौरो से लदी हुई, यों दिखाई दे रही थी जैसे रग-बिरंगे बेल-बूटों से कढ़ी हुई चादरें उन ढालों पर फैली वसन्त के सैन्य-दल का सत्कार कर रही हों। और बौरों पर गूँजते हुए भौरें, उनके रसों को पी-पीकर यों झूम रहे थे ज्यो प्रेमी प्रेमिकाओं के रसीले अधरों को चूम-चूमकर! आम की डालो पर बैठी कोयलें जब-तब पंचम राग को यो अलापने लग जाती जैसे राज-रानी के भरे-पूरे दरबार में सुकुशल गायिकाओं के मधुर स्वर मुखरित हो उठे हों! सभी पेड़-पौधों मे नवजीवन की मस्ती उभर आई थी। उनके अरुण व तरुण पल्लवों पर नवजीवन का मधुमय सौंदर्य यो खिल रहा था जैसे बाल, तरुण और किशोर नर-नारियों के स्वस्थ चेहरों पर नव रक्त का सौदर्य! जंगलो में भाँति-भाँति के फूल, सुगन्ध और निर्गन्ध, खिल-खिलकर प्रकृति माता की आराधना में लगे हुए थे। और धीमी-धीमी एवं तेज हवा इन फूलों के मिले-जुले सौरभ को हर ठाँव और ठौर में यों वितरित किया करती जैसे पुजारी देवता के प्रसाद को उपासकों मे!

जहाँ-तहाँ धार्मिक और सामाजिक मेले भी जमने लगे थे। महेन्द्र हमाल के गाँव का 'काली माई' का थान अपनी महिमा और माहात्म्य के लिए उस इलाके में मशहूर था। काली माई का वार्षिक मेला लग चुका था। उस इलाके के नर-नारी समयोचित साज-सज्जा के साथ उस मेले में शामिल हुए थे। पुरुषवर्ग 'सुरुवाल' (तंग पायजामा), और 'मयलपोश' (अचकन-जैसी लंबी बगलबंदी) अथवा 'भोटो' (छोटी बगलबंदी) के ऊपर 'इस्कोट' (मुस्लिमकालीन जाकेट) तथा सिर पर गोल नेपाली टोपी पहने था। और पैरों में भैंसे अथवा हिरन के चमड़ों के खुले खुरदरे या अपेक्षया सुन्दर मोजे जूते। लेकिन स्त्रियों का साज-शृंगार पर्याप्त मुखर और भड़कीला था। ऐसे अवसरों के लिए सयत्न-रक्षित भड़कीले वस्त्रों—गुन्यू, चोलो, इस्कोट, पटुका, घलेक और मुजेत्र—में सजीं वे यों दिखाई दे रही थीं जैसे रंग-बिरंगे जीवन्त पुष्प मेले के मैदान में चहल-कदमी कर रहे हों! यथास्थान बुलाकी, फुली, मरोड़ी और ढुङरी के अतिरिक्त सम्पन्न घरानों की स्त्रियाँ कानों में कुंडल की शक्ल की सोने की 'चारपाटी', और सिर पर छोटी तश्तरी की शक्ल का सोने का 'सिरफुल', और सिरफुल के तनिक नीचे सोने की 'सिरबन्दी' भी पहने हुए थीं। और जूड़े में जूड़ाबन्द की तरह सोने का 'काँटा', और गले में हार की तरह लहराती सोने की 'तिलहरी', और कलाई में सोने अथवा चाँदी का 'चूरा' (चूड़ी), और चूरों के ऊपर चाँदी या सोने की 'रँइया', और रँइयों पर सोने-चाँदी का 'बाला' भी। और सधवाओं की नाकों से जुड़ी, सोने की जंजीर द्वारा कान से बँधी, सोने की बड़ी-बड़ी नथें नारी-जीवन के सौभाग्य को जता रही थीं। और सधवाओं एवं क्वाँरियों के पैरों में चाँदी की 'कल्ली' और '.री' उनकी गति में अनवरत झनक-झनक कर बहुत कुछ वैसा दृश्य उत्पन्न कर रही थीं जैसे सारा मेला रुन-झुन की सामूहिक स्वर-लहरियों में अयत्न-रचित नृत्य-मंच के रूप में मुखर हो चला हो!

विस्तृत विशाल हिमालय के विभिन्न अंचलों में मानव-जीवन के

दुख-दर्दभरे आँसुओ का अभाव नहीं है। लेकिन मनुष्य रोता है हँसने के साधनों और अवसरो की प्राप्ति की आकांक्षा से। उनसे वंचित होकर वह रोता है, और उन्हें प्राप्त करते ही वह हँसने-मुसकुराने से वचित रहना नहीं चाहता। यदा-कदा अत्यन्त आकस्मिक सुख मे भी हम रो पड़ते हैं, और अतिशय दुख मे भी हँस पडते हैं! किन्तु रोना आखिर दुख का ही प्रतीक है, और हँसना-मुसकुराना सुख का! नेपाल के हिमालयीय अंचलों के लोग भी दुख-दर्द से आहत हो खूब रोते भी और हँसने का अवसर उपलब्ध होते ही उनके जीवन का वह अतिशय दुख-दर्द जैसे मुक्ति की प्रबल आकांक्षा से उद्वेलित हो सुख की हँसी में विलीन होना चाहता है! जैसे दुखों से आहत कोई व्यक्ति उन्हे भूल जाने की आकांक्षा से सुख-मदिरा की मादकता की शरण लिया करता है!

हाँ, तो काली माई के थान के उस मेले मे सुख-मदिरा की मादकता मे सब झूम उठे थे। नृत्य-गीत की टोलियाँ जगह-जगह मुखरित हो उठी थीं। विशेषकर तरुण रक्तों में यौवन का, बेफिक्री का, और वसन्त का उल्लास मिलकर सबल सवेग नशे का रूप ले चुका था। तरुणियो की एक टोली, परस्पर हाथ-मे-हाथ डाले, अर्ध-वृत्त मे चक्कर काटती और लचकती यो नाचे जा रही थी जैसे किसी पहाड़ी रेल-पथ के मोड़ों पर रेल के जुड़े हुए डब्बे चक्कर काटते लचकते चला करते हैं। जाने नेपाल के किस अचल मे किस काल मे किस कवि द्वारा उस गीत का जन्म हुआ था, किन्तु नेपाल के व्यापक लोक-मानस में प्रविष्ट हो लोक-गीत बनकर उन तरुणियों के मुख से अब मुखरित हो रहा था—

"माईका थानमा कबीको कानमा
वसन्ताका चिड़िया गाउँ छन्,
पालुआका महमा झू-ऊ-ऊ-लेरऽ!"

अर्थात्—"मधुमय नवपल्लवों के रस में झूमती और झूलती हुई वसन्त की चिड़िया माई के थान मे और कवि के कान में गा रही है!" मानो वे तरुणियाँ ही इस क्षण वसन्त की चिड़ियाँ बनी हुई वसन्त के मधुमय उल्लास में काली माई के थान मे गा रही थी! वहाँ कवि कौन था पता नहीं, पर उनके सरस समवेत स्वरों के मधुर-मधुर आघात दर्शकों के कानो और मनो को अवश्य गुँजा रहे थे।

तरुणों की एक सजी-धजी टोली भी उसी मुद्रा में उस महिला-टोली के समक्ष जैसे प्रतिपक्ष रूप मे खडी, नाचते हुए, उन तरुणियों को जवाब दिये जा रही थी। अपने सामूहिक वृत्त मे पहाड़ी रेल की ट्रेन की भाँति घूमते हुए, स्वरो को एक लय मे बाँधकर वे तरुण भी अब बोल उठे—

"हरिअ साड़ी गुरॉसको धारी,
फूल-बुट्टे रेशमका चोली,
डाली-डाली चकमा झू-ऊ-ऊ-लेरऽ!"

अर्थात्—"वसन्त की चिड़ियाँ हरे-हरे पल्लवो की हरी-हरी साड़ियाँ पहने हुए हैं! उनकी साड़ियो मे 'गुरॉस' के लाल-लाल फूलों की धारियाँ हैं! और उनकी रेशम की चोलियो मे तरह-तरह के फूल-बूटे कढ़े हुए हैं! इस परिधान मे सजी-धजी वे चिड़ियाँ वसन्त के मधुमय उल्लास और नशे मे डाल-डाल पर झूल रही हैं! झूम रही हैं! माई के थान मे, और कवि के कान मे गा रही हैं! गुनगुना रही हैं!"

मानो प्रतीक रूप मे वे नाचती हुई तरुणियाँ ही उन तरुणों के मधुर व्यग-विद्रूप का निशाना बनी हुई थीं। जिस प्रकार वसन्त की स्ती में वे चिड़ियाँ डाल-डाल पर झूलती, झूमती और गाती हैं, उसी प्रकार ये तरुणियाँ भी वसन्त की मस्ती मे पुरुष-पुरुष को ढूँढ़ती हैं! पुरुषों पर डोरे डालती हैं! खैर! पता नहीं कि इस व्यग-विद्रूप को समझने की क्षमता वहाँ कितनों मे थी, पर जब वे दोनो टोलियाँ पारी-

पारी से 'भू-ऊ-ऊ-लेरऽ' इस अंतिम पद पर स्वरों का जोर दे-देकर गा उठतीं तो नृत्य-गीत का माधुर्य अपने रस की चरमता मे पहुँचकर दर्शकों के हृदय के प्रकम्पन मे अवश्य बदल जाता।

हेमा भी सज-धजकर मेले मे आई थी। उन नाचती हुई तरुणियों के सस्नेह आग्रह और अनुरोध को वह टाल न सकी। वह भी उनमें शामिल हो चली। मानो स्वर्ग की सामान्य अप्सराओं में स्वयं उर्वशी आ मिली हो! उसके रूप मे जितना माधुर्य था, उसके गले में उससे कहीं अधिक! हेमा के शामिल होते ही नृत्य का महत्त्व और आकर्षण और भी बढ़ चला। दर्शकों का समूह भी बढ़ चला। वसत का नशा, यौवन का नशा, जॉड़ और रक्सी का नशा! एक नशा ही कम मादक नही होता, लेकिन यहाँ तो अनेक नशों की सम्मिलित खुमारी थी। इन नशो के उल्लास मे मिलकर अब एक दूसरे सगीत का स्वर भी मुखरित हो उठा—

"सरीरलाई सिंगारी हेरऽ साथियो!
भित्र्या मनऽ अंधेरऽ पारी बाहिरऽ सिगारी
सुर्गे को पूछऽ पाइनऽ पूछऽ हु'छ संसारी
को हु'छ संसारी, हेरऽ साथियो!"

अर्थात्—"ऐ साथियो! शरीर का शृगार करके, अर्थात् शृगार-किये अपने शरीरों को जरा देखो तो! तुम्हारे मन के भीतर तो अँधेरा है, अँधेरे का कालापन है, छल-छन्द है, और बाहर से शृङ्गार का उजाला! स्वर्ग का पता हमे नहीं है! अर्थात् दूसरी दुनिया की खबर हम नही रखते! हम तो ससारी जीव हैं! साथियो, जरा देखो न, हम संसारी लोग कैसे हैं!"

इस गीत में मानो उमर-खैयामी दर्शन बोल रहा था। इहलौकिक आनंद को ही सब कुछ मानकर उल्लास के नशे मे मस्त उन तरुण-तरुणियो को इस क्षण न स्वर्ग की खबर थी, न नरक की। स्वर्ग-नरक

का भेदभाव मिटकर 'आनंद-ब्रह्म' वहाँ साकार हो उठा था। दर्शक से लेकर नर्तक तक इस आनंद-ब्रह्म मे जैसे एकीभूत हो चुके थे। जीवन के माधुर्य में जीवन की कटुता भी जैसे घुल-मिलकर विलीन हो अपना रूप और गुण-धर्म खो चुकी थो।

कुछ देर बाद नृत्य-गीत का रंग समाप्त हो गया। मेला भी छँटने लगा। और हेमा भी मेले से लौटकर घर वापस आई। आज उसका मन अपने आपे मे न था। वह हमाल की ब्याहता बनकर उसके घर में महीनो से रह अवश्य रही थी, पर उसने अपना मन कभी एक क्षण के लिए भी हमाल को दिया न था। वह अपने ब्याहते स्वर्गीय पति प्रेम-बहादुर को कभी भूली न थी। वह मन-ही-मन हमाल से कम घृणा न करती। अपने माता-पिता के बचाव के लिए ही उसने इस गंदे पथ पर पैर रखने का निश्चय किया था। पैर रख भी चुकी थी। और शरीर से यत्किंचित् भ्रष्ट होकर भी वह मन से आज भी पवित्र बनी हुई थी। जिम्मावाल जैसे बिजली के उस रंगीन बल्ब से मन बहला रहा था जिसके भीतर का तार जल चुका था।

अपने पिता का उद्धार वह करा चुकी थी। सारकी दिलबहादुर को जिम्मावाल के गाँव से सरेआम अपराधी सिद्ध कराकर उजड़वा भी चुकी थी। पिता के कर्ज का तमस्सुक, जिसपर जिम्मावाल ने असल रकम से कई-गुनी रकम लिख रखी थी, उससे फड़वा भी चुकी थी। जिम्मावाल उसके इशारे पर नाचा करता। जैसे बदर मदारी के इशारे पर। लेकिन फिर भी वह मन से जिम्मावाल की कभी न बन सकी। न बन सकी! किन्तु फिर भी वह मजबूर थी। इच्छा करके भी जिम्मावाल से अलग न हो पा रही थी।

लेकिन आज मेले मे उसके मन का मानो एकाएक कायापलट हो गया। किंतु इस कायापलट ने जिम्मावाल की ओर उसके मन को मोड़ने के बजाय उससे और भी दूर कर दिया। और साथ ही स्वर्गीय पति प्रेमबहादुर से भी उसका मन खिसकने लगा। खिसक चला। उसके

पिता मानबहादुर ने मुखिया को बताया था—"अभी कोई नौजवान मरद उसकी आँखो मे नहीं जँचा, इसीलिए वह 'विध्वा' बनी हुई है। मगर आदमी का ही तो मन ठहरा !" सो, उसके पिता का अनुमान आज सही निकला। हेमा की आँखों मे आज एक नौजवान मर्द इस प्रकार जँच गया, और आ बसा कि लाख प्रयत्न के बावजूद उसके मन की आँखों से, उसके हृदय से वह दूर न हो सका। वह नवयुवक उत्तरोत्तर अब हेमा के मन को प्रेमबहादुर से खींच रहा था। उसकी पहली स्मृति पर पर्दा डाले जा रहा था। और हेमा का मन उस युवक को जल्द-से-जल्द पाने और अपनाने को व्याकुल होता जा रहा था। परेशान हो पड़ा था।

× × ×

स्वर्गीय शिवशकर पंत की तीन पत्नियों मे ब्याहता-पक्ष से जयशंकर और उमाशकर पैदा हुए, एवं ल्याइता-पक्ष से सोमशकर और हरिशंकर। ब्याहता पत्नी 'उपाध्याय' ब्राह्मण की कन्या थी, और सबमे बड़ी भी। माहिली 'जइसी' ब्राह्मण की, और कांछी 'मगर' की। नेपाली प्रथा के अनुसार ल्याइता-पक्ष मे उत्पन्न सोमशकर और हरिशंकर पिता की जाति तो न पा सके, लेकिन पिता की 'पत' उपाधि उन्हें अवश्य मिली। सोमशंकर को अपनी माँ की 'जइसी' जाति भी मिली, और वह जइसी ब्राह्मणों मे परिगणित किया गया। लेकिन हरिशंकर को अपनी माँ की जाति न मिल सकी। क्योकि उसकी माँ सवर्ण शूद्रा थी, और वह ब्राह्मण-वीर्य से उत्पन्न हुआ था। अतः वह 'शूद्र' के बजाय तनिक ऊँची 'वैश्य' जाति मे परिगणित किया गया। उसकी अपनी जाति 'खत्री' मानी गई। और ल्याइता-पक्ष से उत्पन्न सोमशकर और हरिशङ्कर पैतृक सपत्ति का अंश भी यत्किंचित् ही पा सके। अर्थात्, पिता की पूरी संपत्ति का छठा भाग ही ल्याइता-पक्ष को प्राप्त हो सका। अतः अपने दो उपाध्याय भाइयों से वे जाति मे भी न्यून रहे, पिता की धन-दौलत के भाग में भी।

हरिशंकर के चेहरे पर मगरनी माँ का किराती मंगोल रक्त ब्राह्मण पिता के आर्य रक्त मे घुल-मिलकर खूब खिल उठा था। जैसे दो रंगों की मिलावट से एक तीसरा विशिष्ट रंग निकल आता है, और दो विजातीय तत्त्वों के संपर्क और संघर्ष से एक तीसरा विशिष्ट तत्त्व। उसकी आँखे काली-काली थी, कुछ खिची हुई, और पतले-पतले ओठों पर मचलती हुई लाली भी कम प्यारी न थी। पर नाक खूब तनी हुई न होकर मगोल रक्त के बोझ से कुछ दबी हुई। और पतली-पतली भौंहों के तिरछेपन में सुन्दरता यो मुसकुरा रही थी जैसे किसी नर्तक के अगों की अनायास वक्र-भंगी! कपोलों के उभार में मगोल रक्त भी कुछ बोल रहा था। और सारे चेहरे के गुलाबीपन पर सिर के काले-काले बाल अपना श्यामल सौंदर्य यो बिखेर रहे थे जैसे गुलाब के विशाल पुष्प पर विकसित काली-काली पँखुडियो वाला कोई विशिष्ट विशाल पुष्प! और अंगों मे गरिष्ठता थी, पुरुषत्व की घनिष्ठता! और उम्र अभी बीस को पार न कर सकी थी।

हरिशंकर की माँ का मायका महेन्द्र हमाल के गाँव मे था। वह अपनी माँ के साथ उस गाँव का मेला देखने आया था। उस नाच मे हरिशकर के 'मगर' मामाओ की लडकियाँ और बहुएँ भी शामिल थी, और उसके कई ममेरे भाई भी। उन्ही के साथ हरिशकर भी उस नृत्य मे भाग ले चुका था। अपने साथी तरुणो के स्वर-मे-स्वर मिलाकर वह भी गाये जा रहा था। जाति से वैश्य व तगाधारी होने के कारण उस क्षण जॉड या रक्सी का नशा उसके चेहरे पर न था, लेकिन नव-यौवन और वसन्त का नशा उसके परम सुन्दर चेहरे पर, और स्वरों मे खूब खिल उठा था, सुपुष्ट हो उठा था। सगीत और नृत्य का जोर उस सौदर्य में और भी जोर ला देता! यही हाल हेमा का भी था। दोनों की आँखें वहाँ चार होते ही मानो दोनो, दोनों की आँखो मे समा गये। प्रथम दर्शन में ही प्रेम का अंकुर फूटकर उद्भूत हो उठा। नाचते-नाचते ही दोनों, दोनों को कनखियों से निहार लेते। लेकिन झट जैसे

सकोच की चाबुक खाकर अलग हो जाते। मानो रह-रहकर दमकती हुई बिजली लज्जा के बादल में छिप-छिप जाती! लेकिन फिर भी उन नेत्रों की प्यास उत्तरोत्तर बढ़ चली। जैसे स्वादिष्ट मीठे शर्बत को जरा-जरा पीने से पिपासा शांत होने के बजाय तेज हो जाती है। परस्पर एक-दूसरे को पी जाने का प्रयास करते हुए भी संकोचवश वे पी न पाते। फिर भी अनजाने ही जैसे एक-दूसरे को वे पी चुके थे। जैसे तट का कगार प्रत्यक्षतः प्रवाह को न पाते हुए भी आर्द्र बन जाता है। परन्तु इस आर्द्रत्व का ठीक अनुभव उन्हे उस क्षण न हो सका। मेले से अपने मामा के घर वापिस आने के बाद ही हरिशंकर को ठीक अनुभव हुआ कि वह तरुणी उसके दिल मे आसन मारकर यो बैठ चुकी है जैसे प्रवाह मे पड़े पत्थर पर जमी हुई काई अथवा पुष्प के हृदय मे पराग। उस आसन को आसानी से हिला सकना अब उसके वश की बात जैसे नही रह गई। अचानक प्यार की उस चिपकी हुई काई अथवा सौरभमय पराग को धो-पोछकर साफ करना अब आसान नही रह गया।

उसके सगे मामा 'नर्जन' के घर मे आज भोजन खूब अच्छा बना था। सुअर और मुर्गे के पकते मास की महक घर के आस-पास फैल रही थी। आज मडुए की रोटी या मकई के खाजे अथवा 'ढिडो'[1] के बजाय सारे घर के लिए भात पक रहा था। चावल के आटे की 'सेले'[2] सुअर की चर्बी मे पकाई जा रही थी। हरिशकर की माँ ब्राह्मण की ब्याहता बन जाने के बावजूद 'मगर' जाति की ही बनी रही। अतः अब भी सुअर-मुर्गे के मांस एव जॉड़-रक्सी का खान और पान उसके लिए

---

१. गरम पानी में मकई या मडुए के आटे की नमक के साथ बनाई गई गाढ़ी लप्सी को 'ढिंड़ो' कहते हैं। नेपाल के पहाड़ों मे गरीब किसानो का यह भी एक मुख्य आहार है।

२. नेपाल के पहाड़ों में कुंडल की शक्ल की जलेबी की तरह आटे की मीठी पूरी पकाई जाती है जिसे 'सेल' कहते हैं।

निषिद्ध न था। लेकिन उसी के गर्भ से उत्पन्न हरिशंकर ब्राह्मण-वीर्य की बदौलत कुछ ऊँची जाति का बन चुका था। अतः उसके लिए यह खान-पान निषिद्ध था। किन्तु फिर भी यज्ञोपवीत धारण करने से पहले तक अपने मामा अथवा अपने गॉव के मगरों के घर वह सुअर-मुर्गे का मांस खाया करता, अडे खाया करता, जॉड और रक्सी भी पिया करता। पर अब जनेउधारी बन चुका था। सुअर-मुर्गे के मांस उसके खाद्य न रह गये थे। जॉड़-रक्सी का खान-पान भी निषिद्ध बन चुका था। और दूसरों की तो बात क्या, स्वयं अपनी मगरनी मॉ के हाथ का पकाया कच्चा भोजन तक खाना भी उसके लिए पापकारक, पातित्यकारक बन चुका था। अतः उसके लिए पृथक् घर मे रसोई बनाने का प्रबन्ध था। पत्थर के तीन-चार टुकड़े डालकर एक चूल्हा बना दिया गया था।

सुअर अपने खोभाड़ मे चें-चे चूॅ-चूॅ कर रहे थे, लेकिन मुर्गियॉ अपने शिशुओ के साथ मानो इस अतिथि को देखने का कौतूहल न रोक सकने कारण ही वहॉ अक्सर हाजिर हो जाया करती। और चूल्हे-चौके मे इन निषिद्ध पक्षियो के संपर्क से अपने पुत्र की जाति कही खराब न हो जाय इस आशंका से उसकी मॉ द्वार पर बैठी हाथ में एक टहनी लिये पहरेदारिन का काम कर रही थी। और हरिशंकर केवल धोती पहने अपने जलते चूल्हे के आगे उकड़ूॅ होकर बैठा था। लेकिन मन उसका हेमा से बॅधा हुआ था। अतः भात जलकर खाक बनने लगा था। पर हरिशंकर को कुछ खबर न थी।

मॉ ने झट फटकारभरे स्वर मे याद दिलाई—"साइला! भात तो जल गया? कहॉ मन है तेरा?"

और हरिशकर ने मानो स्वप्न से चौककर, तनिक लजाकर, झट चूल्हे से भात उतारते हुए तनिक खीझभरे स्वर मे जवाब दिया—"क्या करूॅ जल गया तो? अच्छा होता कि मै जनेऊ पहनता ही नही!"

और पुत्र की खीझ पर पसीजकर मॉ वात्सल्यभरे स्वर में बोली—

"घबड़ा मत साइला! और जनेऊ पर नाहक नाराज नहीं होते! इस जनेऊ के लिए जाने कितने लोग तरसा करते हैं! ऊँची जात बिना तपेस्या के तो नहीं मिलती! भात के लिए जात नहीं गँवाते! देख! टंडन की 'माइली' छोरी को अब घर ले आ! अपनी खत्री जात की है! रोज-रोज अपने हाथ से भात बनाने का टटा तो तेरा मिट जायगा?"

लेकिन इस समय टंडन की पुत्री की चर्चा हरिशंकर को तनिक भी अच्छी न लगी। खीझकर फिर बोला—"तुम्हें तो आमाँ, सिवा टंडन की छोरी के और कोई दिखाई देती नहीं! बस, कहे देता हूँ तुमसे! मैं ब्याह नहीं करूँगा!"

"क्यों?"—माँ जरा घबड़ाकर बोली—"कैसी भली छोरी है वो! और ब्याह करेगा क्यों नहीं? तो क्या जोगी बनेगा तू?"

"मै कुछ भी बनूँ, तुम्हें क्या?"—हरिशंकर ने फिर नाराजीभरे स्वर मे कहा।

और बेटे के मनोभाव को मानो भाँपकर इस बार माँ तनिक हँसकर बोली—"नाराज न हो 'लाटा' (पगला)! तेरे लिए खसी का 'माँसू' माँगने रूपा अभी-अभी जिम्वाल के घर गई है! पेंदी का जला भात छोड़कर ऊपर-ऊपर का माँसू के साथ खा लेना! गाय के 'घिउ' (घी) मे कुछ सेलें भी तेरे लिए बनवा दूँगी! अच्छा?"

लेकिन फिर भी हरिशंकर संतुष्ट न हो सका। उलहनाभरे स्वर मे बोला—"हाँऽऽ! तुम लोग खुद तो सुअर और मुर्गे का स्वादिष्ट माँसू खाओ, और मेरे लिए मँगनी का खसी का!"

"दुत् लाटा!"—माँ ने हँसकर मजाक किया—"जीभ के चटकार के आगे तू जनेऊ को भी नहीं मानता! अरे, जिम्वाल के घर का बना 'माँसू' तो इतना स्वादिष्ट होता है कि तेरी जीभ से ही सट जायगा! छूटने का नाम भी न लेगा! और रूपा को वे लोग बहुत मानते हैं। वह खाली हाथ न लौटेगी! वह अभी आई नानी! जरा धीरज तो धर!"

उधर रूपा पके मांस के लिए जिम्मावाल के घर पहुँची थी। चूँकि रूपा की रूप-मदिरा मे जिम्मावाल का मन आसक्त था, अतः रूपा के लिए वहाँ कोई वस्तु अलभ्य न थी। अब काछी के बजाय हेमा ही जिम्मावाल के लिए मास पकाया करती। अब हेमा ही 'कांछी' इस प्रियतम संबोधन की अधिकारिणी बन चुकी थी, और घर की महिलाओ की ईर्ष्या की अधिकारिणी भी। रूपा और हेमा मे दोस्ती भी हो चली थी। मेले मे ही रूपा से उसे मालूम हो चुका था कि वह युवक उसकी फूफी का लड़का है। इस क्षण रूपा को अकेले में पाकर हेमा उस नवयुवक के सबध मे अधिकाधिक जानने को उत्कठित हो उठी। लेकिन लज्जा उसकी जिह्वा को सीधे लहजे मे कुछ पूछने से रोक रही थी। अतः वह पैंतरेबाजी से काम लेने लगी।

"अच्छा रूपे!"—मांस की चढ़ी तसली मे दो-तीन बार कलछी चलाकर मुसकाते हुए धीमे स्वर मे वह बोली—"अगर तेरी फूफी का छोरा है वो, तो ब्याह तो तेरा हो सके है उसके साथ? ऊपर से जरा मूरख जरूर दीखे है, मगर भीतर से कम रसीला नहीं है! अगर वो तेरे पल्ले पड़ जाय, बड़ा अच्छा हो रूपे?"

"धत्!"—रूपा तनिक लजाकर भी सीधे और धीमे स्वर मे बोली—"मेरी जात का होता तो भला ब्याह भी कर लेती! मगर वो तो खत्री है न! और तिसपर फूफी का छोरा! अपने मामा की छोरी लेगा तो उसपर 'मुद्दा' नहीं चलेगा?"

हेमा रूपा की सरलता पर मुग्ध हो उठी। मुसकाकर फुसफुसाते हुए बोली—"अच्छा रूपे! अगर जिम्वाल तुझे ल्याइता बना ले तो?"

"धत्!"

"धत् मत कर! जिम्वाल की नजर तेरे पर भी है! खबरदार रहना रूपे!"

रूपा सीधी सरल बालिका थी। वह तनिक भयभीत आँखों से

दीपक की टिमटिमाती रोशनी मे हेमा को देखने लगी।

हेमा पसीजकर स्नेहभरे स्वर मे बोली—"देख बहिनी! अपने दाज्यू-जैसे ही किसी नौजवान के साथ तू कही जल्दी भाग निकल जा कि इस छिनाल की नजर से बची रहे! मै तो अपनी किस्मत को रो रही हूँ बहिनी! कही तुझे भी रोना न पडे!"—कहते-कहते उसकी आँखें एकाएक छलछला आई।

हेमा ने झट 'घलेक' मे आँखे पोछीं। और उन आँसुओं से रूपा भी पसीजकर एकाएक अपने उसी सीधे सरल लहजे में स्नेह भरकर बोली—"दीदी! तुम भी क्यो नहीं भाग चलती यहाँ से? मेरे हरी दाज्यू के साथ भागोगी? मैं कहूँ उससे?"

और हेमा ने झट जीभ पर दाँत रखकर तर्जनी हिलाते हुए उसे धीमे स्वर मे सावधान किया—"चुप! कहीं कोई सुन लेगा!"

और झट मांस की तसली को उसने चूल्हे से उतार लिया। रूपा के कटोरे को मांस और शोरबे से खूब भरकर तनिक मुसकाते हुए बोली—"तेरे दाज्यू की जीभ चटपटा रही होगी रूपे! जा, जल्दी भाग जा!"—कहकर कटोरी को उसके हाथ में थमा दिया।

मांस के और भी कई 'प्रकार' बने थे।[1] भित्र्यास, भुटुवा और कबाफ भी। हेमा को याद आ गया। रूपा को उठकर चलते देख वह फिर बोली—"हाँ, जरा-जरा यह भी लेती जा! तेरा दाज्यू याद तो रखेगा!"—मुसकाते हुए कहकर उसने शाल के पत्ते की दोनियो मे अलग-अलग भुटुवा, भित्र्यास और कबाफ भरकर उसके हाथ मे थमाते

---

१. नेपाल के धनी सामन्ती घरो मे मांस के अनेक प्रकार बनते हैं; जिनमे 'भित्र्यास' बेसन मे लिपटा हुआ बिलकुल सूखा होता है। 'भुटुवा' घी-मसाले में ही भूनकर पकाया जाता है। 'कबाफ' में घी कम डाला जाता है, पर मसाला अधिक। इसी प्रकार 'अचार' इत्यादि कई प्रकार होते हैं।

हुए—"ले, इन्हें 'घलेक' में छिपाकर जल्दी भाग जा ! कोई देख न पावे !"—कहकर उसे झट विदा कर दिया।

(९)

जिम्मावाल की तो मानो नाक कट गई। उसके जीवन का यह प्रथम अनुभव था कि उसकी पत्नी को कोई भगा ले जाय, अथवा पत्नी स्वयं इस प्रकार भागने का साहस कर सके। अपनी ल्याइताओं से अनुचित सबंध के अभियोग मे अनेक पुरुषों को फँसाकर उनसे काफी रकम वह ऐंठ चुका था, लेकिन इस प्रकार कोई पत्नी उसके अपने घर से भागी न थी। बेचारा जिम्मावाल किसी मुद्दे के सिलसिले में अपने गाँव से अपने जिले के अड्डे में पहुँचा था। घर से कई रोज अनुपस्थित रहा। इसी बीच यह अनर्थकारी घटना घट चली। लेकिन भगाने वाले का पता अब अज्ञात न रह सका। उसे मालूम हो गया कि 'नर्जन' मगर के भांजे की यह करतूत है। 'करनास' गाँव यद्यपि उसके गाँव से काफी दूर न था; लेकिन वह गाँव उसकी अपनी जिम्मावाली से बाहर राजा हरिबहादुर शाह के राज मे पड़ता था। अतः जोर-जबरदस्ती की कोई गुंजायश भी न थी। इस लाचारी ने उसके क्रोध को और भी भभका दिया। लेकिन इस क्रोध का निशाना उसके अपने गाँव का, अपना रैयत नर्जन मगर बना, जिसके भांजे हरिशंकर खत्री ने उसकी हेमा को भगा लिया था।

नर्जन को हाजिर करने का झट हुक्म हुआ। दस मिनट के बाद ही वह गरीब हाजिर किया गया। मारे भय के वह थर-थर काँप रहा था। ओठों पर पपड़ियाँ पड़ रही थीं, और चेहरा फक पड़ चुका था। थर-थर काँपते हुए हाथो को जोड़े जिम्मावाल के सामने वह खड़ा था। आँखों में भय के आँसू थे, पर मुँह बंद था। कंठ अवरुद्ध। मानो स्वयं क्रोधोन्मत्त मृत्यु के समक्ष वह खड़ा हो !

"बदमाश, नीच जात मगर !"—जिम्मावाल दाँये हाथ की तर्जनी

को बार-बार नचाते क्रोध की आग में तपाई हुई वाणी की सलाखें उसे दागते हुए बोला—"यह सारी करतूत तेरी है 'जॉटा' ! तेरी ! जिस पत्तल मे खाओ उसी मे छेद करो ! यही स्वभाव होता है नीच लोगों का ! तुम नीचों का कोई धर्म नहीं ! लातों के देवता केवल बातो से ठीक नही होते ! अब नमकहरामी का दड तुझे देता हूँ देख !"—कह-कर स्वयं उठकर उसके मुँह पर उसने कस-कसकर कई थप्पड रसीद किये और पैर से एक जूता निकाल उसकी पीठ पर ताबडतोड बरसाने भी लगा।

नर्जन की पत्नी अब तक वहाँ आ पहुँची थी। वह झट पति के बीच मे आकर आरजू-मिन्नत करते अत्यत दीनताभरे स्वर मे बोली—"हजूर ! गरीबपरवर ! मेरे बूढे का क्या दोश प्रभु ? मेरे तो खुद घर मे आग लग गई ! जाने रूपा भी किस कलमुँहे के साथ भाग निकली !"

रूपा के भागने की खबर सुनकर जिम्मावाल और भी क्रोध मे पागल हो उठा। जैसे जले पर अचानक नमक छिड़क दिया गया हो ! हेमा भी भाग चली, और भावी कांछी रूपा भी ! चोट-पर-चोट ! चोट-खाये हिंस्र जन्तु की तरह वह दहाड़ उठा। झपटकर उस बुढ़िया की पीठ पर भी जूते बरसाते हुए क्रोध-कम्पित स्वर मे वह बोलने लगा—"बदजात हरामजादी ! यह सब तुम लोगों का ही जाल है ! मिलकर बुना हुआ जाल ! जान-बूझकर किया गया धोखा ! बिलकुल फरेब ! मै खूब जानता हूँ तुम लोगो को ! बदमाशी करके अब आई है आरजू करने ! बिन्ती करने ! बदमाश ! हरामजादी !"—कहते-कहते क्रोधावेश मे वह खुद हाँफने भी लगा।

अतिशय थकान महसूस करते ही वह झट दालान मे बिछे कंबल पर आकर बैठ गया। और नौकर को क्रोध से काँपते स्वर में आदेश देते हुए बोला—"तू तो ठकुरी का छोरा है भद्रे ! ले तो ! इस जॉटा मगर की पीठ नंगी करके गिनकर सौ कोड़े लगा तो तू ! बता तो दे

इसे कि धोखा और नमकहरामी का फल क्या होता है !"

स्वामी का आदेश पाकर भद्रबहादुर का क्षत्रियत्व जैसे अचानक जाग उठा। झट लपककर अपने सबल हाथों से झिटककर उसने नर्जन से उसकी पत्नी को अलग कर दिया। जैसे पेड से लगी डाल को कुल्हाडे के एक ही प्रहार से किसी ने काटकर अलग कर दिया हो! नर्जन की पत्नी भद्रबहादुर का जबर्दस्त झटका खाकर कुछ गज दूर जा गिरी। और भद्रबहादुर पुनः जोरदार उत्साह के साथ जैसे पेड़ के झाड़-झंखाडो को भी साफ करने मे लग पडा। उसने नर्जन के सिर से गोल नेपाली टोपी को उतारकर दूर फैंक दिया। शरीर से लगे फटे 'भोटो' का पल्ला खूब जोर से झकझोरकर और भी चीथड़ा बना दिया। जैसे कोई व्याधा किसी चिडिया को पकड़कर बड़ी बेदर्दी से उसके पर और पंख नोंच डालता है। फिर उसे जबरन उकडूँ बनाकर उसके हाथ-पैर बाँधने का प्रयास वह करने लगा।

युवक भद्रबहादुर की कठोर पकड मे फँसा हुआ बूढ़ा नर्जन बहेलिए के क्रूर पंजे में फँसे पंछी की तरह शक्ति भर छूटने का प्रयास करते हुए फडफडा रहा था। नर्जन की पत्नी अपने बूढे पति की दुर्दशा पर अचानक जैसे पागल हो प्रबल वेग से भद्रबहादुर पर झपट पडी। और उसकी एक बाँह पर इतने जोर से दाँत गड़ा दिये कि वह मारे दर्द के चीख उठा। हाथ की रस्सी छूटकर नीचे गिर पड़ी।

लेकिन दालान पर बैठे जिम्मावाल ने दूसरे नौकरों को ललकारा—"नमकहरामो! तमाशा देख रहे हो? धिक्कार है तुम्हारी मर्दानगी को कि एक अदना औरत को भी तुम लोग वश मे नहीं कर सकते! छी !!!"

नौकरो मे से भी एक-दो पर अब पौरुष का नशा सहसा छा गया। शिकारी कुत्तो की तरह उनमे भी जोश भर आया। दो तरफ से दो ने नर्जन की पत्नी के दोनो हाथ पकड़कर घसीटना शुरू किया। वह पति से दूर कर दी गई। घसीटी जाती हुई वह उन नौकरो पर धिक्कार की बौछार भी कर रही थी—"ओ कुत्तो !! तुम खुद गरीब होकर गरीबो की

जान ले रहे हो !!!! मालिक के एक टुकडे ने दया-धरम, विचार-विवेक सब कुछ छीन लिया तुम्हारे मन से !…”

और दालान पर बैठे मालिक ने फिर ललकारा अपने कुत्तों को—“खींच ले जवान इस बदमाश बुढ़िया की ! लगा कस-कसकर चपत इसके मुँह पर भी ! और हाथ-पैर बाँधकर बना दे ‘मुर्गी’ इस बदमाश को भी ! मुर्गे-मुर्गियों की इस जोडी का फिर से दुबारा ब्याह तो करा दे !”

इस ब्याह की बात पर उन पशुओं के मुँह से जोर की हँसी फूट पड़ी। अब उनमे पाशविक सरसता का नशा भी उभर चला। नर्जन बाँधकर मुर्गा बना दिया गया, और नर्जन की पत्नी मुर्गी ! और मालिक के आदेश पर उनपर रस्सियो के कोडे भी बरसने लगे। नशा उत्तरोत्तर तीव्र होने लगा। कोडे बरसाते हुए, खीसें निकाल-निकाल, ओठो पर विक मुसकान उभार-उभारकर एक क्रूर मदारी के लहजे में वे बोलते भी जाते—“बोल मुर्गा कुकड़ूँ कूँ-ऊँ-ऊँ ! बोल मुर्गी तू भी ! बुला पास अपने मुर्गे को !…नहीं, मुर्गा तेरा रूठ गया क्या ?…”

इस खेल में अब जिम्मावाल को भी खूब रस आने लगा। उसने भी पैशाचिक हँसी हँसकर कथोपकथन में सहयोग दिया—“अरे, ओ सूरे (सूरबहादुर) !!! मुर्गा रूठ गया तो क्या, मुर्गी को ही उसके पास पहुँचा दे ! पालकी पर चढ़ा के ! मेल-मिलाप करा दे दोनो का ! पुत्र होगा !”

पुनः पाशविक हँसी का फौवारा छूट पड़ा। दर्शकों में कुछ लोग इस दृश्य से मन-ही-मन क्षुब्ध भी हो चले थे। पर वे किंकर्तव्य-विमूढ़ थे। चुप थे। और कुछ लोग चुपचाप खिसक भी चले। जिम्मावाल की पत्नियाँ भी तनिक दूर से इस दृश्य को देख रही थीं। हेमा और रूपा के भाग निकलने पर उन्हें मन-हो-मन खुशी ही हुई थी। और इस क्रूर पैशाचिक दृश्य को देख मन-ही-मन क्षुब्ध होकर भी कुछ बोल सकने से समर्थ वे न थीं। कई तो कमरे मे छिपकर चुपके-चुपके रोने भी लग

पड़ीं। पर आँसुओं को खुले-आम दिखा सकने का साहस या सामर्थ्य उनमें न था।

मालिक के आदेश और इशारे पर दोनों नौकरों ने नर्जन की पत्नी को अपनी जुड़ी बाँहों की पालकी पर जबरन लादकर मार से मूर्च्छित हो-चले उसके पति के शरीर पर फेंक दिया। जैसे कूड़े के ढेर पर कूड़ा फेंक दिया गया हो! मार खाकर भी नर्जन की पत्नी अभी बेहोश हुई न थी। अपने पति की बेहोशी पर वह चीख उठी—"मेरे बूढ़े को पापी ने मार डाला, मार डाला रे!!! हे भगवान!!! देखो तुम! हे भगवान!!!..."

पर भगवान के भक्त ने ही कहा है—"सबहिं नचावत राम गोसाईं। उमा दारु-योषित की नाईं!" अर्थात् भगवान की मरजी के बिना कुछ होता नहीं! उसकी मरजी के बिना पत्ता तक हिलता नहीं! अर्थात् जिम्मावाल के आँगन में अभी जो कुछ हो रहा था सो भगवान की मरजी से! सो, भगवान की मरजी के वे पुतले इस पैशाचिक नृत्य में नाच-नाचकर स्वाद लिये जा रहे थे। और भगवान की मरजी के प्रधान पुतले जिम्मावाल ने मानो भगवान की ही मरजी पर आश्चर्य प्रकट करते पुनः अपने पुतलों को आदेश दिया—"अच्छाऽऽऽ! मुर्गी तो अब जोर-जोर से बाँग भी देने लग पड़ी! बन्द कर, बन्द कर दे मुर्गी की चोंच को भी!"

और फिर नये सिरे से मार खाते-खाते उस मुर्गी की चोंच भी जल्द बन्द हो चली। नेपाल की सामन्ती शासन-शृंखला की निम्नतम कड़ियों की क्रूरता ऊपर की कड़ियों से कहीं अधिक सबल और सवेग होती थी। और उनकी इस सबलता का सहारा थीं वे ऊपर वाली कड़ियाँ ही! हर निरकुश शासन-शृंखला का यही स्वरूप, यही स्वभाव होता है! जैसे क्षुद्र सहायक नदियों में अधिक उछलने-कूदने का स्वाभाविक धर्म होता है, और इन्हीं क्षुद्र नदियों के सहयोग से बनी बड़ी नदी अधिकाधिक सबल, होकर भी गभीर गति से चला करती है।

× × ×

नर्जन का जवान बेटा श्यामबहादुर उस वक्त घर पर न था। खेत मे काम पर लगा था। लेकिन यह खबर बिजली के वेग से उस खेत मे भी जा पहुँची। उस युवक के सारे शरीर मे जैसे क्रोध की बिजली कौद गई! कौंदने लगी! नया खून! तिस पर स्वभाव से उद्दंड! उद्दंडता मे स्वाभिमान की भावना भी उसी वेग से उछलती है जैसे पहाड़ की छोटी-छोटी नदियाँ मार्गावरोधी चट्टानों की चोट से सवेग होकर। अपने माँ-बाप के उस क्रूरतम घिनौने अपमान की क्रूर खबर से खूब चोट खाकर श्यामबहादुर भी उन्मत्त हो उठा। वह खेत मे खड़ा न रह सका। वायुवेग से वह जिम्मावाल के घर की ओर दौड़ पड़ा। उसके माँ-बाप के बधन अब भी खुले न थे। बिजली के वेग से वहाँ पहुँचकर झट कमर के पीछे बँधे 'खुरपेटा'[1] से हँसिया निकालकर इतनी फुर्ती से माँ-बाप के बंधन उसने काट दिये कि सभी हक्का-बक्का रह गये। किसी को भी हस्तक्षेप अथवा मना करने का न समय मिला, न साहस हुआ। और फिर उसी फुर्ती से मानो शेर बनकर दालान मे बैठे जिम्मावाल पर वह एकाएक झपट भी पड़ा। सम्हलने का उसे मौका तक न दे उसकी छाती पर सवार हो दोनों हाथों से उसका गला दबाकर मारे क्रोध के काँपते स्वर मे वह बोला—"पापी! छिनाल! जाँटा! घर में ढेर-की-ढेर औरतो के रहते भी छिनालपन तेरा खतम नही हुआ! गरीबों की बहू-बेटियो की आबरू भी लेता है, और गरीबों का खून भी करता है! उन्हे हर तरह से सताता भी है!"—इतना कहकर उसका गला तनिक जोर से दबाते हुए वह फिर बोला—"मार दूँ जाँटा, जान से! न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी!"

---

१. नेपाल के पहाड़ी किसान कमर के पीछे कमर से लगी डोर मे काठ का एक गोल-सा तरकस बाँधे रहते हैं जिसके बीच के छेद से 'हँसिया' लटकता रहता है। इसे 'खुरपेटा' कहते हैं।

जिम्मावाल शरीर से बूढ़ा होकर भी बिलकुल कमजोर न था। लेकिन उस युवक की क्रूर पकड़ मे पडकर खूब जोर से घिघियाने और फड़फड़ाने लगा, ठीक उसी तरह जैसे वधोद्यत व्याध की पकड में पड़कर कोई पछी। मानो स्वयं मूर्तिमान मृत्यु उसकी छाती पर बैठी उसे ललकार रही हो! मारे भय के उसका चेहरा पानी-पानी हो गया। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। ऑखे पथरा चलीं। लेकिन भद्रबहादुर भी अब तक बैठा न रहा। उसने लपककर श्यामबहादुर की टॉग पकड़कर इतने जोर से उसे खीचा कि जिम्मावाल को पकडे हुए ही वह दालान से नीचे लुढ़क पड़ा। जिम्मावाल तब तक मूर्च्छित हो पडा था। गले की कोई खास नस मरोडी जाकर अचानक निष्प्राण-सी हो चली थी। लेकिन श्यामबहादुर की पकड से उसे मुक्ति तत्काल मिल गई।

सारे घर मे हाहाकार मच गया। कुछ लोग पानी-पखा लेकर जिम्मावाल के उपचार के लिए दौडे। और जिम्मावाल का छोटा लडका गोविन्दबहादुर 'खुकुरी' (नेपाली तलवार) लेकर भद्रबहादुर की चपेट मे पड़े श्यामबहादुर की ओर दौड़ पड़ा। "मारो, खतम करो बदमाश जॉटा मगर को! खुकुरी लो! खतम करो! खतम करो भद्रे!"

श्यामबहादुर के मॉ-बाप बन्धन-मुक्त हो चुके थे। होश पहले ही पलट आया था। अब वे निष्क्रिय न रह सके। मार खाकर हृदय की रही-सही दीनता की राख जैसे दूर हो चली थी। लुहार के हथौड़े की चोटे खा-खाकर जैसे लोहे-फौलाद से अन्तर्हित अग्नि की चिनगारियॉ प्रकट होने लग पडी हो! पुत्र के प्राण को संकट मे देख नर्जन की पत्नी के हृदय की आग अकस्मात् प्रचड वेग से भभक उठी! मारे क्रोध और वात्सल्य के एकाएक वह अधीर हो उठी। नर्जन पहले ही अपने पुत्र को भद्रबहादुर की मार से छुड़ाने के प्रयत्न मे जुट पड़ा था। लेकिन नर्जन की पत्नी ने क्रुद्ध सिंहनी की तरह गरजकर और लपककर खुकुरी-हस्त गोविन्द को इतने जोर का धक्का दे मारा कि वह खुकुरी लिये ही धड़ाम से जमीन पर गिर पडा। अपने पुत्र की प्रचड रक्षा-भावना ने

ही मानो उस अधेड स्त्री के शरीर मे भी अचानक अतुल शक्ति और साहस भर दिया। गोविन्द के हाथ से झट खुकुरी छीनकर क्रोध मे पागल हो जैसे चंडी बनकर भद्रबहादुर की पीठ पर खूब जोर-जोर का प्रहार करती हुई वह बोलने भी लगी—"छोड, छोड बदमाश मेरे छोरे को! कसाई! जिम्वाल के कुत्ते!"

खुकुरी की चोट खाकर भद्रबहादुर के शरीर से खून की धारा फूट चली। बलि देते समय जब भैसे-जैसे पशु को भी एक प्रहार मे खुकुरी काट सकती है, तो मनुष्य की क्या बिसात! भद्रबहादुर पशु की तरह कटकर अब एकाएक श्यामबहादुर के नीचे आ गया। लेकिन गोविन्द भी डरा नहीं! निष्क्रिय हुआ नही! झट घर में दौडकर भरी हुई बदूक और कारतूसो की पेटी लिये वह आँगन मे आ पहुँचा। लेकिन भद्रबहादुर की आकस्मिक बीभत्स हत्या के इस दृश्य को देख वह होश मे न रह सका। क्रोध मे पागल हो उसने एकाएक श्यामबहादुर की माँ को गोली दाग दी। और दूसरी गोली भद्रबहादुर के अधमरे शव पर बैठे श्यामबहादुर की गरदन मे भी। उसने बडी फुर्ती से फिर बदूक भरी, और तत्काल तीसरा निशाना नर्जन की छाती को छेदते हुए बाहर निकल पड़ा। शिकारी बाप का बेटा भी सधा हुआ शिकारी था। निकट के निशाने थे। अचूक साबित हुए। एक मिनट में ही सारा खेल खत्म हो गया। निशाने का कोई लक्ष्य अब शेष नही रहा। और गोली चलते ही मारे भय के दर्शक नर-नारी भी अपने शिशुओं को समेटते हुए भाग चले। भागने लगे। इस क्रूरतम पैशाचिक नाट्य का प्रथम पटाक्षेप इतनी जल्दी, इतनी भीषण रोमांचक बीभत्सता के साथ सम्पन्न होगा ऐसी कल्पना किसने की थी? किसे ऐसी उमीद थी? जिम्मावाल ने भी इस नाटक का सूत्रपात करते समय इस भीषण बीभत्स अत की कल्पना न की होगी! जैसे नाटक के सूत्रधार को मौजूदगी के बावजूद नाटक की घटनाएँ आजाद बन चलीं। विद्रोह कर उठी।

हेमा के हृदय पर जैसे वज्रपात हो गया। मनचाहे प्रेमी के साथ भागकर आने का उसका सारा उल्लास ही मिट गया। उसने कब सोचा था कि उसका भागना गरीब नर्जन के सारे परिवार के विनाश का कारण बनेगा ? लेकिन होनहार होकर रही। और यह घटित होनहार ही मानो पश्चात्ताप की उग्र-उग्र लपटें बनकर हेमा के हृदय को जलाने लगी। एक साथ अपने प्रति घृणा, लज्जा और करुणा से वह भर चली। अपने रूप-यौवन के प्रति वह वितृष्ण हो उठी। अपने भाग्य के प्रति क्रोध और करुणा से अधीर हो चली। हाय ! संसार मे दूसरो को दुख पहुँचाने के लिए ही क्या वह पैदा हुई ? किसी को भी तो सुखी न बना सकी वह ! प्रेमबहादुर को उसकी जवानी मे ही वह खा-पोछ गई ! विधवा बनकर पिता के घर आई। पिता की जाति भी तो जाते-जाते ही बची ? और अब गरीब नर्जन उसके कारण ही परिवार-सहित महाविनाश का ग्रास बन गया !

हेमा को अभी-अभी ही यह बुरी खबर मिली थी। गनीमत कि वह घर मे अभी अकेली थी। हरिशंकर की माँ ढोर-डंगरो को लेकर जंगल मे जा चुकी थी। और हरिशंकर भी गाँव के किसी दूर के मुहल्ले में चला गया था। किसी भी अभागे परिवार के ऐसे महाविनाश पर सहृदय हेमा का हृदय विचलित हो सकता था। उसकी आँखों मे अचानक आँसू उभर सकते थे। किन्तु इस महाविनाश का मूल निमित्त-कारण केवल अपने को मानकर अपराध की गुरुता की भावना से हृदय उसका बैठा जा रहा था। खबर सुनते ही वह जड़वत् हो चली थी। चेहरे से रूप-यौवन की छलकती लाली जाने एकाएक कहाँ विलीन हो चली। ओठों की लालिमा जैसे धुलकर अचानक स्याह बन चली। क्षणमात्र मे वह ऐसी बन चली जैसे वर्षों की बीमार हो बेचारी !

अतिशय लज्जा के कारण उस खबर देने वाली विश्वस्त महिला

के चेहरे को देखने का वह साहस तक न कर सकी। झट दालान से उठकर वह घर के भीतर एक अँधेरे कोने में जाकर दीवाल के सहारे ओडठकर बैठ गई। वह महिला उससे सांत्वना के कुछ वाक्य कहकर विदा हो चली। लेकिन हेमा का हृदय बड़ी तीव्रता से चाहने लगा—"इस घर की धरती तुरंत फट जाय! तुरत भूचाल आ जाय! ताकि धरती माता की गोद में वह सदा के लिए सो जाय! अपने कलक-पंकिल काले मुखड़े को वह किसी को भी न दिखा सके! अपने पति और अपनी सास तक को भी नहीं! अथवा उस दीवाल के सहारे बैठी-बैठी ही वह मृत्यु का आलिंगन कर ले! ऐसा कोई अचानक चमत्कार घटित हो चले कि पति और सास को अपना मुँह दिखाने से पहले ही उसके प्राण-पखेरू उड़कर उस शरीर से निकल चलें!"

लेकिन चाहने पर मौत नहीं आती। वह आती है बगैर-बुलाये मेहमान की तरह। किन्तु फिर भी प्रबल संकल्प के साथ इच्छा करने पर कहीं भी, किसी भी समय मृत्यु का आलिंगन किया जा सकता है। क्योंकि सृष्टि के हर अणु-परमाणु में जीवन और मृत्यु का खेल साथ-साथ चला करता है। जहाँ जीवन है वहाँ मृत्यु भी है। अणुमात्र अवकाश भी जीवन और मृत्यु से रिक्त नही। लेकिन फिर भी इन दोनों के अपने-अपने रूप हैं। इन दोनो रूपों मे बाल बराबर का भी अंतर न रहते हुए भी सांसारिक नेत्रों में वह अन्तर विशाल है! वे बिलकुल परस्पर-विरोधी रूप हैं! बीच की लघुतम परस्पर-सश्लिष्ट समरूप विभाजक रेखा जैसे सागर से भी चौड़ी और हिमालय से भी अधिक दुर्लंघ्य है! क्योंकि जीते-जी इस रेखा को पारकर कोई मृत्यु के साम्राज्य मे प्रविष्ट होना नहीं चाहता। बल्कि जीवन का सारा सघर्ष ही इस रेखा को पार करने से बचे रहने मे सीमित है। सार्थक माना जाता है।

लेकिन हेमा इस क्षण बड़ी आकांक्षा से इस लघुतम सीमा-रेखा को पारकर मृत्यु के साम्राज्य में प्रविष्ट होना चाह रही थी। किन्तु हिमवत् जड़ीभूत उसके मस्तिष्क में इस यात्रा का कोई साधन-संबल तत्काल

दिखाई न दे रहा था। कभी मानसिक जड़ता के कारण अपनी मुट्ठी मे बँधी चीज को भी हम इधर-उधर ढूँढ़ा करते हैं। अपने शरीर के वस्त्रो मे आग लगाकर अथवा गले मे रस्सी डालकर वह तत्काल मृत्यु का आलिगन कर सकती थी। किन्तु मृत्यु के ये सुलभ साधन उसके विजडित मस्तिष्क के नेत्रो मे उभर न सके।

मन की जड़ता धीरे-धीरे दूर होने लगी। लेकिन मन की धुकधुकी बढ़ने लगी। उसकी सास जब जंगल से घर वापस पहुँचेगी वह कैसे उसका सामना कर सकेगी? अपने मायके के विनाश की खबर सुनकर वह किस रूप मे अपराधिनी वधू से पेश आयेगी? और स्वय हरिशंकर किस रूप मे उससे पेश आयगा?

उसी क्षण अचानक हरिशंकर वहाँ आ पहुँचा। खबर उसे मिल चुकी थी। लेकिन घर पहुँचकर हेमा से आँखें मिलाने का साहस उसे न हुआ। और हेमा पति के आगमन की आहट पाकर भी, और तुरन्त बाद उसे सामने खडे पाकर भी कुछ बोल न सकी। हरिशंकर ने आखिर डरते-डरते भर्राये स्वर मे पूछा उससे—"मालूम हुआ कुछ?" और जवाब मे हेमा सिर्फ "हाँ!"—कहकर चुप हो गई।

हरिशंकर भी चोर की तरह उसी कमरे मे एक तरफ चुपचाप बैठ गया। यह सोचकर मारे शरम के वह गड़ा जा रहा था कि अपने मामा के सारे परिवार के विनाश का मूल कारण वही है। और उसकी माँ का तो और भी बुरा हाल हो चला था। जंगल मे ही उसे सारी खबर मिल चुकी थी। जैसे अचानक उस बेचारी के हृदय पर पहाड़ टूटकर आ गिरा हो! खूब रोई-धोई। और रो-धोकर सध्या से पहले ही घर वापस आकर पागल-सी बड़बड़ाने लगी। वह हेमा को सुना-सुनाकर छाती-कपार पीटती हरिशकर को मारे क्रोध के कोस रही थी—"अगर मै जानती कि तेरे कारन मेरे मायके का नास होगा तो जनमते ही तेरा गला न दबा देती? नोन चटाकर मार न डालती? कुलछना! कहाँ की कुलछनी को भगाकर घर लै आया! पैर पड़ते ही यह

अनरथ हो गया ! ऐसा सतियानास !···मै कहती थी, टडन की छोरी को ले आ ! घर बसा ले ! कैसी शीलवत छोरी है ! जरा रूप मे कम है ! मगर सतियानासिन तो नही ? कुलछनी तो नही ? 'लाहुर' (लाहौर) के ऊँचे खत्री वंश की छोरी है वो ! मगर मेरा कहा माने कौन ? दस मास पेट में रखा ! बचपन से पाला-पोसा ! मगर आमॉ की बात आज के छोरे क्यों माने ? अपने मन की करेंगे ! अब हुआ न ? मेरे मायके को उजाडकर अब तेरी छाती सीतल हुई न ?"—कहकर वह माथा-कपार पीट-पीटकर फूट-फूटकर रोने लगी।

टोले-महल्ले के लोग भी वहॉ एकत्र हो चुके थे। अपनी-अपनी परस्पर-विरोधी रायें जाहिर कर रहे थे। और घर के कोने मे बैठी हेमा अब तक चुपचाप तीखे व्यग के वे सारे जहरीले तीर बर्दाश्त किये जा रही थी। मगर बर्दाश्त की एक सीमा होती है। वह मनस्विनी महिला थी। बहू बनकर घर मे प्रवेश करते ही ऐसे स्वागत के लिए वह तैयार न थी। लेकिन फिर भी वह झगड़ने को, अथवा तीर का जवाब तीर से देने को तैयार न थी। क्योंकि स्वय उसके हृदय का कण-कण अपराध-भावना से भरा हुआ था।

उसने इशारे से हरिशकर को पास बुलाया। 'घलेक' में अश्रु-विच-लित आँखे पोछकर व्यथा-विह्वल स्वर मे वह बोली—"मेरे कारन कितना अनरथ हुआ जी ! कैसा सतियानास ! तुम मुझे भूल जाना जी ! मै सचमुच कुलछनी हूँ !"—कहते-कहते वह उच्छ्वसित हो सिसक पड़ी। और दूसरे ही क्षण घर से निकलकर काली के किनारे की ओर बड़े वेग से वह बढ़ चली।

हरिशंकर इस स्थिति के लिए तैयार न था। वह तो हक्काबक्का-भौचक्का रह गया ! लज्जा के कारण ही वह मॉ की बात का जवाब नहीं दे रहा था। जवाब कुछ सुझाई न दे रहा था। लेकिन 'तुम मुझे भूल जाना जी' कहते हुए अंतिम विदा लेकर उसके देखते-देखते ही जब हेमा उस घर से रवाना हो पड़ी तो वह स्थिर न रह सका। हेमा के स्वरों

की व्यथा की गहराई अब जैसे स्वयं उसके हृदय में फूटकर उछल पडी। वह स्वयं भी रो पड़ा। झट घर से निकलकर वह बाहर आया। आँखें दौड़ाईं। उसने हेमा को काली के किनारे की ओर बढ़ते देख लिया। संध्या का अँधेरा अभी घना हुआ न था।

उसकी माँ भी हेमा को उस प्रकार घर से निकलते देख एकाएक अवाक् हो पडी थी। घबड़ाये स्वर मे हरिशकर से वह बोल उठी—"अरे! कहाँ भाग चली वो? जरा देख तो!"

और हरिशकर ने अपने अश्रुभरे नेत्रों को अपनी माँ की आँखों में डालकर करुणाभरे उलहने के स्वर मे जवाब दिया—"सतियानासिन कुलछनी भला अब क्यों रहेगी तुम्हारे घर मे आमाँ? लो, अब सम्हालो अपने घर को! यह कुलछना सतियानासी भी अब इस घर में नहीं रहेगा!"—कहकर वह दौड़ते हुए हेमा के पीछे-पीछे भाग चला।

हेमा ने एक बार पीछे मुड़कर देखा। हरिशंकर को उस प्रकार अपने पीछे-पीछे भागकर आते देख उसकी चाल कुछ और तेज हो चली। अब तक वह जगल के किनारे आ चुकी थी। काली का किनारा कुछ कदम ही दूर रह गया था।

हरिशंकर लपककर उसके निकट अब जा पहुँचा। हेमा के एक हाथ को खूब जोर से पकड़कर वह बोला—"हेमा! ये क्या? कहाँ जा रही हो तुम?"

"मुझे छोड़ो जी!"—हेमा हाथ छुडाते हुए अश्रु-गद्गद स्वर मे बोली—"मेरे पीछे अपना सतियानास न करो! मैं जा रही हूँ वहाँ जहाँ से फिर लौटकर कोई नहीं आता! मै सचमुच कुलछनी हूँ! सतिया-नासिन हूँ! मुझे छोड़ो जी!"—कहते-कहते हेमा के स्वर पुनः अवरुद्ध हो उठे। आँखें पुनः आँसुओं से विचलित हो उठीं।

"नहीं नहीं!"—हरिशंकर ने कसकर उसका हाथ पकड़े हुए ही प्रतिवाद किया—"तुम कुलछनी नहीं! सतियानासिन नहीं! ओ हेमा!

ऐसा न सोचो तुम ! नही तो, मुझे भी अपने साथ ही ले चलो जहाँ से मै भी लौटकर न आ सकूँ ! मै भी तो कुलछना हूँ ? सतियानासी हूँ ?"

हेमा रुककर खड़ी हो गई। मानो हरिशंकर ने अपने दिल का सारा दर्द इन थोड़े से शब्दों मे उतारकर रख दिया। हेमा ने उस दर्द को पहचाना। उस दर्द मे छिपी हुई ममता और स्नेह की निष्कपट कोमलता को पहचाना। अनुपम प्यार के प्रकम्पन और आसक्ति के आवेग को परेखा।

उसने झट अपना दूसरा हाथ हरिशकर के मुँह पर रखकर उसे आगे कुछ बोलने से रोक दिया। अपनी आँसूभरो आँखे हरिशकर के आँसूभरे नेत्रो मे डालकर ममत्वमय फटकार के स्वर में वह बोली—"छी ! ऐसा नही बोलते ! कुलछना-सतियानासी होवे तुम्हारा शत्तुर ! तुम घर लौट जाओ जी ! मेरी सारी उमर लेकर संसार मे जिओ, जागो ! मगर मेरे पीछे अपना सतियानास न करो जी !"—कहते-कहते जरा जोर से वह रो भी पड़ी।

हेमा के वाक्य मानो ममता और करुणा के तीर बनकर हरिशकर के हृदय मे जा चुभे। मारे ममता और स्नेह के सवेग उत्कम्पन के उसका हृदय जैसे फट पडा। आँखें फिर आँसुओ से भर उठीं। व्यथा-विह्वल, पर दृढ़ स्वर मे हरिशकर ने जवाब दिया—"जो कुछ करना था मै कर चुका हेमा ! अब, तुम जहाँ जाओगी मै भी साथ जाऊँगा ! स्वरग मे जाओगी साथ जाऊँगा ! नरक मे जाओगी साथ जाऊँगा !"

हेमा कुछ बोल न सकी। इस अनुपम अनुराग की सबल बेड़ियों मे पैर उसके बँध गये। हृदय बँधकर डाँवाडोल हो गया। वह खडी हो गई। मरना अब अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ। स्वय मर जाने का स्पष्ट परिणाम अपने प्रियतम को भी मृत्यु के मुख में धकेलना था। भला हेमा अब किस दिल से महा-मृत्यु के पथ पर बढ़ चलने का साहस करे ? वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो चली। चुपचाप खड़ी हरिशकर की आँखो मे अश्रुभरे नेत्रों से वह देखने लगी।

हरिशंकर की माँ भी अपने भागते पुत्र के पीछे-पीछे भाग चली थी। और कुछ दूसरे लोग भी कौतूहल वश ही उसके पीछे-पीछे चल पड़े थे।

हरिशंकर की माँ भी उन दोनो के पास अब आ पहुँची। पहुँचते ही फटकारभरे स्वर मे वह बोली—"एक तमाशे से मन नहीं भरा तो अब दूसरा तमाशा भी खड़ा कर दिया तुम दोनो ने?"

हेमा और हरिशंकर चुप रहे।

"कहाँ जा रहे हो तुम लोग?"—माँ ने कड़े स्वर मे प्रश्न किया।

लेकिन फिर भी वे चुप रहे।

"जवाब क्यो नहीं देते?"—अब हरिशकर का हाथ पकड भकभोरते हुए पुनः कड़े स्वर में वह बोली—"क्या मुँह में आग लग गई तेरे?"

अब हरिशकर ने भी रूखे स्वर मे जवाब दिया—"तुम अपना घर छोडकर क्यों आई हमारे पीछे आमाँ? छोड़ो! हम दोनो अब जा रहे हैं वहाँ जहाँ से लौटकर कोई नही आता!"—कहते हुए उसने माँ की पकड़ से हाथ छुड़ाने की कोशिश की।

और हेमा झट उसके मुँह पर उसी प्रकार अपना एक हाथ रखकर अपनी सास से व्यथा व अनुरोध से भरे स्वर मे बोली—"इन्हे लौटा ले जाइए आमाँज्यू! पैरो पडती हूँ आपके! और, जो कुछ भूल-चूक हो गई इस अभागिन से उसे माफ कर दीजिए! इस अभागिन के लिए अब दुनिया मे कोई जगह नहीं आमाँज्यू! मै अब जा रही हूँ काली आमाँ की गोद मे!"—कहकर हरिशकर से अपना हाथ छुडाते हुए उसने फिर आगे बढ़ने की कोशिश की।

हरिशंकर की माँ का क्रोध अब कायम न रह सका। उसे सहसा ऐसा लगा जैसे माँ की गोद से उसकी प्यारी बेटी रूठकर मौत को गले लगाने भागी जा रही हो। 'इस अभागिन को माफ कर दीजिए आमाँज्यू' इन शब्दो मे जो दिल का गहरा दर्द छिपा था उसे वह महसूस किये बिना न रह सकी। आखिर वह माँ थी! और सो भी

एक परम सहृदया माँ ! यह व्यथित अभागिन लड़की, उसके कटु-कठोर शब्दों का जवाब तक न देकर, एक अपराधिन के रूप में जिस लहजे में क्षमा माँग रही है उससे अप्रभावित रह जाना उस सहृदय वृद्धा के लिए कम कठिन न था।

क्षणमात्र में क्रोध की आग जैसे मातृत्व के उमड़े सागर में विलीन हो विनष्ट हो चली। सारा क्रोध भूलकर झट आगे बढ़कर हेमा को भुजाओं में बाँधकर स्नेह-गद्‌गद स्वर में वह बोली—"नानी ! मेरी बिटिया ! मुझे माफ कर दे ! गुस्से मे आकर जो कुछ कहा उसे भूल जा ! जो होनहार थी हो गई ! चल, अपने घर लौट चल अब ! गुस्सा न कर ! काली की गोद मे जाय तेरी सौत ! तू मेरी गोद में चल ! अपनी कोख से कोई छोरी नही जनमी ! तू ही मेरी छोरी भी, और तू ही 'बहू-बुहारी' भी ! चल, अपने घर चल अब !"

अब तक कुछ लोग भी इकट्ठे हो चले थे। माँ ने उसके कान मे फुसफुसाकर कहा—"देख 'बुहारी' ! लोग आ गये ! तमाशा मत बना ! चुपचाप लौट चल अपने घर ! अपने घर की मरजाद का तो ख्याल कर !"

हेमा का सकल्प सहसा मंद हो पड़ा। हृदय विगलित हो चला। उसे लगा कि ससार बिलकुल शून्य नही है ! बिलकुल क्रूर और हृदयहीन नहीं है ! उस अभागिन के लिए भी संसार में जगह है ! एक स्नेहमयी सास और माँ की शीतल छाया भी है ! वह चुपचाप अपनी सास के पीछे-पीछे घर को लौट चली। जैसे मृत्यु की समाधि पर पुनः जीवन की पौद लहलहा उठी !

(११)

स्वर्गीय शिवशकर पंत अपने गाँव के मुखिया थे। उनकी मृत्यु के बाद यह उत्तराधिकार उनके ज्येष्ठ पुत्र जयशकर पंत को मिला। जयशंकर अपने योग्य पिता का योग्य उत्तराधिकारी था। मुखियागीरी

की गाडी चलाने में भी, और धनोपार्जन करने के अचूक तौर-तरीकों मे भी। वे तौर-तरीके कानून और नैतिकता की नजरो मे नाजायज होते हुए भी नाजायज न थे। क्योकि वह मुखिया था! गॉव मे सरकारी कानून के सम्मान और मर्यादा का रक्षक! और चूॅकि समाज के सिर पर वह बैठा था अतः समाज की नैतिकता की बागडोर भी उसके और उस-जैसे लोगों के हाथ मे थी। नैतिकता स्वयं उनका वाहन थी। घोडे की रास खींचकर चाहे जिस तरफ उसे मोड़ दिया जाय! और गॉवों मे सरकारी कानून के सारे ठेकेदार उसके अपने थे। उसके हाथ मे थे।

जयशंकर का गॉव यद्यपि महेन्द्र हमाल के जिम्मा मे न था, लेकिन दोनो मे मित्रता कम न थी। क्योकि दोनों के जीवन का पैमाना एक था, उद्देश्य समान था, और जीवन की सुविधाएँ सग्रह करने के तौर-तरीके भी समान। किन्तु परस्पर सवर्गीय ईर्ष्या-जलन का अभाव भी न था। महेन्द्र हमाल जयशकर से धन में बड़ा था, रोब-दाब और इज्जत-आबरू मे भी। वह सब कुछ करते हुए भी अब तक बेदाग बचता आया था। अर्थात् कानून और नैतिकता के सिर पर लात मारते हुए भी कानून और नैतिकता की कडियो मे उसकी लात अब तक फॅसी न थी। बॅध सकी न थी। और दूसरो की इज्जत-आबरू से खुलकर शिकार खेलते हुए भी उसने अपनी निज की इज्जत-आबरू को किसी और का खुला शिकार होने दिया न था। लेकिन जयशंकर को इस बात की कम खुशी न थी कि जिम्मावाल की इज्जत भी किसी और का खुला शिकार बन ही गई। और यह सफल शिकारी स्वय उसका अपना भाई हरिशकर था। हरिशंकर के साहस और बहादुरी पर वह मन-ही-मन इसलिए भी खुश था कि एक नई और परम लाभदायक स्थिति एकाएक उसके सामने आ गई। जयशकर के उर्वर मानस-मंच पर वह स्थिति अपना अग-प्रत्यंग खोलकर थिरकने लगी थी। उसके अग-अग में सोने-चॉदी की चमक उसे दिखाई देने लगी थी। यह स्थिति-नर्तकी जिस दिशा में भी अपने अंगों को नचा देती, सोने-चॉदी

की लड़ियाँ जैसे अपने-आप उसे झरती दिखाई दे जातीं।

जिम्मावाल के घर से हेमा के भागकर आने की मूल स्थिति स्वय उसके भाई के घर मे मौजूद थी। स्वय उसके भाई ने पैदा की थी। और इसी मूल स्थिति के पेट से एक दूसरी बडी स्थिति स्वय उसके मित्र जिम्मावाल ने चार-चार खून कराके पैदा कर दी थी। जयशंकर को सब कुछ मालूम हो चुका था। उसके भाई ने पहली स्थिति पैदा की, उसके मित्र ने दूसरी। फिर जयशकर इतना हीजड़ा न था कि वह इन स्थितियो की आल-औलाद बगैर बढ़ाये ही रह जाय। उनसे लाभ उठाये बिना ही बैठा रह जाय। उदासीनता उसके पौरुष और बुद्धि दोनो के लिए ही कम अपमानजनक चुनौती न थी। मानो उसका पौरुष उसके अब तक घर मे चुपचाप बैठ रह जाने को ललकारने लगा, और बुद्धि धिक्कारने लगी। और इस ललकार-धिक्कार से मानो लज्जित और बेचैन होकर ही वह झट अपनी जुमली घोड़ी पर सवार हो अपने मित्र जिम्मावाल की मनोदशा की जिज्ञासा से उसके गॉव की ओर चल पडा।

जयशंकर की जुमली घोडी पहाड़ की ऊँची-नीची चक्करदार पगडंडी पर आसानी से ढुलकती जा रही थी। शताब्दियों-पहले पश्चिमी नेपाल के मल्ल-राजाओं की समृद्ध राजधानी होने का गौरव 'जुमला' को प्राप्त था। उन दिनो केवल काठमांडू की उपत्यका तक सीमित 'नेपाल' उस क्षेत्र तक न अपने नाम को फैला सका था, न अपने राजनीतिक अधिकार को। जुमला का राजनीतिक गौरव बाद में विनष्ट हो चला, किन्तु जुमला के घोड़ों और घोडियों का गौरव आज तक मिट नहीं सका! जयशकर को अपनी तेज-तर्रार, चितकबरी-सी शक्ल की इस सुन्दर घोड़ी पर कम गर्व न था। मालिक के मुँह की जरा-सी टिटकारी पर वह कठिन-से-कठिन मार्ग पर हवा से बातें करने लग जाती।

जयशकर के गॉव से महेन्द्र हमाल के गॉव की दूरी दस-ग्यारह मील से कम न थी। किन्तु पहाड़ी लोगों के सनातनी पैमाने के अनुसार

वह दूरी केवल ढाई कोस थी। कहते हैं कि पुराने युग मे वहाँ रास्ते की दूरी नापने का तरीका बड़ा सरल था। प्रस्थान करते समय पेड की हरी टहनी तोड़कर हाथ में वे थाम लेते। उनके चलते-चलते हाथ की उस टहनी के पत्ते जिस स्थान पर मुरझाने लग जाते वहाँ तक की दूरी मानी जाती एक 'कोस'! पुनः नई टहनी तोडकर आगे चलते, और मुरझाने तक की दूरी पुनः एक कोस! इस प्रकार गन्तव्य स्थल तक जितनी टहनियाँ मुरझाया करती वहाँ तक उतने ही कोस मान लिये जाते। सनातनी 'ओवरसियरों' द्वारा नापकर निश्चित की गई वही दूरी हजारो वर्षों से पीढ़ी-दर-पीढी मान्य बनती गई, सनातन धर्म की तरह! नेपाल के धर्म-प्रधान सामन्ती शासन में नये सिरे से नये पैमाने से सत्य-सनातन धर्म को नापने के प्रयास की तरह शायद रास्ते को नापने का नया प्रयास भी निषिद्ध माना गया हो तो आश्चर्य नहीं। अतः जयशंकर के गाँव से महेन्द्र हमाल के गाँव की दूरी इस वैज्ञानिक युग मे भी ढाई कोस से अधिक न बढ़ सकी।

हाँ, तो घोड़ी पगडडी पर दुलकी चाल से दौडी जा रही थी। और घोड़ी की ही तरह जयशंकर का मस्तिष्क भी गतिशील हो चला था। एक तगड़े प्रतिद्वन्द्वी से निबटने के नये नये दाव-पेंचों के आविष्कार और उपयोगिता पर उस मार्ग में भी वह अनुसन्धान करता जा रहा था। और उसकी घोड़ी भी जैसे अपने-आप मार्ग का अनुसन्धान करती आगे बढ़ी जा रही थी। बीच में एक बहुत बड़ा 'डाँड़ा'[1] था। उस डाँड़े पर पगडंडी उत्तरोत्तर ऊँची और ऊँची उठती जा रही थी। घोडी की पीठ पर बैठे जयशंकर को ऊँचाई पार करने का दम-घोंटू परिश्रम रंचमात्र भी महसूस न हो रहा था। पगडंडी के अगल-बगल शाल के छोटे-छोटे जंगल थे, और दूसरे पेड़-पौधों की अनेक झाड़ियाँ भी। इन जंगलो और झाड़ियों में आस-पास के गाँव के ढोर-डंगर चर

१. पहाड का फैला हुआ ऊँचा भुज-बन्ध जो दो घाटियों को परस्पर अलग करता है।

रहे थे। चरवाहों और चरवाहिनों के क्रीड़ा-कौतुक और संगीत के सरस स्वर भी यत्र-तत्र सुनाई दे जाते। लेकिन उद्देश्य से बँधे हुए जयशंकर का मन उस ओर से अभी बिलकुल उदासीन था। वह बढ़ा जा रहा था। बढा जा रहा था।

घोड़ी डॉड़े की चोटी पर जा पहुँची। चोटी से दोनों ओर की घाटियाँ साफ दिखाई दे रही थीं। ढालो पर बसे हुए गॉव और उसके पौडी-नुमा खेत दूर से बड़े सुन्दर दिखाई दे रहे थे। जिम्मावाल का गॉव भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था और उसका विशाल दोमजिला खपरैल मकान भी। गॉव के घर-घरौदों के बीच शान से यों ऊँचा खडा जैसे कोई बडी मुर्गी अपने छोटे-छोटे छौनों के बीच खड़ी हो! और गॉव से बाहर काली माई का छोटा मदिर भी दिखाई दे रहा था, जिसकी बनावट 'पैगोडा-शैली' की थी।

डॉडे की चोटी पर घोड़ी से उतरकर जयशंकर ने चबूतरे की छाया मे विश्राम किया। आरभिक वैशाख की धूप भी कम कडी न थी। पास मे पानी का बहता सोता देखकर महेन्द्र हमाल के पिता ने पुण्य-लोभ से कभी यह चबूतरा बनवाया था और चबूतरे पर बड-पीपल के पेड़ लगवाये थे। और इन दोनों पेडों के विवाह-यज्ञ मे अठारह पुराणों का पाठ कराने के अतिरिक्त भोज-भात में भी खूब उदारता दिखाई थी। जयशंकर ने सोते के पानी से अपनी प्यास बुझाई और अपनी घोड़ी की भी। यह सोचकर वह खूब खुश था कि उसके भाई हरिशकर ने हेमा को भगाकर इसी डॉडे को पार किया होगा, और अब वह स्वयं उस डॉडे को पार कर रहा है उसी भागने-भगाने से पैदा हुई स्थितियों से लाभ उठाने के उद्देश्य से! जहॉ एक नादान छोटे भाई ने सफलता प्राप्त की, क्या उसी का परम चतुर बडा भाई असफल रह सकेगा? कभी नहीं! उसने बड़े इतमीनान से अब आगे की यात्रा की। अब मार्ग भी आसान था।

× × ×

जिम्मावाल की बेहोशी की दशा में ही उसके आँगन में वह सारा हत्याकांड हुआ था। लेकिन जब उसका होश पलटा और आँखे खुली तो उसका होश फिर गुम हो गया। किन्तु बेहोशी की मूर्छा न आ सकी। वह घबड़ा जरूर गया, लेकिन घबड़ाहट की अकर्मण्यता उसमें न आ सकी। वह मँजा हुआ आदमी था, और ऐसे अवसर पर झट अमल मे लाने की व्यावहारिक बुद्धि अब भी उसके साथ थी। आँगन में ढेर हुए उन चारों शवो पर मृत्यु की खेलती हुई बीभत्स मुसकान को भयभरे नेत्रो से कुछ क्षण वह देखता रहा। उसके मौन भीषण अट्टहास को वह मन के कानो से सुनता रहा। कैसी भयानक चुनौती थी उस अट्टहास में! जरा भी विलंब उसका सर्वनाश कर दे सकता है, यह समझते उसे तनिक भी देर न लगी। अतः तनिक भी विलम्ब किये बिना अपनी मँजी हुई बुद्धि के सहारे झट उन शवो को उठवाकर उसने खुद नर्जन के आँगन मे धरवा दिया। गोली का शिकार बनी उन लाशों की गरदने खुकुरी से कटवा भी डाली। और झट सरकारी अड्डे मे सूचना भिजवाकर सिपाही, 'राइटर' और 'विचारी' को मौके पर बुलवा भी लिया।

सरकारी कर्मचारी ऐसे अवसर पर अकर्मण्य कभी नही रह पाते। बल्कि ऐसे अवसर की सूचना उनमे उतनी ही खुशी पैदा करती है जितनी कि किसी 'महाब्राह्मण' को अपने किसी सम्पन्न यजमान की मृत्यु-सूचना। दूसरों पर रोब और आतंक जमाकर 'अह' को परितृप्त करने की आकांक्षा के बीज हर मनुष्य मे छिपे रहते हैं, किन्तु सरकारी कर्मचारियों में वे छिपे न रहकर प्रचड रूप में उभरने के हर अवसर की तलाश और इन्तजार में रहा करते हैं। और तिसपर आर्थिक लाभ उठाने का प्रचड लोभ भी। अड्डे के सिपाही, नौसिन्दा, बही-दार, राइटर, विचारी और डिट्ठा आदि सभी कर्मचारी जिम्मावाल के जाने-पहचाने थे। अपने थे। अतः सही स्थिति को समझकर भी जिम्मा-वाल के बजाय उनके क्रोध, रोब और आतक का शिकार नर्जन के छोटे

भाई गुप्तबहादुर को बनना पडा। क्योंकि जिम्मावाल ने स्वयं उस दुर्घटना के बारे में अपनी गवाही मे जो कुछ बताया उसका साराश नीचे-लिखे अनुसार है—

"वस्तुतः एक घरेलू मामले को लेकर ही यह सारी दुर्घटना घटित हुई। नर्जन का बेटा श्यामबहादुर बदचलन था। सबने जॉड-रक्सी उस वक्त पी ली थी। और उसी के नशे मे नर्जन ने अपने बेटे को उसकी बदचलनी के लिए धिक्कारा था। श्यामबहादुर स्वभाव से उद्दड था। जॉड-रक्सी के नशे मे वह और भी उद्दंड हो चला। और अपने बाप की गालियों को बर्दाश्त न करते हुए झट घर से खुकुरी निकालकर उसपर टूट पडा। उसकी माँ बीच-बिचाव करने गई। लेकिन शरीर से खूब तगडे और नशे मे उद्दड बने हुए श्यामबहादुर ने उन दोनों की ही हत्या कर दी। सयोगवश जिम्मावाल का कारिंदा भद्रबहादुर भी उसी समय उस राह से गुजर रहा था। अपनी माता की हत्या मे उद्यत श्यामबहादुर के हाथ से उसने खुकुरी छीनने का कोशिश की। लेकिन खाली-हाथ होने के कारण वह बेचारा भी खुकुरी का शिकार बन गया। नर्जन का छोटा भाई गुप्तबहादुर भी रक्सी के नशे मे था। अपने बड़े भाई की हत्या वह बर्दाश्त न कर सका। मानो बडे भाई के खून का बदला लेने के ख्याल से वह अपने घर से खुकुरी निकालकर श्याम-बहादुर पर टूट पड़ा। शरीर से तगडा होने के कारण वह उस उद्दड श्यामबहादुर की हत्या करने मे कामयाब हो गया।"

जिम्मावाल ने सरकारी कर्मचारियों के दीन-ईमान पर चॉदी का गाढ़ा पर्दा डाल दिया था। और एक बकरी के खूब तगड़े बच्चे को कटवाकर उसके ताजे स्वादिष्ट मास से उनकी जीभ भी बन्द कर दी थी। 'विचारी' ने घूस-रिश्वत की बेड़ी में बॅधे अपने विचारो के सहारे 'बॉस' कागज के खुरदरे ताव को फैलाकर सरकडे की कलम और दावात की काली स्याही से उक्त आशय की रिपोर्ट लिखी। और फिर गभीरता और धार्मिकता का नाट्य करते हुए किसी पुराण अथवा स्तोत्र

के पाठ करने के लहजे में उस पूरी रिपोर्ट की पक्तियाँ पढकर जिम्मावाल को सुना दीं, अभियुक्त गुप्तबहादुर को भी।

जिम्मावाल ऊपर से गभीरता का नाट्य किये हुए भीतर से मुसकरा उठा। और अभागे गुप्तबहादुर की करुण क्रंदन-ध्वनि से जैसे एकाएक आकाश रो पड़ा। आकाश मुखरित हो उठा। अब संदेह के लिए गुंजायश न रह गई। और अभागे गुप्तबहादुर के लिए खून के अभि-योग से बरी होने का कोई रास्ता न रह गया!

जिम्मावाल इस प्रकार इस आई हुई मुसीबत को बहुत जल्द खूब कौशल और आसानी से टालकर एक प्रकार से निश्चिन्त हो चुका था। अतः अब वह अपने एकांत कमरे मे पलंग पर लेटे, हुक्का गुड़गुडाते हुए अपने घृणित प्रतिद्वन्द्वी हेमा और हरिशंकर से निबटने के उपाय सोच रहा था। रह-रहकर दॉत किटकिटा रहा था। आह, यदि हेमा और हेमा का वह यार इस क्षण उसके सामने होते! उन्हे भी वह नर्जन का स्वर्गीय साथी बनाये बिना न छोड़ता! वह सारी दुनिया को दिखा देता कि महेन्द्र हमाल की इज्जत से धृष्टतापूर्ण खिलवाड़ का परिणाम क्या होता है! लेकिन शिकार उसके हाथ से निकल चुका था। उसे पुनः हस्तगत करने के विचार से वह मन-ही-मन उपायो का जाल बुन ही रहा था कि धर्मराज बाजे ने आकर बड़े आदर से सूचना दी—"करनास ग व का मुख्या जयशंकर बाजे आया है प्रभु!"

"अच्छाऽऽ!"—एकाएक आश्चर्य से ऑखें फैलाकर जिम्मावाल ने जिज्ञासा की—"मुख्या जयशंकर बाजे? वह शैतान क्यों आ धमका आज इस कुवेले में?…अच्छा बाहुन! उसे यहीं बुला ले आओ! सीधे इसी कमरे में!"

जयशंकर बाजे ने कमरे में प्रवेश किया। अतिशय विनय से खूब धरती में झुककर उसने 'स्वस्ति' कहकर अंजुली भरकर आशीर्वाद निवेदन किया।

और जवाब में जिम्मावाल ने मुसकाते हुए स्वागत किया—"मुख्या बाजे ! 'कस्तो ? कतावाट ?'[1] "

नीचे चटाई पर बैठते हुए मुखिया ने मुसकाकर जवाब दिया—"प्रभु की दया से सब ठीक-ठाक है ! हजूर के दर्शन को आ गया !"

अब मुखिया के लिए भी झट चिलम भरकर आ गई। इशारा पाकर धर्मराज बाजे ने भी कमरा खाली कर दिया।

"उमर आपकी लंबी है मुख्या बाजे !"—पलंग पर अब एकाएक सीधे हो जिम्मावाल ने मुसकाते हुए शिष्टाचारिक लहजे में कहना आरंभ किया—"सच कहता हूँ, आपको ही अभी याद कर रहा था ! इस कलियुग मे भी भक्त की भावना में बल अवश्य है ! याद करते ही भक्त-वत्सल भगवान अचानक आप-रूप से प्रकट हो पड़े !"—कहकर तनिक जोर से वह हँसा भी।

और जयशंकर ने भी तनिक मुसकाकर विनयभरे स्वर में जवाब दिया—"मै तो हजूर का सेवक हूँ ! भगवान विष्णु के याद करते ही कही भी हो, गरुड़ पहुँच जाता ही है ! अपने प्रभु की सेवा मे वह हाजिर हो जाता ही है !"

"अरे, ऐसा न कहो मुख्याज्यू !"—जिम्मावाल भी विनय का नाट्य करते हुए बोला—"कहाँ भगवान विष्णु ! और कहाँ यह नर-तन-धारी तुच्छ सेवक !"

"नहीं प्रभु !"—मुखिया ने चापलूसी-भरे स्वर में उसका संकोच दूर करते हुए कहा—"आप तो हमारे लिए राजा हैं ! राजा-जिम्वाल एक ही तो होता है ! और गीता मे कहा ही है—'नराणां च नराधिपः ।' राजा साक्षात् विष्णु का अंश होता है ! हाँ, मेरे-जैसे पामरों की बात अवश्य अलग है ! यद्यपि महाबली गरुड़ की उपमा का अधिकारी मै

---

१. 'क्या हाल है ? कैसे, कहाँ से पधारे ?'—नेपाली पहाड़ी समाज मे कुशल-क्षेम पूछने का प्रचलित मुहावरा।

नहीं हूँ, मगर फिर भी धृष्टता कर ही रहा हूँ प्रभु, कि आप भगवान विष्णु, और मै आपका वाहन गरुड !"

जिम्मावाल मन-ही-मन खुश हो उठा। चापलूसी का जादू कहीं भी अकारथ नहीं जाता।

"मुझे भगवान न कहो, अपना साथी कहो मुख्याज्यू !"—जिम्मावाल ने विनय का नाट्य करते हुए आगे कहा—"आप लोगों के सहारे ही तो जिम्वाली की गाड़ी चल रही है ! इज्जत-आबरू भी बची हुई है ! मगर आपसे एक बात आज बड़े अफसोस के साथ कहनी पड रही है कि आप लोगो के रहते भी एक अदना ने महेन्द्र हमाल की इज्जत पर लात मार ही दी ! और आपसे अब भी कुछ करते न बना !"

"क्या प्रभु ? कैसी बात ? क्या हो गया ?"—मुखिया ने अज्ञान का नाट्य करते हुए घबड़ाहटभरे स्वर में प्रश्न किया।

और जिम्मावाल ने ओठो पर एक सूखी मुसकान लाकर जरा रूखे लहजे मे जवाब दिया—"हुँह ! जैसे तुम्हे कुछ मालूम ही नहीं बाजे ! बनो मत ! अनजानपन का नाटक न करो ! क्या तुम्हे मालूम नही कि तुम्हारे उस खत्री छोकरे भाई ने कैसा अनर्थ कर डाला ? उसने सरे-आम हमाल की इज्जत को भगाकर अपने घर मे घुसा लिया ! और फिर भी कह रहे हो कि क्या हो गया ? कैसी बात प्रभु ?"—कहते-कहते उसके ओठ इस बार क्रोध से फड़क उठे।

"मै अगर चुपचाप बैठा होता तब न हजूर ?"—मुखिया मन-ही-मन मुसकाकर ऊपर से तत्परता का भाव जताते हुए बोला—"आखिर अभी इस कुवेले मे दौड़ा हुआ हजूर की सेवा मे हाजिर क्यो हुआ ? मै सब कुछ जानकर ही तो प्रभु के चरणो मे अभी पेश हुआ हूँ हजूर ?"

जयशंकर के जवाब से जिम्मावाल का क्रोध झट शांत हो गया। जैसे धधकी हुई आग पर झट घड़ा भर पानी डाल दिया गया। लेकिन आगे सब कुछ जानने का कौतूहल उसका बढ़ चला। उससे सलाह की

मॉग करते हुए आदरभरे स्वर में वह बोला—"जब सब कुछ जानते ही हो मुख्याज्यू, तो बताओ अब किया क्या जाय ?"

जिस प्रकार कोई सुनार अपनी सगी बहन के बनते जेवर मे से भी सोने-चॉदी का कुछ अश चुरा लेने से बाज नहीं आता, उसी प्रकार लाभ उठाने के मामले मे जयशंकर अपने सगे-सहोदर को भी बाद नहीं दिया करता। इस मामले मे वह पूरा ब्रह्मवादी था। समदर्शी! और हरिशंकर तो हीन जाति का उसका सौतेला भाई भर था! और हेमा विधवा थी। नेपाली कानून के अनुसार यदि विधवा ब्याहता अन्य पुरुष के साथ भाग भी जाय तो भगानेवाले पुरुष पर 'पचखत' का मुद्दा लागू नही होता। यदि भागने वाली भगाने वाले से ऊँची जाति की हो तो भगाने वाले को सिर्फ साल भर कैद की सजा होती है, और भागने वाली अपनी पूर्व जाति से च्युत भर कर दी जाती है। लेकिन हेमा हरिशंकर से ऊँची जाति की न थी। अतः वह 'पचखत' के मुद्दे से मुक्त था, और साल भर की कैद की सरकारी सजा से भी। पर जयशकर की समदर्शी बुद्धि को मानो यह भी एक चुनौती थी कि हरिशकर बिलकुल बेदाग बचा रह जाय। पूर्व पति के घर से जेवर-जेवरात और रुपये-पैसे चुराकर भाग निकलने का अभियोग लगाकर हेमा और हरिशंकर पर 'चोरी का मुद्दा' तो लगाया ही जा सकता है! उस भोले हरिशंकर को आसानी से बलि का बकरा तो बनाया ही जा सकता है! और उस बकरे के मास को जिम्मावाल के साथ मिलकर बँटवारा तो किया ही जा सकता है! इस योजना को वह घर से ही सोचकर आया था। और अब स्वयं जिम्मावाल द्वारा सहयोग-परामर्श की याचना से वह खूब खुश हो उठा।

जिम्मावाल के प्रश्न पर मुखिया ने क्षण भर अपना सिर खुजलाने का अभिनय किया। फिर तनिक गभीर स्वर में वह बोला—"यह मैं खूब समझता हूँ प्रभु, कि उस छोकरे ने कोई मामूली कसूर नहीं किया! और इस कसूर के लिए उस बदमाश की मैने कम दुर्दशा भी नही की! और साथ ही मैने यह भी समझा दिया कि सिंह की मॉद में घुसने का

परिणाम क्या होता है ! मेरी इस धमकी से उसके तो रग-रग में डर पैठ गया है प्रभु ! और मान लिया जाय कि वह छोकरी हजूर को अब न भी मिले, मगर कोशिश करने पर हरजाना तो जरूर मिल सकता है प्रभु को ? उनपर चोरी का मुद्दा तो जरूर लागू किया जा सकता है ? क्यो ? क्या विचार है हजूर का ?"

"वह हरामजादी तो यहाँ से कई हजार के जेवर लेकर भागी है बाजे !"

"इसीलिए तो कहा प्रभु, कि चोरी का मुद्दा जरूर लागू हो सकता है !"

"तो अड्डे मे गवाही आपको देनी पड़ेगी बाजे !"

"मैं खुद न भी दूँ, मगर गवाहों की कमी न रहने दूँगा हजूर को !"

"तो बकशीश मुँह-माँगी पाओगे ! जाति से ब्राह्मण हो ! हमारे पूज्य हो ! फूल-पत्ती से पूजा मे त्रुटि न रखूँगा ! विश्वास रखो !"

"सो तो है ही ! सो तो है ही हजूर !"—मुखिया उसके वचन मे विश्वास प्रकट करके क्षण भर चुप रहकर चुपके-चुपके फिर बोला—"मगर अभी एक दूसरी बड़ी बात भी कहने आया हूँ प्रभु ! ऐसा न हो कि आप बेखबर रहे, और आपका दुश्मन आपको एकाएक चंगुल मे फँसाकर आपका नाश कर दे !" फिर एकाएक मानो गहरी चिंता मे चेहरा नचाते हुए—"आप निश्चिन्त न बैठें हजूर ! आपको एक बहुत बड़ी मुसीबत मे फाँसकर आपका सर्वनाश कर देने का षड्यंत्र शुरू हो चला है प्रभु !"

जिम्मावाल के चेहरे पर एकाएक भय का पसीना आ गया। लेकिन उसकी बात अभी वह ठीक से समझ न सका। अपने को सम्हालते हुए उसने सदिग्ध स्वर मे प्रश्न किया—"खून के मुद्दे की बात तो नहीं कह रहे, बाजे ?"

"हाँ हजूर !"

जिम्मावाल जरा बेफिक्री की साँस लेकर इतमीनान के स्वर में बोला—"मगर वह मुद्दा तो अब एक तरह से रफा भी हो चुका है! उस मुद्दे को तो मै काट भी चुका हूँ बाजे !"

"कैसे प्रभु ?"

"चाँदी की तलवार की धार से !"—जिम्मावाल ने परम सतोष के साथ मुसकाते हुए जवाब दिया—"क्या नहीं जानते कि चाँदी-सोने की तलवार फौलाद की तलवार से भी तेज होती है ?"

"जानता हूँ प्रभु ! खूब जानता हूँ ! मगर, वह तलवार अगर दुश्मन के पास भी हो, तब ?"

जिम्मावाल की समझ फिर जरा कुद पड़ गई। इतमीनान और संतोष भी मंद पड़ गया। लेकिन साथ ही उस षड्यन्त्र के संबंध में जानने का कौतूहल भी बढ चला। उत्सुकताभरे स्वर मे वह बोला—"तो इस तरह पैतरेबाजी से बोलने के बजाय सीधे क्यो नहीं बता देते कि बात क्या है ? दुश्मन का कौन-सा षड्यंत्र मुझपर चालू है ? और वह दुश्मन है कौन जिसके पास भी चाँदी-सोने की तलवार मौजूद है ? मेरी तलवार से भी तगड़ी ?"

"तो अब साफ-साफ ही बता दूँ प्रभु !"—कहकर वह फिर सिर खुजलाते हुए बोला—"आपका दुश्मन कहीं दूर नहीं है ! मगर अफसोस कि आप उसे अब भी जान नही पाये ! पहचान नहीं पाये !"

"तो साफ करके बताओ न !"—बीच मे ही तनिक खीझकर आकुलताभरे स्वर मे वह बोला।

"वही तो बता रहा हूँ प्रभु !" इतना कहकर एक बार अगल-बगल झाँककर उसने धीरे से फिर कहा—"आपके दुश्मन हैं आपके पडोसी राजा हरिबहादुर शाह ! क्या आप नहीं जानते कि वे आपसे वर्षों से चिढे हुए हैं ? वर्षों का बैर मन मे पाले हुए हैं ? मगर बदला लेने का कोई मौका उन्हें मिल नही रहा था ! इसीसे वे अब तक चुपचाप थे ! मगर अब मौका उनके हाथ आ चुका है ! समझ रखिए

कि चार-चार खून का मुद्दा अगर आप चाँदी की तलवार से काट सकते हैं तो वे भी चाँदी की ही तलवार से इस तलवार को बेकार भी कर सकते हैं! और फिर उस मुद्दे में फँसाकर आपका सर्वनाश भी करा सकते हैं! आखिर लक्ष्मी की कृपा के बगैर ही तो वह राजा नहीं बने ?"

इस बार तनिक घबड़ाये स्वर मे जिम्मावाल ने प्रश्न किया—"तो क्या राजा तक इस खून की खबर पहुँच चुकी है बाजे ?"

"एक राजा ही क्या सारे इलाके मे तहलका मचा हुआ है इस भयानक खून को लेकर! खुद नर्जन का भतीजा वहाँ भागकर खबर पहुँचा चुका है! और राजा इस मुद्दे को खुद चलाने और सारा खर्च खुद उठाने का उसे वचन भी दे चुके हैं!"

जिम्मावाल के चेहरे पर पुनः पसीना भर आया। लेकिन फिर जल्द सम्हलकर अहंकार का नाट्य करते हुए वह बोला—"तो फिर देख लूँगा! बराबरी की तलवार चमकेगी! एक शोभा तो होगी! किसी की जीत होगी और किसी की हार! हमाल भी तो माँ लक्ष्मी की कृपा के बिना ही 'जिम्वाल' नहो बना हुआ है बाजे ?"

जयशकर बाजे मन में उठी मुसकान को दबाकर गंभीर स्वर में फिर बोला—"मगर बात इतने ही तक तो नही रही जिम्वालज्यू? इस खून के मुद्दे से भी एक बड़ा भयानक मुद्दा आपपर लगाने का षड्यंत्र भी चल रहा है!"

"क्या? कौन-सा मुद्दा ?"—भय और आश्चर्य से आँखें फैलाकर जिम्मावाल ने प्रश्न किया।

और जयशंकर ने आहिस्ते से जवाब देते हुए कहना आरभ किया —"मगर मेरी इतनी बिन्ती है हजूर, कि मेरा नाम आप किसी से भी न बतायें! मै षड्यंत्र का भंडाफोड़ किये देता हूँ अभी! राजा अभी हफ्ता भर पहले ही महीनों बाद 'नेपाल' (काठमांडू) से लौटकर आया है! आपने उस सारकी दिलबहादुर को अपने गाँव से उजाड़ तो दिया,

भगा तो दिया, मगर इस बात पर जरा भी विचार नहीं किया कि उसे कहीं शरण भी मिल सकती है, और उसका भागकर दूसरी जगह जा बसना आपके लिए घोर मुसीबत का कारण भी बन सकता है ! आपको क्या मालूम नहीं कि अब वह राजा के ही गाँव मे बस गया है ? राजा की सलाह और हुक्म से दिलबहादुर की औरत आपपर 'पानी का मुद्दा' दायर करने जा रही है! और आपकी जायदाद मे अपने बेटे के हक का मुद्दा भी ! उसका कहना है कि उसका छोरा खुद जिम्वाल महेन्द्र हमाल से पैदा हुआ है ! और इसमें सबूत खुद वह छोरा है ! उस छोरे का चेहरा है ! जिम्वालज्यू, गफलत मे न रहें आप ! मै झूठ नहीं बोलता ! उस छोरे की शकल-सूरत बिलकुल आपपर ही उतरी है ! मैंने खुद उसे देखा है ! फिर तो समझ लीजिए कि आप की जाति भी जायगी, और सारकी का वह छोरा कानूनन आपके धन मे हकदार भी बनेगा ! समझे जिम्वालज्यू !"

यह सुनते ही जिम्मावाल का होश-हवास गुम हो गया। मारे भय के उसका चेहरा फक पड़ गया। सारा बदन पसीने से तर-ब-तर हो गया। सारे शरीर मे कॅपकॅपी पैदा हो चली। वह विस्मृत गुप्त पाप जैसे आँखों में अचानक साकार बनकर दहाड़ उठा। कैसा भयानक था वह रूप ! प्रभुता के आतंक से मजबूरी के गर्त मे छिपा हुआ पाप एक अन्य प्रबल व्यक्ति के सहारे एकाएक जैसे प्रकाश मे आकर अपने क्रूर कृतघ्न जनक पर अचानक टूट पडना चाह रहा हो ! वह पलंग पर अब सीधे होकर बैठा न रह सका। धड़ाम से तकिये पर लुढ़ककर केवल इतना वह बोल सका—"तो हरामजादी मेरा सत्यानास करना चाह रही है !"—और कहते-कहते वह रो भी पड़ा। और रोते-रोते जरा ग़श खाकर कुछ क्षण के लिए बेहोश-जैसा भी हो गया। अथवा उसने जान-बूझकर बेहोशी का नाट्य किया।

जयशंकर का शैतान मन-ही-मन मुसकरा पड़ा। उसका मन यों प्रसन्न हो उठा जैसे हाथी के शिकारी का मन खदक मे आ-फँसे किसी

विशाल हाथी को देखकर ! जिम्मावाल-जैसे हाथी को फँसाने के निमित्त अब तक मन-ही-मन जिस खदक का निर्माण वह करता आ रहा था उसमे एकाएक गिरकर उसे छटपटाते देख अपनी बौद्धिक सफलता पर वह मुग्ध हो उठा। लेकिन मनोभाव को खूब गहराई से दबाकर वह जिम्मावाल के तात्कालिक उपचार मे लग पड़ा। जयशंकर के तात्कालिक उपचार से जिम्मावाल का पूरा होश झट वापस आ गया। लेकिन फिर भी उसके मुँह से एकाएक शब्द न निकल सका। कुछ देर चुपचाप शून्य दृष्टि से मानो छत की कड़ियाँ वह गिनता रहा। फिर पलग पर लेटे-लेटे ही मुखिया जयशकर की ओर मुँह करके वह भर्राये स्वर मे बोला—"मुख्या बाजे ! क्या आपका भी विश्वास है, कि महेन्द्र हमाल ने ऐसा पाप-कर्म कभी किया होगा ?"

और मुखिया ने मन-ही-मन मुसकराकर बडी तसल्ली से जवाब दिया—"नहीं हजूर ! कभी नही !"

जिम्मावाल का बल मानो एकाएक वापस आ गया। झट सीधे हो बैठकर अत्यंत दृढ़तापूर्वक उस अभियोग से इनकार करते हुए वह बोला —"अपने जेठे छोरे के सिर की कसम मुख्या बाजे, यदि मैने स्वप्न मे भी यह कुकर्म कभी किया हो ! कहिए तो भला ! मै हमाल ठकुरी ! तगाधारी ! ब्राह्मण की संतान ! मै भला जाऊँगा किसी चांडाल औरत से सपर्क करने ! क्या मेरे अपने घर मे औरतों की कमी है बाजे ?"

"नहीं हजूर !"—मुखिया ने मन की शैतानी मुसकान को दबाकर चेहरे को कौशल से नचाते खूब दृढ़ स्वर मे उसका समर्थन करते हुए कहा—"मैं स्वप्न में भी न कभी सोच सकता हूँ, और न कभी मान सकता हूँ कि आपने ऐसा कुकर्म कभी किया होगा ! मगर कलक तो आखिर कलक ठहरा ! चन्द्रमा को जो एक बार कलंक लग गया सो अब तक नहीं मिटा !"

"तो बाजे !"—जिम्मावाल ने आशकाभरे स्वर मे हकलाते हुए

फिर पूछा—"क्या···क्या सच···सचमुच उस सारकी छोकरे का चे···चे···चेहरा मेरे चेहरे से मिलता है ?"

"हाँ हजूर !"—बाजे ने खूब दृढ़ता से जवाब देकर झट आगे समाधान भी किया—"मिलता तो जरूर है ! मगर मेरा तो ख्याल है कि गर्भाधान के समय उस चुड़ैल ने आपके चेहरे का ध्यान किया होगा ! इसीसे वह छोरा बिलकुल आपपर उतर आया !"

"तो चुडैल ने दूर से भी मुझे भ्रष्ट कर ही दिया !"—जिम्मावाल ने कुम्हलाये स्वर मे जवाब दिया—"और अब वह बदमाश खुले-आम कलक लगाने पर भी तुली हुई है ! कलियुग है बाजे, कलियुग !" —कहते-कहते उसका स्वर सहसा भारी हो उठा।

"कलियुग तो है ही हजूर!"—मुखिया बाजे ने पुनः अपने मन की शैतानी मुसकान को दबाकर फुसफुसाकर समर्थन किया—"मगर वह तो अब बडे के बहकावे मे आ गई है प्रभु ! क्या करे, वह भी तो लाचार है बेचारी ! रोटी-रोजी का सवाल है उनके सामने !···और दिलबहादुर क्या कहता-फिरता है, सुना है हजूर ? वह तो कहता है कि जिम्वाल ने ही मुझे मारने और उजाड़ने की धमकी देकर मानबहादुर गुरुङ पर मुझसे पानी के मुद्दे का झूठा कलंक लगवाया था ! मगर जब काम निकल गया तो बेईमान ने मुझे जूते भी लगवाये ! और गाँव से उजाड़ भी दिया ! अब मै उससे बदला चुकाऊँगा सूद-मूर के साथ !"

"अच्छाऽऽ !"—भय और आश्चर्य से आँखें पसारकर जिम्मावाल ने फिर कहा—"इसीलिए तो कहता हूँ बाजे कि कलियुग है, कलियुग ! घोर कलियुग ! बदमाश नमकहराम ने जीवन भर मेरा नमक खाया ! उसे पाला-पोसा ! और अब यह झूठा कलक लगाकर मेरा सत्यानास करना चाह रहा है ? मुझसे बदला लेना चाह रहा है ? मैंने तो उसे गाँव से भगाया ही इसलिए कि उसने एक गरीब पर झूठा कलंक लगाया था ! मैं शपथ खाकर कहता हूँ बाजे, कि मैंने कभी उस नमकहराम को धमकी दी हो ! धमकी देकर उसे उस गरीब पर कलक

लगाने को मजबूर किया हो !"

"मगर जिम्वालज्यू ! गरीब भी तभी तक दबा या झुका रहता है जब तक कि उसे तनकर खड़े होने का मौका न मिले ! इसीलिए तो चाहिए यह कि इन नीच लोगो को कभी सिर उठाने ही न दिया जाय !"

"सो ही बाजे ! देख लें आप ! आप राजा साहेब से मेरी ओर से बिन्ती करके जरूर कहना—'इन नीचो को इस तरह खड़ा करके किसी भले आदमी की इज्जत-आबरू न उतरवाये ! उसका सर्वनाश न करें ! ये नीच जब बहक जायेंगे, किसी दिन उनका भी सर्वनाश करके छोड़ेंगे !' आप कहना बाजे ! जरूर कहना !"

"कहूँगा जिम्वालज्यू ! जरूर कहूँगा ! आपको इस मुसीबत से बचाने के लिए मै अपनी ओर से कुछ उठा न रखूँगा ! विश्वास रखें आप !"

"विश्वास तो है ही आपपर ! आपको मै अपने सगे-सहोदर से कम नहीं मानता !" फिर एकाएक प्रार्थनाभरे स्वर में—"मुखयाज्यू ! अब सुझाइये कोई उपाय ! कीजिये कोई उपाय !"

मुखिया ने सिर खुजलाकर गंभीर चिन्ता का नाट्य करते हुए भय-भरे स्वर मे जवाब दिया—"उपाय तो मै जरूर करूँगा ! मगर शका भी है ! मेरी बिन्ती से राजा अगर मान गया तब तो ठीक ही है ! मगर, अगर नही माना तो ? तब तो समझ लीजिए कि आप कही के भी न रह जायेंगे जिम्वालज्यू ! न इहलोक के, न परलोक के !"

जिम्मावाल के हृदय मे पुनः हड़कम्प मच गया। वह घबडाकर गिड़गिड़ाते हुए हाथ जोड़कर फिर बोला—"ऐसा न कहो 'मुख्या दाई'[1] ! कोई तरीका सोचो कि यह बवडर खड़ा ही न हो !"

---

१. 'दाई' का अर्थ बड़ा भाई होता है। किसी अपरिचित, आप्त, अथवा गाँव-घर के ही किसी गैर-रिश्तेदार को आदरार्थ इस शब्द से संबोधित किया जाता है।

"आप घबड़ायें मत जिम्वालज्यू !"—मुखिया ने पुनः सिर खुजलाते हुए उसे आश्वासन दिया—"मैं सोचूँगा, जरूर सोचूँगा ! मगर ख्याल रखें कि ऐसी हर मुसीबत के वक्त चाँदी की ही तलवार निकालनी पड़ती है प्रभु !"

"तो मै पीछे कब हटता हूँ बाजे ? आखिर धन-दौलत रहती ही किस दिन के लिए है भाई ? अगर इज्जत ही लुट गई तो यह दौलत किस दिन के लिए धरी रहेगी ?"

"बस !"—मुखिया एकाएक संतुष्ट होकर बोल उठा—"यही तो चाहिए जिम्वालज्यू !"—इतना कहकर उसने चुपके-चुपके अपनी सारी योजना उससे कह सुनाई, और तत्काल नकद पाँच हजार रुपये की माँग भी पेश कर दी।

"बाप रे ! पाँच हजार !"—जिम्मावाल घबड़ाकर बोल उठा—"इतने रुपये लेकर क्या करोगे बाजे ? कोई राज खरीदना है क्या आपको ?"

"अरे !"—मुखिया लेकिन उसकी घबडाहट का मजाक उड़ाते हुए तनिक धृष्ट स्वर में बोला—"आप तो इतने में ही घबड़ा उठे जिम्वालज्यू ! मगर यह नहीं सोचते कि लाखों की 'ठाकुरी' जाति, और सारी इज्जत-आबरू, और धन-दौलत इस वक्त मुसीबत के मुँह में जा फँसी है आपकी ? आपको पता होना चाहिए कि राजा ने उस छोकरे को बड़ी सावधानी से नजरबद भी कर रखा है ! उस छोकरे को वहाँ से उड़वा लेना अथवा उसे वहीं पार-घाट लगवा देना भी अब आसान नहीं रह गया ! और कई दूसरे उपायों पर भी तो खरचना होगा ? सोच लें आप ! और मुझे अब इजाजत दे ! मैने अपना मित्र का कर्तव्य पूरा कर दिया !"—कहकर मुखिया एकाएक रोबभरे धमकी के लहजे में उठ खड़ा हुआ।

मुखिया की बन आई थी। सामन्ती संस्कृति में कुल और जाति का महत्त्व, उसका गौरव सर्वाधिक मूल्यवान होता है। और इसी महत्त्व एवं

गौरव की मादक आकांक्षा से परिचालित हो नेपाल के राणा शासकों ने उदयपुर के महाराणा प्रताप के गर्वोज्ज्वल वंश से अपने मूल स्रोत को जोडने और जोडवाने की जी-तोड़ कोशिश की थी। जिम्मावाल के सामने अभी अपनी गर्व-दर्पित 'ठकुरी' जाति से एकाएक हाथ धो एक 'पतित' के रूप मे 'सारकी' जाति मे फेंक दिये जाने की परम भीषण बीभत्स सभावना प्रबल प्रतिद्वन्द्वी राजा हरिबहादुर के जोर से जीवन्त रूप मे प्रकट हो पडी थी! और अपने सत्य अपराध की जीवन्त स्मृति भी उस सभावना को बलवान होते देख रही थी। और तिसपर धन-दौलत से हाथ धोने की स्पष्ट संभावना भी।

अतः जिम्मावाल इस धमकी से मारे भय के पानी-पानी हो गया। पलग से झट उठकर मुखिया का हाथ पकडकर आदर और उलहने से भरे स्वर मे वह बोला—"जरा बैठिए तो मुख्या बाजे! झट नाराज होकर चल दिये! आखिर मै दुश्मन तो नहीं आपका? कुछ खा-पीकर मुँह मीठा करके जाना होगा! और कुछ रुपये अभी साथ लेते जाइए! और कुछ बाद मे ले लीजियेगा!"

इतनी आसानी से अपनी इस असाधारण सफलता पर मुखिया मन-ही-मन बाग-बाग हो उठा। लेकिन ऊपर से गभीरता का नाट्य वह किये रहा। जिम्मावाल के आग्रह और अनुरोध को वह टाल न सका। इस बार उसके आत्मीयता-भरे सादर आग्रह से पलॅग पर ही उसके ठीक सामने वह बैठ गया। नेपाल के सामन्त, सनातनधर्मी क्षत्रिय होकर भी अपने ब्राह्मण गुरुओ को भी बराबर का आसन देना अपनी शान का अपमान समझते थे। लेकिन इस क्षण एक चतुर ब्राह्मण-पुत्र द्वारा उत्पादित परम भयानक भय के प्रहार ने उस रॅगे शेर को जैसे अचानक सियार बना दिया था। बराबर के आसन पर तो क्या, इस क्षण जिम्मावाल उसे अपने सिर पर भी मजे मे बैठा सकता था।

राजा हरिबहादुर शाह की वार्षिक आय थी पचास हजार रुपयों के करीब। लगभग पचीस हजार अपनी पहाड़ी रियासत से और लगभग उतनी ही तराई की जमीनदारी से। लेकिन रैयतो पर रोब और आतक लाखों की वार्षिक आय वाले किसी भारतीय राजा से कहीं ज्यादा! रियासत मे शासन की उसे आन्तरिक स्वतन्त्रता थी, पर कानून चला करता नेपाल सरकार का। और राजा का महल मैदानी इलाके के नगर-वासियों की नजरों में नगण्य होते हुए भी पहाड़ी क्षेत्र के लिए कम रोबदार न था। दीवाल लाल-लाल पक्की ईंटों की थी। और लाल-लाल मजबूत नेपाली खपरों वाला उसका चौकोनिया ढालुआँ छप्पर किसी दूर की चोटी से यो दिखाई देता जैसे पहाड़ की ऊँची-ऊँची दीवारो से आवेष्ठित बाल-क्रीडांगन के बीच बच्चो के फिसलने की एक रगीन विशाल चौकोनिया ढाल-सी बनाई गई हो! छप्पर के चारो किनारे काठ की कामदार रंगीन पाटियो से जड़े हुए थे। और छप्पर के चारों कोनो पर जडे हुए काठ के कामदार छोटे-छोटे पाये यों प्रतीत हो रहे थे जैसे दिन के समय किसी पेड की डाल से लटक-रहे चमगादड! महल तिन-मजिला था। और दूसरी मजिल के कमरों की बाहरी दीवाल से जड़े हुए लकड़ी के काले-काले जालीदार जॅगले यों लग रहे थे जैसे महल की डरावनी आॅखा की पुतलियो के काले-काले जाल! हॉ वे पुतलियॉ-जैसी ही थीं। क्योकि उन जॅगलो से बाहर की सारी चीजे देखी जा सकती थी, पर बाहर का कोई व्यक्ति प्रयत्न करके भी उन जॅगलो के भीतर की कोई चीज नहीं देख सकता था। जैसे पुतली की राह किसी व्यक्ति के हृदय की स्पष्ट रूप-रेखा दिखाई नहीं देती।

महल की पहली मजिल के पृष्ठ-भाग के कमरों मे कारिन्दों का निवास और अन्नादि का गोदाम था। और सामने का खुला आधा भाग दालान भी था और राजा के दरबार का कक्ष भी। एक चौडे तख्तपोश

पर बिछी गद्दी पर स्वयं राजा बैठा करता, और दालान के फरश पर प्रतिष्ठित रैयत लोग। और दालान के किनारे काठ की एक बेंचनुमा पाटी भी जडी हुई थी जिसपर शायद राजवंश के अन्य लोग बैठा करते। मानो शृगालो की वह टोली सिंह को दो ओर से घेरकर बैठा करती। और राजा की गद्दी से दो-ढाई हाथ ऊँचे पर, दालान की बाहरी दीवार से जड़ी हुई, गौरी-शंकर की पीतल की युग्म-मूर्ति दिन-दिन की पूजा-अर्चा के चदन, रोली एव धूप-दीप के धुएँ से इस प्रकार कुरूप हो उठी थी जैसे कोई अतिशय शृंगार-प्रिय प्राचीन युग की बुढिया! और इस मूर्ति के नीचे अपनी गद्दी पर बैठा हुआ राजा अपने सिर पर गौरी-शंकर की कल्याणमयी छाया की शायद कल्पना किया करता। जैसे कोई अपराधी शिशु भी माँ-बाप की छाया में आश्वस्त रहा करता है। महल की खिड़कियों वाली दूसरी मंजिल रनिवास थी। और तीसरी मंजिल एक बिलकुल बड़ी हॉल-जैसी जिसमे पाक-शाला के अतिरिक्त महल की दासियों का निवान-स्थान भी था। महल का बाहरी आँगन वैसे खुला था, पर पत्थर की चार-दीवारी से घिरा हुआ। और इस चार-दीवारी में एक सिंह-दरबाजा भी था जिसके पत्थर के चौखटों पर सिंह की मूर्तियाँ खुदी हुई थीं, और सिरे पर मगलमय विघ्नहर्ता गणेश की। और चारदीवारी के भीतर आँगन के एक किनारे एक छोटे-से पक्के कमरे में राजा के निजी 'अड्डे' (अदालत) का कार्यालय था।

मुखिया जयशकर पन्त जिम्मावाल महेन्द्र हमाल से निबटकर दूसरे दिन ही राजा हरिबहादुर शाह के दरबार में उपस्थित हुआ। वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी से राजा का वफादार सेवक ठहरा, और उसके अनेक मुखियों में मुख्य भी! घोडी से उतरकर चारदीवारी के भीतर उसके प्रवेश करते ही अड्डे के कारिन्दों ने झट उठ खड़े होकर उसका स्वागत किया। जाति से ब्राह्मण होने के कारण वह उन सबका पूज्य था। जो ब्राह्मण होते हुए भी उम्र में छोटे थे, अथवा उम्र में बड़े होते हुए भी ठकुरी,

छेत्री और खत्री आदि जातियों मे उत्पन्न हुए थे। उनमें कुछ ने बिलकुल नेपाली लहजे में उसके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया, और कुछ ने अपना झुका हुआ सिर आशीर्वाद की आकांक्षा से झट आगे कर दिया। और उन झुके सिरों को पारी-पारी से दाँए हाथ की जुड़ी अँगुलियों के पृष्ठ-भाग से छू-छूकर मुसकाते हुए उसने सबको आशीर्वाद प्रदान किया।

अपनी घोड़ी की निगरानी अड्डे के टहलुए के जिम्मे सौंपकर अब वह राजा के दरबार की ओर पहुँचा। कारिन्दों से प्राप्त समस्त सम्मान को मानो राजा के चरणों में अर्पित करते हुए, विनय-बोझ से जैसे धरती को चूमते हुए, जुड़े हाथों की अंजलि को जैसे उलीचते हुए, 'स्वस्ति' कहते हुए राजा और बड़े राजकुमार को उसने श्रद्धाभरा आशीर्वाद समर्पित किया। और जवाब में राजा ने अपना सिर तनिक भी न झुका मुसकाते हुए केवल कुशल-प्रश्न किया—"कस्तो? कतावाट? मुख्या बाजे!"

मुखिया बाजे रास्ते भर अपनी योजना की धाराओं-उपधाराओं पर गहराई से विचार करता आया था। पर उस योजना के किसी भी अंश को सिवा राजा के किसी अन्य के समक्ष पेश करना मानो बना-बनाया खेल बिगाड़ देना था। कूटनीति का मँजा हुआ खेलाड़ी जयशंकर अपने खेलों का सदा नेपथ्य से ही संचालन किया करता। किन्तु उस नेपथ्य से ही विभिन्न अंचलों में विद्यमान पक्ष-प्रतिपक्ष के प्रमुख पात्रों को अपने सूत्र में खूब दृढ़ता से जकड़े रखकर ही! खुले रंग-मंच पर वह स्वयं शायद ही कभी आने की गलती करता। कथाकार अथवा नाटक-कार जिस प्रकार प्रबल पात्रों को कथा-सूत्र मे पिरोकर सबल रचना पेश करते हैं, उसी प्रकार जयशंकर को भी अपने कूटनीतिक खेलो की रचना मे सबल पात्रों की आवश्यकता पड़ा करती। जिम्मावाल के रूप में एक प्रबल पात्र उसके सूत्र में पिरोया जा चुका था। अब वह उसी सूत्र मे प्रबल प्रतिपात्र के रूप में राजा को फाँसने वहाँ पहुँचा था। जिम्मा-

वाल से राजा के षड्यन्त्र के सबध मे कही हुई उसकी कहानी निरी कल्पना थी। उसी कल्पना को अब यथार्थ मे परिणत करने के उद्देश्य से अविलम्ब वह राजा की राजधानी की ओर चल पडा था।

मुखिया बडे विनय से नीचे कबल पर बैठ गया। गमछे से तिलक-चंदन-लगे चेहरे का पसीना पोछते हुए उसने विनयभरे साहित्यिक लहजे मे जवाब दिया—"कमल के पास भौरा खुद दौडा जाता है, और मधु-मक्खियाँ खुद फूलो के पास! क्योकि उनके जीवन का सारा रस वही छिपा होता है! उसी प्रकार भक्त प्रजा का जीवन-रस भी अपने प्रभु के चरणो मे छिपा होता है! राजा प्रजा को नही बुलाता, प्रजा खुद अपने स्वार्थ की खातिर अपने राजा के चरणो मे उपस्थित हुआ करती है!" फिर गला खखासकर और नेत्रों को सावधानी से अगल-बगल दौड़ाकर—"अभी मै हजूर के हजूर मे एक उजुर करने आया हूँ! बडा जरूरी उजुर प्रभु! मगर सच्चे भक्त भगवान के हजूर मे उजुर किया करते है एकान्त मे! क्योकि एकान्त मे ही भक्त भगवान के चरणो मे अपने पूरे हृदय को निःसकोच खोल सकता है!"

जयशकर राजा का वफादार विश्वासपात्र अमला ठहरा! उसके चेहरे की रेखाओ मे अन्य दिनों की सामान्यता के बजाय आज प्रसन्नता-भरी असाधारण उत्सुकता की तरगे जैसे खेल रही थीं। तिसपर एकान्त की यह याचना! राजा का हृदय भी कौतूहल से तरगित हो चला।

"तो 'माथी' (ऊपर) चलें बाजे!"—राजा झट उसकी प्रार्थना स्वीकार करके गद्दी से उठकर नीचे आ गया। बगल के दरवाजे से झट भीतर प्रविष्ट हो काठ की पौढ़ियों पर पैर रखते हुए दूसरी मजिल की ओर चल पडा। और विनयभरे कदमो के साथ जयशकर उसके पीछे-पीछे चला।

राजा, जयशकर के साथ अपने शयन-कक्ष मे प्रविष्ट हुआ। शयन-कक्ष की भीतरी दीवालों पर मिट्टी का 'गच' किया हुआ था, जिसपर चूने की सफेदी थी। कमरे की छत काठ की काली-काली चौकोर कडियो

पर टिकी थी। और नीचे का फरश मिट्टी गोबर से पुता हुआ था। एक तरफ दीवाल से जड़ा सुनहले फ्रेम का एक आदमकद आइना था। और जहाँ-तहाँ देवी-देवताओं के फ्रेम-जडे लटके चित्रो के अतिरिक्त 'पाँच सरकार' महाराजाधिराज श्रीत्रिभुवन वीर विक्रमशाह देव की किशोरावस्था के एक सुन्दर तैल-चित्र की बगल मे 'तीन सरकार' राणा चद्र शमशेर का एक दढियल तैल-चित्र भी लटक रहा था। दोनों ही चित्र आकार मे काफी बड़े और सुनहले फ्रेमों में जडे, कुछ यों प्रतीत हो रहे थे ज्यों राजनीति के धागे मे कोमलता और क्रूरता का अजीब गठ-बन्धन हो !

'केटी' (दासी) झट दूसरे कमरे से आकर पाइपदार रूपहली पेंदी वाले हुक्के के मुँह पर चाँदी-मढी भरी चिलम रख गई। मुखिया फरश पर बिछे एक कंबल पर बैठ गया और उससे पहले राजा अपने गद्देदार पलँग पर। एक मामूली भरा हुक्का मुखिया के निमित्त भी आ गया। मुखिया ने प्रभु के समक्ष हुक्का पीने मे सकोच का नाट्य किया। किन्तु राजा का आदेश पाते ही प्रभु के उस प्रसाद के अपमान को मानो घोर अपराध मानकर उसने झट बडी श्रद्धा से उसे ग्रहण भी किया। राजा हरिबहादुर एकान्त मे उसे हुक्का देकर उसके प्रति मानो उसी विशेष आसक्ति और अनुग्रह का परिचय दिया करता जैसे कन्नौज का राजा जयचन्द्र खुले दरबार मे अपने दरबारी कवि श्रीहर्ष को बैठने का आसन एव पान के दो बीड़े देकर !

हुक्के के चाँदी-जडे पेचवान को मुँह मे डालकर दो-तीन कश खीच राजा ने कौतूहलभरे स्वर में प्रश्न किया—"क्या खबर है मुख्या बाजे ? बडे उतावले दीख रहे हो आज ?"

जयशकर ने अब धीरे-से विनीत लहजे में हुक्के के दो-तीन कश खींच अपने तीर छोड़ने शुरू किये—"उतावला तो होना ही चाहिए प्रभु ! इस दास का यह उतावलापन प्रभु का नमक खाते रहने का प्रताप है, और प्रभु-चरणो मे एक सच्चे प्रजा-जन की अगाध भक्ति का

प्रसाद भी ! बिना पुण्य के यह प्राप्त नहीं होता प्रभु ! और यही सबसे बड़ी पूँजी है इस पामर जयशंकर पन्त के जीवन की हजूर ! जयशकर को प्रभु-भक्ति और प्रभु के नमक का प्रसाद विरासत मे अपने पूज्य पिता से प्राप्त हुआ, और मेरे पूज्य पिता को हजूर के पूज्य पिता जी से ! और पुश्त-दर-पुश्त से इस प्रसाद को बक्सते आये हजूर के पुरखे लोग मेरे पुरखों को ! जैसे पहाड़ हमेशा से नदियों को जल बक्सता आया है ! यदि पहाड़ जल बक्सना बन्द कर दे तो नदियाँ अपनो मौत आप न मर जायँ ! पहाड़ से जल का प्रसाद पाकर जैसे नदियाँ उतावली हो उछल-कूद मचाती रहती हैं वैसे ही मुझ-जैसे पामर लोग प्रभु की कृपा का प्रसाद पाकर !"

जयशंकर ने हुक्के के दो-तीन कश खींचकर पुनः कहना शुरू किया—"मेरी रग-रग मे, सारे मास-पिंड में, हजूर के पवित्र नमक का रस भरा हुआ है ! और शास्त्रों में कहा गया है नमक को सब रसों में श्रेष्ठ ! इसी कारण अन्न के बजाय लोग नमक की दुहाई देते हैं ! जो अपने स्वामी के प्रति वफादार रहता है उसे कहते हैं 'नमकहलाल', और जो स्वामी से धोखा करे उसे कहते हैं 'नमकहराम' ! 'नमकहलाल' कितना पवित्र शब्द है प्रभु ! और 'नमकहराम' कितना अपवित्र ! नमकहरामों को तो नरक में भी जगह नहीं ! और···"

चापलूसी का महत्त्व और माहात्म्य हर क्षेत्र मे हैं। किन्तु सामन्ती दरबारी क्षेत्र में बहुत अधिक ! चापलूसी की कला में सुदक्ष हुए बिना न कोई राजे-महाराजों की कृपा प्राप्त कर सकता था, न उनके दरबार में प्रवेश और प्रतिष्ठा ! राजा हरिबहादुर का पद और अधिकार छोटा अवश्य था, किन्तु चापलूसी के उन्मादक वाक्य सुनने और प्रसन्न होने की भावना बड़े राजे-महाराजों से कम बड़ी न थी। जयशंकर वंश-परम्परा से ही इस कला मे निष्णात था। लेकिन जयशंकर की इस भूमिकाभरी चापलूसी को लबा रूप ग्रहण करते देख, और स्वयं मुख्य विषय को झट सुनने की उत्कठा के कारण राजा ने बीच में ही टोका

उसे—"यह तो कोई नई बात नहीं बाजे ! जिस नई बात को सुनाने की खातिर इस एकान्त में घसीट ले आये हो मुझे, उसे तो जल्दी सुना जाओ पहले !"

"अभी उजुर करता हूँ हजूर मे !"—जयशकर ने प्रभु की इच्छा और आदेश के प्रति झट आदर दर्शाते हुए कहा—"हजूर ने 'अभी-अभी पूछना बकसा था—'बड़े उतावले दीख रहे हो !' मै ठहरा अपने प्रभु का वाहन ! जैसे भगवान श्रीविष्णु के वाहन श्रीगरुड जी ! गरुडजी भगवान से हुकुम लिये बिना कोई काम करते न थे। मगर प्रभु का वाहन यह पामर जयशकर गरुड़जी से कुछ अधिक उतावला अवश्य रहता है ! विश्वास बकसा जाय ! अपने प्रभु की स्वार्थ-सिद्धि के उतावलेपन मे कभी-कभी प्रभु से हुकुम लिये बिना ही कुछ गुस्ताखी भी कर बैठता है !" फिर एकाएक विनय से दोनो हाथ जोड़कर—"पहले इस पामर की गुस्ताखी माफ बकसी जाय तो कुछ बिन्ती करूँ आगे !"

"माफ ! बिलकुल माफ !"—राजा ने भी कौतूहल के आवेग मे मन-ही-मन तनिक खीझकर झट माफी बकसते हुए आदेश दिया—"अब आगे की बताओ !"

जयशंकर ने हुक्के के दो-तीन कश खींचे। पुनः भूमिकाभरे लहजे मे कहना उसने शुरू किया—"भगवान श्रीकृष्ण के घर मे कलह हुआ प्रभु ! बड़ी महारानी सत्यभामाजी रूठ गईं। क्योकि अपने महल के आँगन मे स्वर्ग के पारिजात वृक्ष को देखे बिना उन्हे चैन न था। तब भगवान ने गरुड़जी को हुक्म दिया। और गरुड़जी जा पहुँचे एक ही उड़ान मे स्वर्ग के पारिजात वन मे, और पारिजात-वन के रक्षको को परास्त और पराजित करके बात-की-बात मे ले आये पारिजात-वृक्ष का हरण करके अपने प्रभु के पास !, सत्यभामाजी के पास ! यह तो हुई द्वापर-युग की बात ! अब मै कलियुग के पारिजात-हरण की बात बताऊँ प्रभु ! ध्यान बकसा जाय !"

"सुन रहा हूँ !"—राजा ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुये जवाब दिया।

जयशकर ने गला खखासकर आगे कहा —"और अब कलियुग का गरुड जयशकर भो, पारिजात का एक वृक्ष कहा जाय, अथवा एक अत्यन्त सुदर फूल, हरण करके अपने स्वामी के चरणों मे चढ़ाने का सकल्प कर चुका है प्रभु ! न केवल सकल्प, बल्कि हरण की अचूक योजना भी बना चुका है ! अब, यदि विलब है तो केवल प्रभु की स्वीकृति का ! प्रभु के आदेश का ! वह ऐसा फूल है प्रभु, विश्वास बकसा जाय, कि इस महल मे प्रवेश करते ही सारे महल को सुगध से भर दे ! प्रभु के जीवन को रसमय बना दे ! वह ऐसा रूप है प्रभु, कि अचानक अँधेरे को उजाला कर दे! इस महल के कोने-कोने को चमका दे ! उस रूप में वह चमक है प्रभु, जैसी रह-रहकर आकाश मे दमकती हुई बिजली में ! और उस दमक मे वह मिठास है प्रभु, जैसी चाँद की चमकती हुई रोशनी मे !"

अपने इस कवित्व की छटा में रह-रहकर जयशकर की आँखे भी चमक रही थी। दमक रही थी। और राजा को समझते अब देर न लगी कि किसी सुदरी के अपहरण से प्रस्तुत विषय का सबंध है। अब उसके मन की खीझ भी मन-ही-मन मिट चली। उसकी नसो मे बडे वेग से वासना की बिजली कौद उठी। बुढ़ापे की वासना ! आकाक्षा के प्रचड नशे से भरी हुई ! पर सामर्थ्य के आवेग से वचित !

अपनी वासना की आकस्मिक उत्तेजना को छिपाने के प्रयास में तनिक जोर से हँसकर वह मुसकाते हुए बोला—"तुम्हारी बात और बुद्धि मे वह चमत्कार है बाजे, कि तुम्हारे स्वर्गीय पिता मे भो दिखाई न दिया मुझे ! अब खोलकर यह बताओ कि पारिजात का वह फूल किस बाग मे है अभी ?"

"अभी उजुर कर रहा हूँ हजूर में ! और इस दास की बुद्धि और बात का चमत्कार तो केवल प्रसाद है प्रभु-चरणों का ! प्रभु-चरणों के आगे अहकार मै नही कर सकता !"

इतना कहकर उसने हुक्के का दम लेना शुरू किया। लेकिन धुआँ उठ न सका। राजा ने लक्ष्य किया। आवाज लगाई—"कांछी ! ! !"

केटी झट हाजिर हुई। नये सिरे से दोनों चिलमे भरकर वह रख गई। जयशकर ने चुपके-चुपके कहना शुरू किया—"उस बाग का मालिक एक राक्षस है प्रभु ! परम पिशाच ! परले दर्जे का बदमाश ! बडा अहंकारी !" फिर गर्व से आँखें नचाते हुए—"मगर देखिएगा चमत्कार इस जयशंकर की बुद्धि का ! उस अहकारी माली या मालिक को खुद उस फूल को लिये हुए हजूर के हजूर मे हाजिर होने पर मजबूर न कर दूँ तो इस पामर का नाम जयशंकर नही !"—कहते-कहते उसके चेहरे पर दृढ़ संकल्प का शैतानी तेज चमक उठा।

और राजा ने जैसे पूर्ण विश्वस्त हो शेष कौतूहल को निवृत्त करने के आवेश में पूछा उससे—"पहले उस पामर माली का नाम तो बताओ बाजे !"

और मुखिया ने खुशी से मुसकाते हुए झट जबाब दिया—"जिम्वाल महेन्द्र हमाल, प्रभु !"

इस प्रसंग मे महेन्द्र हमाल का नाम सुनते ही राजा के मन में अतीत की एक स्मृति कौद उठी। अपमानभरी, अत्यन्त कडवी स्मृति ! और जयशंकर ने भी उसी कडवी स्मृति को बटोरकर झट पेश करते हुए कहा—"मुझे याद है प्रभु ! प्रभु को भी याद होगा ! प्रभु के स्वर्गीय पूज्य पिताजी ने मेरे स्वर्गीय पूज्य पिताजी को किसी समय जिम्वाल के घर उसकी जेठी छोरी को मॅगनी के निमित्त भेजना बकसा था। उसकी जेठी छोरी इस महल की 'बड़ी रानी' बनकर आज हजूर की सेवा मे होती अगर अभागिन के कपाल को विधाता ने यह सौभाग्य बकसा होता ! खैर ! मै भी 'बुवा' (पिताजी) के साथ था। कच्ची उम्र थी तो क्या, मगर हमाल की वह अपमानभरी बात मैं कभी भूल न सका प्रभु, जो उसने घमंड में चूर हो ऐंठकर मेरे 'बुवा' से कही थी—'अरे बाजे !!! मैं भला अपनी ठकुरी छोरी दूँ एक

लुहारिन की छोरी की औलाद को ! छी ! भले ही वह राजा हो, राजकुमार हो, राणा 'खलक' (वंश) की छोरी में वह पैदा हुआ हो, मगर इसे मै कैसे भूल जाऊँ कि राणा खलक की वह छोरी आखिर है तो लुहारिन के पेट से ही पैदा हुई ? और उसी के पेट से पैदा हुए राजकुमार को मै अपनी ठकुरी छोरी देकर अपनी जाति और वंश का नाम हँसाऊँ ? वश की नाक कटवाऊँ ? मै लुहारिन की औलाद को अपना 'ज्वॉइ' (दामाद) बनाऊँ ? मै कोई ऐरा-गैरा ठकुरी नहीं बाजे ! 'हमाल' ठकुरी हूँ, जिसका आधा रक्त स्वयं ब्राह्मण का है जो सभी जातियों में श्रेष्ठ माना जाता है ! सबका पूज्य !' "

राजा के चेहरे पर अचानक अरुचि की रेखाएँ उभरती दीखी। कितना करारा व्यंग कर दिया जयशंकर ने ! उसे अपना यह वंश-वर्णन कतई रुचा नही। राम-राम ! छी-छी ! उसके राज-रक्त में 'लुहार' जाति का रक्त ! लुहार की वह सुदरी कन्या काठमांडू-उपत्यका में उत्पन्न हुई थी, जहाँ 'कउ' नाम से पुकारी जाने वाली 'लुहार' जाति अछूत नहीं मानी जाती। किन्तु नेपाल के समस्त पहाड़ी क्षेत्रो मे तो वह अछूत ही मानी जाती है ! परम अस्पृश्य! सवर्ण शूद्र के रूप मे समझी जानेवाली 'खश' जाति में उत्पन्न नेपाल के राणा-शासकों ने अपनी मूल जाति से सबध तोड़कर उदयपुर के महाराणा-वंश से अपनी वश-शृङ्खला जोड़ने-जुड़वाने के कितने प्रयास किये ! इतिहासकारों को कितने घूस-रिश्वत दिये ! पर लुहारिन के गर्भ से पैदा हुई हरिबहादुर की वह। माँ तो अभी-अभी ही मरी थी ! रक्त-सम्बन्ध की यह स्मृति अभी पुरानी पड़ी न थी। लेकिन फिर भी वह इस सम्बन्ध को झुठलाने और उस स्मृति को भुलाने का प्रयास अवश्य किया करता ! मानो कोयले की खान से उत्पन्न रत्न अथवा पक से पैदा हुआ पंकज अपनी उत्पत्ति के स्रोत पर वितृष्ण हो उठा हो ! श्रेष्ठत्व के अहंकार से कितनी कृतघ्नता, कितना असत्य जुड़ा होता है !

जयशंकर ने कितना बड़ा अपराध कर दिया उस स्मृति को ताजा

बनाकर ! लेकिन जयशकर झट सम्हल गया । अपने स्वामी के अचानक बदले रुख को लक्ष्य करके झट पैतरा बदलते हुए, जिम्मावाल के उद्देश से नेत्रो में क्रोध भरते हुए वह बोल उठा—"मेरी तो इच्छा हुई प्रभु, कि मै उसी वक्त बदमाश जिम्वाल की जीभ खींचकर इस बदतमीजी का मजा चखा दूँ ! मगर 'बुवा' के इशारे पर मन मारकर रह गया ! मगर मैने मन-ही-मन उसी दम प्रतिज्ञा कर ली प्रभु—'अगर इस बदमाश बदतमीज को किसी दिन इसकी छोरी-सहित अपने प्रभु के चरणों मे हाजिर कराकर, रो-रोकर माफी माँगने पर मजबूर न कर दूँ तो मेरा नाम जयशकर नहीं ! मेरी नसों में ब्राह्मणत्व का पवित्र रक्त नहीं !' वह मेरी भीष्म-प्रतिज्ञा थी प्रभु ! मगर राख के नीचे दबी आग की तरह वह आज तक मन-ही-मन सुलग रही थी ! अब गजब का अवसर उपस्थित हो चुका है मेरी उस प्रतिज्ञा के पूरी होने का हजूर ! आह, जिम्वाल की उस काछी ठकुरी छोरी को मैं जल्द-से-जल्द अपने प्रभु की 'कांछी' बनती देखने को अत्यन्त उतावला हो उठा हूँ प्रभु !"

जयशंकर का प्रवाह अभी जारी रहा—"वह बदमाश जिम्वाल, प्रभु के वंश पर उस घृणित व्यग को अपनी घृणित जबान से निकालते वक्त इस सत्य को भूल गया था कि राजा स्वयं भगवान का अश होता है ! भगवान सबका पिता होता है, और सबकी जाति उसकी अपनी जाति होती है ! वह चाहे किसी को भी अपने मे मिला सकता है, मगर खुद किसी दूसरे मे नहीं मिल सकता ! गगा के पवित्र प्रवाह मे कहीं का भी जल मिलकर 'गगा-जल' बन जाता है ! परम पावन ! परम पवित्र ! और अग्नि में जो भी चीज डाल दी जाय अग्नि बन जाती है ! अग्नि-जैसी ही पूज्य और पवित्र ! और राजा भी अग्नि का अश होता है ! उसका शरीरधारी रूप ! अग्नि के क्रुद्ध होने पर घर-द्वार जल जाता है, और फिर बन भी जाता है ! मगर राजा-रूपी अग्नि के क्रुद्ध होने पर घर-द्वार तो क्या, सारा सर्वस्व स्वाहा हो जाता है ! अपराधी की कई पीढ़ियाँ तक राज-कोप में जलकर भस्म हो जाती हैं !' फिर मानो

अतिशय भक्ति से झट दोनो हाथ सिर से सटाते हुए—"मेरे परम पूज्य प्रभु ! हमारे भगवान ! दास तो हमेशा हाजिर है हजूर के कदमो मे ! जैसी मरजी हो हजूर की ! जैसा फैसला हो ! जैसा हुकुम हो प्रभु का ! यह दास अत्यन्त श्रद्धा से उसे सिर-आँखो पर लेकर मैदान मे कूद पड़ेगा !"

अचानक क्रुद्ध हुए देवताओ को स्तुति से झट प्रसन्न कर लेने की अनेक कथाएँ भारतीय काव्यों और पुराणों मे भरी पडी हैं। पार्वती के साथ काम-केलि मे निमग्न भगवान शकर कपोतरूपधारी अग्नि पर इस लिए क्रुद्ध हो पड़े थे कि वह छिपे छिपे उनकी काम-क्रीड़ा को देख रहा था। और तब अग्नि ने झट स्तुति-वाक्यों द्वारा भगवान शंकर का क्रोध शान्त करके उन्हे प्रसन्न कर लिया।[1] उसी प्रकार अभी जयशंकर ने भी स्तुति-वाक्यो से लुहारिन की सतान को एकाएक 'भगवान' बनाकर झट प्रसन्न कर लिया ! राजा के चेहरे पर अरुचि और छिपे क्रोध की जल-उठी रेखाओ मे अब माधुर्य भर चुका था। एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करने के आयोजन का माधुर्य ! और उसकी परम रूप-वती काछी पुत्री को पाने की निश्चित आशा का माधुर्य ! और इस माधुर्य की उपलब्धि का एकमात्र साधन और सहायक था जयशकर ! फिर क्रोध के शान्त होते और प्रसन्नता के वापस आते देर क्या भला ?

"पहले अपनी योजना का पूरा रूप तो बताओ बाजे !"—राजा ने प्रसन्न होकर औत्सुक्य-भरे स्वर मे फिर पूछा।

"कल 'कुरचे' गॉव का एक 'मगर' क्या हजूर के हजूर मे आया नहीं था प्रभु ?"

"आया तो था ! बता रहा था, मुख्या बाजे ने भेजा है ! शायद

---

१. "वचोभिर्मधुरैः सार्थैर्विनम्रेण मया स्तुतः।
प्रीतिमानभवद्देवः स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ॥"
—कुमार-संभव १०।६

अब भी यहीं हो वह !"

"तो हजूर को कुछ मालूम नहीं हुआ उससे ?"

"हुआ क्यो नहीं ! लेकिन तुम्हारी इस योजना के सबध मे तो उसने कुछ बताया नही ?"

"उससे भला इस योजना की बात मै कैसे कहता प्रभु? यह तो मत्र है, मत्र ! अत्यन्त पवित्र मत्र ! तत्र-मत्र-शास्त्र मे कहा भी है—'गोप्या कुलवधूरिव !' अपनी उस मन्त्ररूपी कुल-वधू को खुद जयशंकर अपने प्रभु के चरणों मे समर्पित करने ही तो आया है अभी ! मगर बिन्ती है कि इस मन्त्र का रहस्य यदि मेरे और हजूर के बीच ही सुरक्षित रह सका, तभी सफल होने की आशा है प्रभु ! प्राचीन युग का तो यह नियम था प्रभु, कि क्षत्रिय राजा और ब्राह्मण मन्त्री ! आज कलियुग मे वह नियम जरूर नही रह गया, मगर ब्राह्मणो की बुद्धि आज भी भोथी नहीं बन सकी हजूर ! और न उनकी स्वामि-भक्ति और स्वामी के हित की निरन्तर चिन्तना मे कभी कमी आ सकी !"

"जानता हूँ ! विश्वास भी है ! कह जाओ ! अपना मंत्र झट सुना जाओ !"

"राजनीति-शास्त्र मे लिखा है प्रभु—'असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः, सन्तुष्टाश्च महीभुजः ।' असन्तोषी ब्राह्मण नष्ट होता है और सन्तोषी राजा ! यह मै अच्छी तरह जानता हूँ कि हजूर के महल मे अप्सराओ की कमी नहीं है ! मगर उनसे ही सतुष्ट रह जाना राज-धर्म के अनुकूल तो नही ? हमाल की वह कांछी ठकुरी छोरी तो देखने मे ऐसी परी है प्रभु, जैसे स्वर्ग की अप्सराओ मे ऊर्वशी ! मै अनेक बार हमाल के घर जाकर रूप की उस लक्ष्मी के दर्शन से अपने नेत्रों को कृतार्थ कर चुका हूँ हजूर ! आह, जैसे ब्रह्मा की मानसपुत्री सरस्वती हो वह ! हजूर ने पुराणों की कथा मे सुनना बकसा होगा ! ब्रह्माजी सरस्वती को अपने मन से उत्पन्न करके किस प्रकार उसके रूप पर स्वयं मोहित हो उसके पीछे दौड़ पड़े थे ! वैसी ही रूपवती है हमाल की वह कांछी छोरी हजूर !"—कहते-

कहते जैसे स्वयं जयशंकर की नसो मे वासना की उत्तेजना कौंद उठी। उसके चेहरे पर लाली उभर उठी।

राजा हरिबहादुर ने इसे लक्ष्य किया, और स्वयं अपनी नसो की उत्तेजना की झेंप को जैसे छिपाने के प्रयास मे तनिक हँसकर जयशकर से उसने सरस मजाक किया—"पता नहीं हमाल के मन का भी वैसा ही हाल हुआ हो कभी, लेकिन तुम्हारा तो बाजे, खुद बुरा हाल हुआ लगता है अभी, जैसा ब्रह्माजी का हुआ था!"

जयशकर भी हँस पडा। लेकिन नेपाल के कतिपय परम कामुक सामन्तो की तरह अपनी तरुणी पुत्री के प्रति भी जिम्मावाल के ब्रह्मवादी स्वभाव को जानते हुए भी जयशंकर ने जान-बूझकर इस क्षण हमाल को 'बकस' दिया। हँसी-खुशी इस आक्षेप को अपने ऊपर लेते हुए, मुसकराते हुए वह बोला—"आश्चर्य क्या हजूर? ब्राह्मण सीधे ब्रह्मा की ही तो संतान हैं प्रभु? और बडे-बडे ऋषि-मुनि तक किसी अनुपम रूप को देखते ही जब डिग चले तो इस पामर जयशकर की क्या बिसात हजूर? शिव और सती, तथा शिव और पार्वती के विवाह मे पुरोहिताई करते समय सती और पार्वती के रूप को देख बूढ़े ब्रह्माजी का कैसा बुरा हाल हो चला था प्रभु? सच कहता हूँ, विश्वास बकसा जाय, किसी तरुणी को देखकर अथवा केवल उसके रूप-गुण का बखान सुनकर बुढ़ापे मे वासना बडे जोर से जाग पड़ती है हजूर!"

तीर जैसे फिर निशाने पर जा लगा। जैसे दूसरा चोर भी पकड़ लिया गया। राजा अप्रतिभ हो हँस पड़ा। दोनो हम-उम्र थे। पचास पार किये हुए। बचपन से ही दोनों मे इस प्रकार के हास-परिहास होते आये थे। राजा को यह व्यग जैसे मीठा लगा। दोनों के लिए ही यह चर्चा काफी सरस हो चली थी। काम-कौतुक के क्षेत्र मे जयशंकर राजा के विदूषक या नर्म-सचिव का 'पार्ट' भी अदा किया करता, लेकिन संबोधन की समता के अधिकार से वंचित होकर!

जयशंकर ने मुसकाते हुए फिर कहा—"छोकरे हम बूढ़ों का मजाक

भले ही उड़ा ले प्रभु, मगर इस मजाक का सही मतलब उन्हें मालूम होगा तब जब खुद उनके सिर पर बुढ़ापा सवार हो जायगा !"

और राजा ने झट प्रतिवाद किया—"अरे, हम बूढ़े काहे के बाजे ? क्या जवान छोकरे-छोकरियों का बाप बन जाने से ही कोई बूढा बन जाता है ? बूढ़ा दरअसल कोई बनता है तब जब वह स्वय अपने को बूढ़ा मान ले ! अपने रक्त मे बुढ़ापे को महसूस करने लगे ! अथवा सतान पैदा करने मे निःशक्त हो चले ! गये साल ही तो तुम्हारे और मेरे घर मे नये बच्चे पैदा हुए ? फिर हम बूढ़े काहे के बाजे ?"

"बिलकुल ठीक कहना बकसा हजूर ने ! दरअसल, हम तो अब कहीं पककर जवान बन सके हैं ! बुजुर्गों की कहावत है प्रभु—'सट्ठा तब पट्ठा' ! अभी तो हमे 'पट्ठा' होने मे ही कई साल की देर है प्रभु !" फिर सरस हँसी हँसते हुए—"जिम्वाल की वह कांछी छोरी खुद बहुत जल्दी इस सच्चाई को महसूस करेगी प्रभु ! विश्वास बकसा जाय !"

राजा खूब जोर से हँसा । इस क्षण, जैसे वे दोनों पद-मर्यादा भूल-कर बिलकुल साथी बन चले । राजा के मन मे उस तरुणी को जल्द-से-जल्द हस्तगत करने की आकांक्षा और भी उतावली हो उठी । उतावले पन के साथ जयशंकर से पूछा उसने—"तो कब पारिजात के उस ताजे फूल को इस महल में ला रहे हो बाजे ?"

"बहुत जल्दी प्रभु !"—इतना कहकर जयशंकर ने मध्यमा को अँगूठे से चटकाते और आँखें नचाते हुए कहा—"उस फूल को इस चमत्कार से प्रभु-चरणो में पेश करना चाहता हूँ कि उस चमत्कारी योजना को अभी जानकर हजूर भी चकित रह जायँ ! और उस फूल को पाकर तो इस पामर जयशकर पर इतना अधिक प्रसन्न हो जायँ कि दान-बकशीश में सारा खजाना बकसकर भी सतुष्ट न हो सकें ! मगर जयशकर ठहरा ब्राह्मण ! 'असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः !' और प्रभु ठहरे राजा ! 'सन्तुष्टाश्च महीभुजः !"

"अरे, मिलेगा ! खूब मिलेगा ! अपनी योजना का रूप तो सुनाओ !

बड़े वाचाल हो तुम !"

"प्रभु-चरणों मे बैठते ही यह नादान वाचाल हो उठता है जैसे बालक अपने प्रिय पिता की गोद मे बैठकर ! "अच्छा तो अब कान बकसा जाय प्रभु ! प्रभु को मालूम होगा कि हमाल ने अपने एक 'सारकी' के जरिये एक बूढ़े गुरुङ पर पानी के मुद्दे का झूठा कलक लगवाकर, और उसे डराकर उसकी सुन्दरी तरुणी छोरी को अपने घर मे घुसा लिया था ! फिर बेईमान ने उसी तरुणी के कहने पर उस गरीब सारकी को पीट-पाटकर अपने 'जिम्मा' से भगा भी दिया ! प्रभु की सवारी उन दिनो 'नेपाल' (काठमांडू) मे बकसी हुई थी ! सारकी रोता-पीटता मेरे पास पहुँचा ! मुझसे मेरे प्रभु की शरण माँगी ! प्रभु का हुकुम लिये बिना ही मैने प्रभु के नाम पर उसे प्रभु की राजधानी मे बसा दिया !" फिर एकाएक दोनों हाथ जोड़—"माफी बकसी जाय यदि कोई गुस्ताखी हो गई हो इस दास से ! मगर जयशंकर जो कुछ करता है अपने प्रभु के स्वार्थ को ध्यान में रखकर ही !"

"मुझे मालूम है ! आगे कहो !"

"उस सारकी का नाम दिलबहादुर है प्रभु ! उसकी 'स्वास्नी' (पत्नी) बिलकुल तरुणी है ! और देखने में हजारो में एक ! उसके साल-दो-साल का एक छोरा भी है ! उस छोरे पर हजूर की नजर अभी नही बकसी गई शायद ! मगर सच कहता हूँ, अभी खुद नजर बकसकर विश्वास बकसा जाय ! उस छोरे का चेहरा हू-बहू महेन्द्र हमाल के चेहरे पर उतरा है प्रभु ! हजूर एक नजर बकसकर अभी ही साबित कर लें ! देखकर हजूर चकित न रह जायँ तो जयशंकर के नाम पर थूक !"

और राजा ने मुसकाते हुए कहा—"मुझे तो बाजे, खुद हमाल का चेहरा ही याद नही कि उस छोरे के चेहरे को देख तुम्हारे नाम पर थूक फेंक सकूँ !"

जयशंकर भी मुसकाते हुए बोला—"सेवक के लिए स्वामी का थूक भी कम पवित्र नहीं प्रभु ! मगर विश्वास है मुझे, इस मामले मे मै

स्वामी के थूक का हकदार नहीं बन सकूँगा ! और प्रभु को हमाल-जैसे लोगो का चेहरा भला याद रहेगा क्यो ? परस्पर मिलना-जुलना होता है समान पद-मर्यादा के लोगों मे ! अथवा स्वामी और सेवक में ! मगर विश्वास बकसा जाय, कुछ दिन बाद से ही प्रभु और हमाल का मिलना-जुलना शुरू हो जायगा—स्वामी-सेवक के रूप में और ससुर-ज्वाँइ के रूप मे !"—इतना कहकर तनिक जोर से वह हँस भी पडा। फिर बोला—"खैर ! हमाल के खिलाफ, हमे भी प्रभु, उसी हथियार का इस्तेमाल करना चाहिए जिसका इस्तेमाल उसने खुद किया था उस बूढे गुरुड पर, उसकी छोरी को हथियाने के विचार से ! उसी के जूते, उसी के सिर ! दिलबहादुर की 'स्वास्नी' और उसके छोरे के रूप मे दो बड़े तगडे हथियार हैं हमारे पास ! जब कि वह गरीब शूद्र गुरुड अपनी जाति जाने के भय से काँप उठा था, तो यहाँ तो महाघमडी एक हमाल ठकुरी ठहरा ! जाति और धन दोनो का घमंड ! तिसपर न केवल जाति जाने का खतरा, बल्कि संपत्ति मे उस सारकी के छोरे का हकदार बन जाने का खतरा भी ! और इस खतरे की तलवार को अपने मजबूत हाथों में थामे रहेंगे खुद मेरे हजूर ! सच माना जाय, इस तलवार को तनी देखकर ही उस बदमाश जिम्वाल के होश गुम हो जायेंगे ! घमड चूर हो जायगा ! और तब वह हजूर के हजूर में गरीब बनकर हाजिर होगा ! गिड़गिड़ा-गिड़ाकर सुलह और माफी की भीख माँगेगा ! और बतौर घूस-रिश्वत के अपनी कांछी छोरी को वह खुद हजूर के पैरों पर निछावर कर देगा ! वह खुद हजूर का ससुर बनने की भीख माँगेगा प्रभु ! विश्वास बकसा जाय !"

"योजना तो गजब की है बाजे !"—राजा हरिबहादुर एकाएक जैसे खुशी मे उछलकर सीधे हो पलग पर बैठ गया। उत्सुकता-भरे स्वर मे चुपके से वह बोला—"तो जरा उस सारकी के छोरे को मुझे दिखाओ न बाजे !"

"मैं उसे केवल दिखाना ही नही चाहता प्रभु, बल्कि पूरी तरह हजूर की नजरबदी में माँ-सहित उसे कैद भी करा देना चाहता हूँ ताकि

मुद्दा चालू होने पर शैतान हमाल उस छोरे को उड़वा न सके, या किसी उपाय से मरवा न सके !”

“अब तुम्हारी अक्ल का लोहा मै पूरी तरह मान गया बाजे ! तुम सचमुच सच्चे ब्राह्मण हो ! चाणक्य की सच्ची सन्तान !”—राजा ने अचानक खूब भावुक बनकर उसकी स्तुति की—“सच्चे ब्राह्मणो और सच्चे कायस्थो की अक्ल से कोई लोहा नही ले सकता !”

और जयशकर तनिक जोर से हँसकर फिर विनयपूर्वक मुसकाते हुए बोला—“यह तो बहुत बडी प्रशसा हो गई प्रभु, जैसे कोई नाले को नदी कह दे और नदी को समुद्र ! मगर कायस्थ जॉटा शूद्र, क्या खाकर मुकाबला करेगा ब्राह्मणो की अक्ल का हजूर ? ब्राह्मण ठहरा भू-सुर, मही-सुर, पृथ्वी का देवता प्रभु ?”

और हजूर ने झट मुसकाते हुए जवाब दिया—“शराब-कबाफ और लहसुन-प्याज खाकर बाजे ! तुम ब्राह्मणो ने कायस्थो को शूद्र बनाकर इहलोक के सम्मान से जरूर वचित कर दिया, मगर एक कायस्थ के बेटे ‘चित्रगुप्त’ ने यमराज का दरबार हथियाकर तुम लोगो से बदला चुका लिया ! तुम पृथ्वी के देवताओ—ब्राह्मणो—के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा भी उस कायस्थ-पुत्र के ही हाथ मे रहता है बाजे !”

लेकिन बाजे ने हार नही मानी। बोला—“मगर इहलोक से तो जॉटे को भगा ही दिया हमने ? उसकी हरामखोर औलादो को तो शूद्र बना ही दिया ?”

राजा ने जवाब दिया—“मगर ‘मोगलान’ (भारत) में तो अब वे लोग अपने नामो के आगे ‘लाल’ और ‘दास’ के बजाय ‘सिन्हा’ और ‘वर्मा’ भी लगाने लगे हैं बाजे ? अपने को क्षत्रिय समझने लगे हैं ?”

“मोगलान मे तो राज है हजूर, म्लेच्छो का ! इसी से शूद्र क्षत्रिय बनने लगे हैं ! वहाँ के ‘सारकी’ भी नाम के आगे ‘वर्मा’ लगाने लगे हैं हजूर ! मोगलान मे कलियुग आप-रूप से प्रकट हो गया है न ! मगर

नेपाल के धर्म-राज्य मे प्रवेश नहीं कर सकता यह कलियुग जॉटा ! विश्वास बकसे !"

कुछ मिनट के लिए प्रस्तुत प्रेम-प्रसग को जैसे वे भूल चले थे। राजा ने कहा—"अरे बाजे ! मोगलान मे तो 'गांधी' नाम से एक बनिये ने सबका गुरु बनकर अवतार ले लिया है अब ! और इस धूर्त जॉटा बनिये के पीछे वहॉ के सारे ब्राह्मण भी हैं ! सारे कायस्थ भी !"

"हॉ हजूर ! मैने भी सुना है ! पिछले माघ मे काशी-प्रयाग की अपनी तीर्थ-यात्रा में मैने भी यह अशुभ बात सुनी प्रभु ! मगर वे ब्राह्मण नहीं हैं हजूर ! अधम ब्राह्मण ! पतित ब्राह्मण ! सच्चा ब्राह्मण क्या बनिये को गुरु मान सकता है ? और कायस्थ जॉटा तो हैं ही शूद्र ! बनिये को गुरु मान लें तो आश्चर्य क्या ? मगर अपने धर्मराज्य नेपाल मे ब्राह्मण और क्षत्रिय इन्हीं दोनो का साथ रहेगा प्रभु ! खैर, मोगलान के उन पापियो की चर्चा अब छोडना बकसा जाय प्रभु ! पापियो की चर्चा से भी पाप लगता है ! मगर मुझे गर्व है कि प्रभु ने इस पामर को महर्षि चाणक्य की सतान कहना बकसा ! इस प्रशसा को अपने प्रभु का प्रसाद मानकर श्रद्धा से स्वीकार करूँगा जरूर ! और महर्षि चाणक्य ने अपने चन्द्रगुप्त के लिए क्या-क्या नहीं किया प्रभु ? चन्द्रगुप्त की गद्दी के आधे हकदार पर्वतराज को विषकन्या के रूप-जादू मे फँसवाकर मरवा ही दिया ! राजनीति मे इसे दोष नहीं माना जा सकता प्रभु ! आखिर नेपाल के प्रथम राणा प्रधानमन्त्री श्रीजंगबहादुर ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए क्या-क्या नही किया ? अपने पितातुल्य मामा जनरल माथवर सिह की धोखे से हत्या कर दी ! धोखे से ही जनरल गगन सिंह को मारा ! और धोखे से ही नेपाल के सारे 'भारदारो' (सामन्तो) को एक जगह जमा करके कत्ले-आम करा दिया ! और धोखे से ही जगबहादुर के भतीजे श्रीवीर शमशेर ने जगबहादुर के छोरों को पार-घाट लगाकर और अपने सगे चाचा श्रीरणउद्दीप सिंह की हत्या करके गद्दी हासिल की ! और हमारे आज के परम पूज्य तीन

सरकार महाराज चद्र शमशेर भी अपने देवता-स्वरूप बडे भाई श्रीदेव शमशेर को धोखे से ही तो कैद करके नेपाल की गद्दी पर बैठ सके? और आज भी इस गद्दी के लिए इन बड़े लोगों मे आपस मे धोखा-धड़ी चल ही रही है? चलती रहेगी भी! उसी प्रकार येन-केन प्रकारेण हमे भी अपने स्वार्थ को सिद्ध करना ही चाहिए प्रभु! ब्राह्मण की बुद्धि और क्षत्रिय का पौरुष यदि एक साथ मिलकर काम करें तो कोई भी ऐसा काम नही जो सफल न हो सके प्रभु! हमाल से बदला लेने का ऐसा सुनहला मौका हमे खोना न चाहिए हजूर!"

"तो पानी का मुद्दा उसपर झट दायर करा दिया जाय? क्यो बाजे?"—राजा ने विजय मे विश्वस्त होकर पूछा उससे।

"नही प्रभु!"—जयशकर ने राजा के उतावले मन पर रोक लगाते हुए कहा—"अभी नहीं! अभी तो 'खून का मुद्दा' ही काफी होगा! शैतान ने अड्डे के 'विचारी' से झूठी सूचना लिखवाकर उस खून हुए परिवार के ही एक गरीब गुप्तबहादुर को फँसा दिया है! उस गरीब 'मगर' ने हजूर के हजूर मे सब कुछ अरज किया ही होगा? सो, यह तो बड़े पुण्य का काम होगा प्रभु, अगर हजूर उस गरीब गुप्तबहादुर को बलि का बकरा बनने से बचा ले! अगर हम दुनियादारी मे कुछ पाप करते हैं तो उसके निवारण के लिए कुछ पुण्य भी करना ही चाहिए हमे! उस गरीब का उद्धार भी होगा और शैतान हमाल को अपने पाप का दड भी मिलेगा! और हमारे होगे 'एक पंथ दो काज'! इहलोक का काज भी, परलोक का भी! मेरी सलाह है प्रभु, कि जिल्ला-अड्डा मे खून के इस मुद्दे को अभी झटपट दायर करा दिया जाय! 'बडे हाकिमज्यू' (जिलाधीश) हजूर के अपने आदमी हैं! रिश्तेदार हैं! काम बनते तनिक भी देर न लगेगी!"

लेकिन राजा को यह सलाह जैसे जँची नहीं। सामन्ती संस्कृति मे जाति के श्रेष्ठत्व का अहंकार सभी अहंकारों में श्रेष्ठ होता ही है। और इसी श्रेष्ठत्व के अहकार में महेन्द्र हमाल ने कभी राजा का घोर

अपमान किया था। सो, राजा के लिए 'पानी का मुद्दा' खून के मुद्दे से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था। अपने अपमान का बदला लेने का सर्वश्रेष्ठ साधन!

"क्यों बाजे?"—तनिक असंतोष और आश्चर्य के स्वर मे पूछा उसने—"पहले पानी का मुद्दा दायर कराने मे क्या हर्ज है अभी?"

"अभी तो इस ब्राह्मण की बुद्धि मे ही विश्वास बकसा जाय प्रभु! 'पानी का मुद्दा' हमारा सबसे बड़ा हथियार है हजूर! अर्जुन के 'पाशुपत' अस्त्र की तरह! चतुर योद्धा अपने सबसे बड़े हथियार को शुरू-शुरू मे ही इस्तेमाल नही कर बैठता यदि छोटे हथियार से ही विजय मिलने की पूरी उमीद हो प्रभु! प्रभु का स्वार्थ भी इसी मे है! जिम्वाल को पानी के मुद्दे के जरिये जाति से पतित कराकर एक पतित की पुत्री को इस महल मे हम कैसे ला सकेंगे प्रभु? अभी सब कुछ खोलकर मै नही बताना चाहता! अभी बिन्ती केवल यह है कि सारकी दिलबहादुर पर उसके परिवार-सहित खूब कड़ी निगरानी बकसी जाय ताकि बीच मे शैतान हमाल कोई गड़बड न कर जाय! सारकी की झोपड़ी पर एक सिपाही का दिन-रात का पहरा बैठा दिया जाय हजूर! और यहाँ से जिल्ला-अड्डा तो नजदीक ही है प्रभु! बडा हाकिमज्यू के नाम खत लिखकर आज ही खून का मुद्दा दायर कराकर कल 'मियाद-सम्मन' (वारट) भेजवा दे हमाल के पास।" फिर हाथ जोड उठ खड़े होने का उपक्रम करते हुए—"और अब इस दास को जल्दी बिदा का हुकुम बकसा जाय प्रभु!"

राजा की समझ मे बात आ गई। हमाल की वह सुंदरी तरुणी पुत्री उस कामुक के लिए कहीं अधिक मूल्यवान थी। उसे एक पतित की पुत्री के रूप मे वह कैसे पा सकता भला? सुंदरी-रत्नों की प्राप्ति के निमित्त बड़े-बड़े सम्राटो ने भी सब कुछ दाव पर लगाया था! सब कुछ बर्दाश्त किया था। अपने स्वार्थ के सबल साधन जयशकर पर वह मन-ही-मन खूब रीझ चला।

"आज रात यहीं रह न जाओ बाजे !"—उसे सस्नेह निमंत्रित करते हुए वह बोला—"आज खास ढग से 'मृग' का मॉसू बनवाऊँगा तुम्हारे लिए !"

"सो तो सब कुछ प्रभु का ही दिया खाता हूँ !"—मुखिया ने कृतज्ञता से हाथ जोड़ निवेदन किया—"प्रभु का पवित्र प्रसाद न त्यागने की इच्छा रहते हुए भी प्रभु का ही स्वार्थ अभी चाबुक मार रहा है झट घर पहुँचने के लिए !"

"अच्छा तो अपना भाग साथ लिये जाओ ! नेपाल से वापस आते समय अपने 'मधेस' (तराई) के जगल मे दो-चार मारे थे। घर मे बनवाकर खा लेना ! "काछी ! ! ! !"

केटी झट हाजिर हुई। आदेश 'बकसा' गया—"मृग के मॉसू में से मुख्या बाजे का भाग तो ला दे ! खास पुट्ठा ! 'अलिगता' (तनिक) 'ठूलो' (बडा) !"

बात-की-बात में मुख्या बाजे का भाग वहाँ आ पहुँचा। आग मे भूनकर सुखाया हुआ हिरन के पुट्ठे का एक काफी बड़ा टुकड़ा ! और अतिशय आदर से मांस के उस टुकडे को पहुँचाने के लिए ही एक सिपाही भी साथ कर दिया गया। जयशंकर ने घोड़ी की पीठ पर सवार हो उसे ऐसी 'ऍड़' लगाई कि एकाएक उसका सारा आलस्य दूर हो गया। घोड़ी दौड़ चली और उसके पीछे-पीछे उस पशु की ही तरह दौड़ने लगा वह सिपाही !

(१३)

जयशंकर ने दो मोर्चे फतह कर लिये। अब उसने तीसरे पर ध्यान दिया। तीसरा मोर्चा स्वयं उसके घर का था। और प्रतिद्वन्द्वी था स्वय उसका भाई हरिशंकर। पहले दो मोर्चे काफी मजबूत थे, पर इस तीसरे मे मजबूती न थी। बुद्धि-वैभव का कोई बल न था। जैसे अक्ल के शेर की चपेट मे पड़ा हुआ समाज के जंगल का एक तुच्छ

जन्तु ! बुद्धि का बैल ! अतः इसे फतह करना उसके बॉये हाथ का खेल था । मामूली खेल ! जाने कितने ऐसे मोर्चे वह बात-की-बात में जीत चुका था । अतः अपनी विजय मे उसे रत्ती भर भी शंका या सदेह न था । बलि की वेदी पर खडे एक बकरे के लिए खुकुरी का एक हलका हाथ ही पर्याप्त !

सो, उसने हरिशकर की मॉ को अकेले में बुलाया। जैसे बगुला शनैः शनैः मछली की ओर कदम बढ़ाता है, उसी प्रकार इधर-उधर की भूमिका बॉधकर आहिस्ते से वह बोला—"कांछी आमॉ ! इस ओर पैर बढ़ाने से पहले 'साइला' को जरा आगा-पीछा तो सोच लेना चाहिए था ? माना कि वह उमर का अभी कच्चा है ! नाबालिग है ! मगर बिलकुल नाबालिग तो नहीं ? हमारा घराना इज्जतदार है ! वह बडे बाप का बेटा है ! उसके पास जमीन है, जायदाद है ! घर मे खाने-पीने का कोई टोटा नहीं ! तो उसके लिए क्या 'बेउली' (दुलहिन) की ऐसी कमी थी कि वह जिम्वाल की एक विधवा ल्याइता को भगा ले आया ?"

"जेठा !"—कांछी आमॉ ने दुख-भरे स्वर मे जवाब दिया—"क्या बताऊँ तुमसे ! मेरा तो करम फूट गया ! उसके चलते तो मेरे मायके का भी सतियानास हो गया !"—कहते-कहते उसकी ऑखों से ऑसुओं की कई बूँदें ढुलक पड़ी।

उसके ऑसुओं से मानो एकाएक पसीजकर जयशंकर बोल उठा—"तुम रोओ मत काछी आमॉ ! तुम्हारे मायके के खून का बदला मै चुकाके रहूँगा ! आखिर धर्म से वह मेरे मामा का ही तो घर ठहरा ? तो क्या जयशंकर इतना हींजड़ा है कांछी आमॉ, कि वह बिना बदला लिये ही रह जाय ?"—कहते-कहते अपने चेहरे पर उसने एकाएक क्रोध का नाट्य भी किया।

और काछी आमॉ मन-ही-मन संतुष्ट हो उठीं। जैसे पछी के पॉव अनजाने ही बहेलिये के जाल में उलझने लगे। 'धलेक' में ऑखे पोंछ-

कर स्नेह-भरे स्वर मे वह बोली—"जेठा ! अगर घर मे एक काबिल होता है तो सारे घर का उसपर आसा और भरोसा रहता है ! परो-पट्टा के लोग तुमसे आसा रखते हैं ! और मै तो धरम से तुम्हारी आमाँ हूँ ! तुमपर आसा रखती हूँ, भरोसा रखती हूँ ! मेरे मायके के सतियानास का अगर बदला तुम चुका सको जेठा, तो मेरे लिए तुमसे बढ़कर इस दुनिया मे कौन होगा ? तब मै तुम्हे भगवान से कम नही मानूँगी नानी !"—कहते-कहते पुनः उसकी आँखें आँसुओ से तर हो उठी। और श्रद्धा-भक्ति के आवेश मे उसने जयशंकर के पैर भी छू लिये।

"हँह् ! काछी आमाँ ! यह क्या करती हो तुम ?"—कहते हुए उसने झट अपने पैर पीछे कर लिये। मानो कोई जंगली हिंस्र जन्तु अपने पैर पीछे करके पूरी सतर्कता से शिकार पर झपटना चाह रहा हो !

और कांछी आमाँ सौतेले ब्राह्मण पुत्र के इस विनय पर और भी रीझकर विनय-भरे स्वर मे बोलीं—"तो हरज क्या है जेठा ? तुम बाहुन हो ! बाहुनी के पेट के हो ! मेरे गुरु हो ! गुरु के पैर छूने मे कोई पाप तो नहीं ?"

"मगर तुम मेरी आमाँ हो न ? खैर !"—इतना कहकर बहेलिये ने जाल को जैसे खूब चतुराई से फैलाना शुरू किया—"काछी आमाँ, बखत आने पर मै बदला जरूर चुकाऊँगा उस शैतान से ! खून का बदला खून होगा ! तुम विश्वास रखो ! मगर एक बात बताऊँ तुमसे ! आखिर वह जिम्वाल है ! लक्ष्मी की उसपर कृपा है ! उसके हाथ पर चार पैसे हैं ! अड्डा-अदालत उसके हाथ में है ! खून उसने खुद कराया, मगर उलटे उस गरीब गुलबहादुर को उस मुद्दे मे फँसा दिया !" फिर एकाएक चिता का भाव दर्शाते हुए—"इतना ही नही काछी आमाँ ! मै आज अभी-अभी अड्डे से होकर आ रहा हूँ ! उस शैतान ने तो 'साइला' और 'बुहारी' (बहू) दोनो को ही चोरी के मुद्दे मे फँसा दिया है ! उसने अड्डे में लिखा दिया है कि करनास के हरिशंकर खत्री ने पूरे दो हजार के जेवर के साथ उसकी ब्याइता हेमा गुरुङसेनी को भगा

लिया है ! उसने तो पकड़ाई का 'मियाद सम्मन' (वारंट) भी जारी करा दिया है कांछी आमाँ !"

सुनते ही कांछी आमाँ के तो चेहरे का रग उड गया। मारे भय और आश्चर्य के आँखें फाड़कर घबड़ाये स्वर मे वह बोली—"ऐं ! दो हजार के जेवर की चोरी! इतना झूठ! हे भगवान! चलो जेठा ! तुम खुद अभी घर की तलासी ले लो ! खुद बुहारी को अपनी आँखों से देख लो ! अगर उसके बदन पर जिम्वाल का एक भी जेवर हो ! मेरे घर की रत्ती-रत्ती छान लो ! अगर जिम्वाल का कोई भी जेवर निकल आये ! ऐ ! इतना झूठ ! इतना अंधेर ! इतना अनियाय !"—कहते हुए वह एकाएक जयशकर का हाथ पकड़कर अपने घर की ओर उसे खींचने लगी।

लेकिन जयशकर ने हाथ छुड़ाते हुए उसे मना किया—"रहने दो काछी आमाँ ! भला अपने घर की तलाशी मै क्यों लूँ ? अगर उस पापी बेईमान के घर से अपने घर मे कुछ आ ही गया तो हरज क्या ? नुकसान क्या ? मगर···"

"नहीं जेठा, नहीं ! तुम्हारे मन मे भी पाप बस गया ! भगवान कसम, अगर मै झूठ बोलूँ ! चलो, तुम खुद देख लो ! अपने मन का पाप दूर कर लो !"—कहकर उसने फिर उसका हाथ खींचा।

लेकिन जयशकर ने फिर हाथ छुड़ाते हुए मीठे स्वर मे कहा—"घर मे जाने की जरूरत क्या काछी आमाँ ? क्या तुम्हारी बात पर मुझे विश्वास नहीं ? खैर ! छोड़ो अभी तलाशी की बात ! मगर बुहारी को समझा दो, कि अगर कुछ ले ही आई हो तो उसे खूब जतन से कहीं छिपा दे ! नहीं तो अड्डे का सिपाही आकर अगर घर की तलाशी लेगा, और कही कुछ निकल आया, तो बड़ा अनर्थ हो जायगा काछी आमाँ !"

"मै भगवान-कसम कहती हूँ जेठा ! साइला-कसम कहती हूँ ! मेरी बात पर विश्वास तो करो ! जरा घर मे चलकर खुद देख तो लो !"—कहकर वह पुनः उसका हाथ पकड़कर खींचने लगी।

"मैं तो खूब विश्वास करता हूँ कांछी आमॉ ! मगर नहीं मानती हो तो चलो ! एक बार जाकर देख ही लूँ !"—कहते हुए वह उसके घर की ओर चल पड़ा। जैसे बसी के कॉटे मे फॅसी हुई मछली अपनी मुक्ति की आकाक्षा से उसे खींच ले चली हो गहरे पानी की ओर !

अभी घडी भर रात से ज्यादा हुई न थी। हेमा घर के भीतर 'ताप्के' मे मकई भून रही थी, और हरिशंकर उसकी बगल मे बैठा हुआ फूल की थाली मे नमक-मिर्च के साथ भूनी हुई मकई खा रहा था, चबा रहा था। हेमा के हाथ के भूने एव ममत्वपूर्ण हृदय से परोसे हुए उन मकई के दानो में जैसे जीवन का सारा स्वाद समाया हुआ था। उस भयानक हत्या-कांड की स्मृति भी वे दोनो अभी भूल चले थे मानो। मानो आग से झुलसे हुए पौधो मे नई कोंपलें निकलने लग पडी थीं।

नये सिरे से भूने दानो को जबरन उसकी थाली में दुबारा रखती हुई हेमा स्नेहपूर्ण स्वर मे कह रही थी—"जरा और खाओ जी ! वही जो सवेरे जरा भात खाकर चले गये काम पर ! जरा सरीर का भी तो ख्याल रखा करो !"

हरिशकर ने भी स्निग्ध स्वर मे जवाब दिया—"और तुम भी तो वही कोदो की दो रोटियॉ खाकर लगी थी काम पर ? मेरा तो पेट अब भर चुका ! अब तुम खाओ, और मै परोसूँ !"

"क्या मेरे हाथ टूट गये कि तुम परोसो ?"

"और मेरे हाथ भी तो बरकरार हैं ?"

और हेमा ने तनिक हॅसकर जवाब दिया—"औरतों को मरद के हाथ से परोसा खाने पर दोश लगता है !"

"यह किस शास्तर में लिखा है भाई ?"—हरिशंकर ने भी हॅसकर सवाल किया।

"उस शास्तर को समझने की अकल तुममें नहीं है अभी ! अभी बच्चे हो !"—कहकर हेमा पुनः हॅस पड़ी।

"और तुम तो जैसे बुढ़िया हो चलीं ! क्यों ?"

"बुढ़िया तो हूँ ही ! आखिर बूढ़े की 'ल्याइता' जो रह चुकी हूँ ?"—कहकर वह फिर हँसी ।

"हेमा !"—हरिशकर ने इस बार बिना हँसे पूछा उससे—"जिम्वाल के घर तो तुम्हें खाने-पीने का बड़ा सुख रहा होगा ! मगर इस गरीब के घर तो···"

"चुप रहो !"—हेमा उसे एकाएक रोकती हुई बोली—"उस पापी का नाम न लो अब ! भगवान न करे किसी औरत को उसके घर मे पैर रखना पड़े !"—कहते-कहते उसका स्वर सहसा भारी हो उठा । आँखें भर उठीं । जैसे स्मृति की तेज हवा से टकराकर हृदय के जमे बादल अचानक बरसना चाह रहे हों !

इसी समय हरिशंकर की माँ के साथ जयशकर ने उस कमरे में प्रवेश किया। जैसे अचानक आँधी के प्रवेश ने पहले के बादलों को उड़ाकर आकाश को एकाएक नीरस बना दिया ! हेमा ने हड़बड़ाकर 'घलेक' मे अपने अश्रुभरे नेत्र पोंछ लिये । चूल्हे की धधकती हुई आग की रोशनी मे जयशंकर ने सबसे पहले हेमा का चेहरा देखा । रोशनी मे उस चेहरे की लाली और सौदर्य मे और भी निखार आ गया था । आँखों के दुखभरे आँसू उस सौदर्य को और भी गंभीर और मोहक बना रहे थे । जैसे आग की लपटों के सपर्क से सोने की प्रतिमा चमक रही हो ! जैसे ओस के कणो से भीगे फूल पर सूरज की किरणें बरस रही हो !

जयशंकर ने हेमा को कई बार देखा था, पर उसके चेहरे के इस अतुल सौंदर्य को उसने अब तक लक्ष्य किया न था । उस सौदर्य के जादू से जयशंकर की आँखें सहसा फैल गई । जैसे दमकती हुई बिजली के प्रकाश से उसकी आँखें चौंधिया उठी हों ! फिर सम्हलकर वह बगैर किसी बाधा-संकोच के कुछ क्षण उस चेहरे को घूरने लगा । और हेमा उसके आकस्मिक आगमन और लज्जाहीन चितवन पर एकाएक चौंककर अप्रतिभ हो उठी । अचानक सकुचित हो उसने 'घलेक' मे आँखे

छिपा लीं। फिर दूसरी ओर मुँह करके बैठी रही।

लेकिन हरिशकर की माँ घर मे पैठते ही बड़बड़ाने लगी—"अरी !!! अपने जेठाज्यू को बता तो, दिखा तो दे कि कितने हजार का जेवर चुराकर आई जिम्वाल के घर से ? खबर है तुम दोनो को ? अधरमिये ने तुम दोनों पर दो हजार के जेवर चुराकर ले भागने का 'मुद्दा' दायर कर दिया है ? हाय भगवान ! कैसी मुसीबत-पर-मुसीबत !"—कहकर कपार पीटकर वह स्वयं घर की एक-एक चीज को मारे क्रोध के उठा-उठाकर पटकने लगी। फेंकने लगी। दिखाने लगी। और अविराम बड़बडाने भी लगी—"देखो जेठा ! खुद देखो ! क्या ये भी जिम्वाल का है ?...क्या ये भी जिम्वाल का है ? जाकर कह दो अधरमिये से कि आकर जरा खुद देख जाय ! उसका जो कुछ हो यहाँ से खुद उठा ले जाय !..."

लेकिन हेमा और हरिशकर के तो काटो तो खून नहीं ! इस अशुभ समाचार के लिए वे अभी कतई तैयार न थे। सुनते ही चेहरा फक पड़ गया। जैसे खिला हुआ कमल अचानक जोर के पाले मे झुलस गया हो !

पर हरिशकर के हृदय से आतक और आश्चर्य का आकस्मिक भाव बहुत जल्द मिट गया। मानो दबी हुई आग नये सूखे इन्धन के सयोग से भभक उठी। अब वह एकाएक क्रोध और घृणा मे अधीर हो बोल उठा—"झूठा ! दगाबाज ! तो अब चोरी का मुद्दा दायर कर दिया है जाँटा ?...अच्छा तो मै देखता हूँ बदमाश जाँटा को !"—कहते हुए झट कमरे के कोने मे जाकर वह खुकुरी उतारकर ले आया। मारे क्रोध के थर-थर काँपते हाथ से उसे म्यान से निकालते हुए जयशकर से वह बोला—"दाज्यू ! अब मै चला उस जाँटा पापी की खबर लेने ! बदमाश जाँटा ने बहुतेरे खून किये हैं जिन्दगी में ! आज मै सबका बदला चुकाऊँगा ! सूद-मूर के साथ ! अपने मामा-मामी के खून का बदला भी !"—कहते हुए वह वायु-वेग से घर से निकल भी पड़ा।

हेमा इस अतर्कित दृश्य को देख एकाएक व्याकुल हो उठी।

हरिशंकर की माँ भी पिछले क्रोध को अचानक भूलकर बेचैन हो पड़ी।

"अरे, श्रो साइला !!! श्रो साइला !!! श्रो हरिये !!! श्रो नानी ी ी ी !"—कहती हुई अपने क्रोधोन्मत्त पुत्र के पीछे वह दौड़ भी पड़ी। हेमा भी अब घर मे बैठी न रह सकी। वह भी हरिशंकर के पीछे वायु-वेग से दौड चली। मानो हवा मे उडते अपने प्राणों के पीछे वह व्याकुल हो दौड़ पड़ी हो!

कुछ दूर आगे ही हरिशंकर उनकी पकड़ मे आ गया। लेकिन माँ और पत्नी की पकड़ से छूटने की कोशिश करते हुए क्रोध से छट-पटाते हुए वह बोला—"छोड़ो आमाँ! छोड़ो तुम लोग मुझे! उस पापी को दिन-दिन के पाप का डंड आज मैं देके रहूँगा! न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी! छोड़ दो मुझे! तुम्हें बड़ा पुन्न होगा आमाँ! छोड़ दो मुझे!..."

हरिशंकर विचित्र धातु का बना नौजवान ठहरा! रग-रग में सरलता थी! जगली लोगों की सरलता, जिसमे करुणा और क्रूरता की, विश्वास और अविश्वास की भावना बड़ी ही उद्दाम होती है। और आकस्मिक दुःसाहस की भी। जयशकर अपने भाई के इस सरल स्वभाव से परिचित होने के कारण ही बड़े इतमीनान से उसे अपने जाल मे फाँसने अभी पहुँचा था। लेकिन शिकार जाल में फँसकर भी जैसे जाल-सहित भाग चला हो! अतः हरिशंकर की माँ और हेमा के पीछे-पीछे जयशंकर भी दौड पड़ा था।

हरिशंकर की माँ उसे पूरी शक्ति से पकड़े हुए रो-रोकर बोलने लगी—"श्रो हरिये! क्या अब भी मन नहीं भरा तेरा? क्या सब तरह से मेरा सतियानास करके ही छोड़ेगा तू? मायके से हाथ धो बैठी! अब क्या बेटे से भी हाथ धोना पड़ेगा मुझे? हे भगवान! अब इस दुखिया पर दया तो करो! अब इसे और तो न सताओ!"—कहते-कहते वह बिलख-बिलखकर रोने भी लगी।

जयशंकर भी वहाँ आ पहुँचा था, और कुटुंब के कई दूसरे लोग भी।

हरिशंकर अब पूरी तरह उन सबकी कैद में पड गया। उसका आगे बढ़ना असंभव बन गया। अंत में हार मान उसे पीछे लौटना ही पडा। उसे खींचते हुए घर के भीतर लाकर जयशंकर ने दूसरों को वहाँ से झट अलग कर दिया।

लेकिन खूब तेज शराब पिये किसी शराबी की तरह हरिशकर क्रोध के नशे मे उन्मत्त हो बोलता ही रहा—"मुझे तुम लोग छोड़ो न दाज्यू! मैं उस पापी का बध किये बिना नहीं रहूँगा! जॉटा राच्छस है, राच्छस! पिसाच! राच्छस-पिसाच का बध करने में पाप क्या भला? जाने कितने घरो को उजाडकर बरबाद कर दिया है उसने! कितने घरो का झूठे मुद्दे मे फँसाकर सतियानास किया है बदमाश ने! अब मै उसे खतम करके रहूँगा! मै उसका सतियानास करके रहूँगा!"

"साइला!"—जयशकर ने दबे स्वर में इस बार डॉटा उसे—"पागल तो नहीं हो गया तू? होश तो सम्हाल! 'लाटा' (मूर्ख)! तुझे ख्याल नहीं कि उसे बरबाद करने से पहले तू खुद बरबाद हो जायगा? और साथ मे मुझे भी बरबाद करेगा तू? और सारे कुल-खूँट को भी?" फिर एकाएक जरा आहिस्ते से—"क्या तुझे पता नही कि वह कितना 'छट्टू' और पाजी है? उसने खुद चार-चार खून भी करवाए, और उस खून के मुद्दे मे फँसा दिया एक गरीब बेगुनाह को? ...लक्ष्मी की कृपा है उसपर! चार पैसे हैं उसके हाथ! सरकार का अड्डा-अदालत है उसके हाथ! तो तेरी यह खुकुरी भला क्या काम करेगी वहाँ?... देख साइला! धीरज रख तू! खून के मुद्दे मे फँसा हुआ वह गरीब बेगुनाह केवल तेरा ही नहीं, मेरा भो धर्म से मामा है! उन खून हुए चार लोगो मे तीन हमारे अपने लोग हैं! धर्म से वे मेरे भी मामा, मामी और ममेरा भाई थे! फिर जयशकर पत क्या इतना हीजड़ा और बेशरम है कि वह चुपचाप बैठा रह जाय! मै चुपचाप बैठा नही हूँ साइला! मै आज-कल दिन-रात इसी चिन्ता-फिकर के मारे परेशान हूँ कि किस उपाय से उस जॉटा जिम्बाल से बदला लिया जाय! मै

जरूर बदला लूँगा उस पापी से ! मगर अकल से बदला लूँगा ! दिमाग से बदला लूँगा ! उतावलेपन में कोई काम बनता नहीं बिगड़ता है साइला ! इसे ख्याल रख तू ! देख लेना तू ! अगर उसके सारे घर को मैं बरबाद न कर दूँ, खुद जिम्वाल को खून के मुद्दे में फँसाकर कटवा न डालूँ, तो जयशंकर का नाम बदल देना तू !"—कहते-कहते उसके चेहरे पर प्रतिशोध की नाटकीय उग्र भावना भी उभर उठी। और हरिशंकर कुछ आश्वस्त होकर शान्त हो गया। जैसे सरकस का कोई क्रुद्ध हिंस्र जन्तु कुशल मदारी के समक्ष झट शान्त हो जाता है।

जयशंकर ने फिर धीरे से कहा—"देख साइला ! उस पाजी जाँटा ने चोरी का मुद्दा तो तुझपर जरूर दायर किया है, मगर उसे मैं साबित क्या थोड़े ही होने दूँगा ? आज 'अड्डा' में जाने पर जब जिम्वाल की इस बदमाशी के बारे में मालूम हुआ, तो गुस्सा तो बहुत आया, मगर करूँ क्या ? समय पर गुस्से को पीना ही पड़ता है ! धीरज रखना ही पड़ता है ! और ऐसे लोगों की भी खुशामद करनी पड़ती है जिनसे बोलने में भी पाप लगे ! जिनकी ओर ताकने में भी घिन लगे ! मगर मजबूरी में सब कुछ करना पड़ता है साइला ! नौसिंदा, विचारी और डिट्ठा को बड़ी मुश्किल से मनाकर तुम दोनों की पकड़ाई का 'मियाद सम्मन' अभी रोकवा दिया है ! तुझे क्या मालूम ? मुझे तो रोज-रोज अड्डे से वास्ता पड़ता है भाई ! सबकी मान-मनौती करनी पड़ती है ! फूल-पत्ती (घूस-रिश्वत) चढ़ानी पड़ती है ! और देवता एक हो तो बात भी ! टहलुआ, सिपाही, नौसिंदा, बहीदार, राइटर, मुखिया, विचारी, डिट्ठा, खारदार—जाने कितने देवताओं की पूजा करनी पड़ती है वहाँ ! तब कहीं काम बन पाता है !"

हेमा, हरिशंकर और हरिशंकर की माँ भयभीत हो चुपचाप उसकी बातें सुनते रहे।

जयशंकर अब हरिशंकर की माँ को सम्बोधित करते हुए बोला—"कांछी आमाँ ! चिन्ता न करो ! मैं सब ठीक करा दूँगा !" फिर एक

बार हेमा को तिरछी आँखो से देखकर उत्साहभरे स्वर में—"अपने घर मे ऐसी लक्ष्मी-जैसी 'बुहारी' आ गई ! दिल उदास न करो ! ऐसी लक्ष्मी के लिए हजार-पाँच सौ अगर खरचना भी पडे तो हिम्मत न हारो ! लोग इज्जत बचाये रखने के लिए क्या-क्या नहीं करते ? तुमने 'जन्ती' (बरात) नहीं साजी ! ब्याह का भोज-भात भी नही दिया ! समझ लो कि ब्याह में खर्चा न किया, अड्डा-अदालत में दे दिया ! आखिर अपनी लक्ष्मी बुहारी के लिए हमें कुछ दड भी देना पड़े तो दुख न करना चाहिए ! किसी दुर्लभ चीज को पाकर उसे अपने पास जोगाये रखने की खातिर कुछ तकलीफ तो उठानी ही पड़ती है कांछी आमाँ ! मगर इस तकलीफ में भी एक तरह का सुख ही मिलता है, जैसे अपने बच्चे को पालने और पोसने मे !"

हेमा अपनी प्रशसा पर जरा मन-ही-मन खुश हुई। हरिशंकर का मन भी गर्वान्वित हुआ। और हरिशंकर की माँ भी अपने क्रोध को बहुत कुछ भूल चली। मगर पैसे का नाम सुनकर वह घबड़ा भी उठी। घबड़ाये स्वर में बोल उठी—"मगर पइसा कहाँ है जेठा ? हजार-पाँच सौ की बात तो दूर, अभी तो पास मे एक 'रुपइयाँ' भी नहीं ?"

और जयशंकर ने झट एक चतुर महाजन की तरह उसे दिलासा देते हुए चग पर चढ़ाने के लिए हवा फूँकी—"दिल छोटा न करो कांछी आमाँ ! तुम्हारे पास अभी न सही, मैं तो मौजूद हूँ ? मैं ही कोई इन्तजाम कर दूँगा ! 'सापट'[1]-कर्जा' से ही अभी काम चला लो ! फिर बाद में मुझे देते रहना ! चोरी के मुद्दे में फँसकर अगर इज्जत ही चली गई तो जमीन-जायदाद आखिर रखोगी किस दिन के लिए ? हमारे घर की इज्जत इतनी सस्ती तो नहीं कांछी आमाँ ?"

कांछी आमाँ चुप रही। हेमा और हरिशकर भी बकर-बकर उसका मुँह ताकने लगे।

---

१. सापट = उधार।

लेकिन अब जयशंकर ने झट उठ खड़े होकर आखरी मौका देने के लहजे में कहा—"रात भर का समय और है कांछी आमाॅ ! इस बीच तुम लोग आपस में विचार कर लो ! और कल बिहान होते ही मुझे खबर दे दो ! क्योंकि कल तक का ही वादा मैं उन लोगों से करके आया हूॅ ! कल 'भात' (खाना) खाकर मुझे अड्डा मे फिर जाना है ! अभी तो मैं चल रहा हूॅ ! भात खाने का बखत हो गया ! आज दिन भर कुछ खाया नहीं !"—कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

कांछी आमाॅ तनिक निराशाभरे स्वर में उसे रोकते और निहोरा करते हुए बोलीं—"जेठा ! रुपइयाॅ तो कम नहीं ? इतना रुपइयाँ सापट-कर्जा लेकर भी चुकाया कैसे जायगा ? इतने में तो साइला की सारी जायदाद ही बिक जायगी ?...तो बताओ न, कम-से-कम कितने में काम निकलेगा ?"

और जयशंकर ने दो-टूक जवाब दिया—"पाॅच सौ से कम में काम नहीं निकलने का कांछी आमाॅ ! रात भर सोचो तुम लोग ! और कल बिहान होते ही मुझे खबर दो ! अब मुझे विदा दो !"—इतना कहकर वह झट उस घर से निकलकर अपने घर की ओर चल पड़ा। जैसे व्याधा शिकार की चिड़ियों को पिंजड़े में बन्दकर अब सुख की नींद लेने चल पड़ा हो !

रात भर तीनों में विचार-विमर्श चलता रहा। हेमा अपने बाप के दिये हुए गहने उतारने को तैयार थी। लेकिन सास ने मना किया—"रहने दे बुहारी ! ये कुछ जेवर तेरे सरीर की सोभा हैं ! अभी सापट-कर्जा से ही काम चला ले ! फिर देखा जायगा !"

और दूसरे दिन सवेरे हरिशंकर अपनी माॅ के साथ जयशंकर के पास पहुॅचा। पाँच सौ रुपये के सादा तमस्सुक पर अॅगूठे का निशान उसने बना दिया। लेकिन रुपये जयशंकर के पास ही रहे।

जिम्मावाल महेन्द्र हमाल मुखिया जयशकर को गहरी रकम थमाकर भी मारे चिंता के परेशान था। आँखो से नीद रूठ चली थी। आतक की आग मे उदर की आग भी जैसे राख बन चुकी थी। वह यों आतकित और प्रकम्पित हो चला था जैसे उसके हरे-भरे उपवन को दुर्दैव का अचानक-उठा तूफान उजाड रहा हो! जैसे कोई किसान अपने हरे-भरे खेतो पर टिड्डियो के दल के टूट पड़ने पर परेशान हो चला हो! जैसे कोई व्यापारी अपने भरे-पूरे गोदाम मे आग की उठ-चली लपलपाती लपटे देख-देखकर निष्प्राण बन चला हो! मन-ही-मन वह हेमा को शापों और अभिशापो के अग्नि-बाणो से जलाये जा रहा था। लेकिन बजाय हेमा के वह स्वय उन अभिशापों की आग मे जला जा रहा था। पलंग पर निरुपाय हो पड़ा हुआ वह मन-ही-मन अभिशापो के अग्नि-बाण छोड़ते हुए बोल रहा था—"ओ राक्षसी! किस कुलग्न मे तूने मेरे घर मे प्रवेश किया! किस कुलग्न मे मैने तेरा मुँह देखा! यदि जानता होता कि सोने के घड़े मे सर्वनाशी जहर भरा हुआ है तो तेरे सुन्दर-बने मुँह पर मै थूक न देता! तेरे मुँह पर कालिख पोतकर कुरूप न बना देता! ओ राक्षसी! ओ पापिनी! मुझे सत्यानास के मुँह मे धकेलकर भाग चली अपने यार के साथ! लेकिन तेरा भी सत्यानास होकर रहेगा राक्षसी! तू सुख से अपने यार के साथ न रह सकेगी, न रह सकेगी पापिनी! बदला लेकर छोड़ूँगा! बदला लेकर रहूँगा!..."

फिर वह प्रतिशोध के उपायो पर सोचने के आवेश मे पलंग पर उठकर बैठ गया। दाँत पीस-पीसकर मन-ही-मन बोलने लगा—"मुझे बेवकूफ बनाने की खातिर ही मेरे घर मे तू आई थी न? समझ गया बदमाश, तेरी चाल को! तेरी चालाकी को! बाप के तमस्सुक का कागज फड़वा लिया! उसे फिर से जात-बिरादर मे शामिल भी करवा

लिया! और दिलबहादुर को पिटवाकर भगवा भी दिया! और सारा काम निकाल लेने के बाद मेरे मुँह पर लात मारकर भाग चली अपने यार के साथ! धूर्त औरत!"

लेकिन दिलबहादुर की याद आते ही अब उसका मन हेमा को छोड़कर उस 'सारकी' पर बरस पड़ा—"नीच! छोटी जात! मेरे नमक का ख्याल भी तो किया होता बेईमान! नमकहराम! वर्षों तक परिवार-सहित तुझे पाला-पोसा! उसकी यह सजा! कहीं भी जाकर मेरे नमक का ख्याल तो किये होता बदमाश! अब तू मुझसे बदला लेने चला है नीच! अपने बेटे को मेरा बेटा साबित कराकर मेरी जाति लेने चला है पापी! मेरी धन-सपत्ति में हकदार बनने चला है हरामखोर! मेरा धन और धर्म एक साथ नाश करने पर उँतर आया है कृतघ्न! निर्लज्ज! नीच कीड़े!"

लेकिन अभिशापो की वर्षा के बावजूद उसके हृदय पर शीतलता की कोई बूँद न पड़ सकी। और आश्चर्य कि दूसरो के अपराधों की सूची का पारायण करके भी अपने निज के अपराधों पर उसकी दृष्टि कतई न जा सकी! क्रूरताओ का पुजारी अब भी क्रूरताओ मे आस्था न खो सका! अपनी क्रूरताओं को पहचान न सका! याद न कर सका! जैसे कोई नर-भक्षी व्याघ्र अचानक किसी कुशल शिकारी के हाथ मे पड़कर, पिंजरे मे बंद किया जाकर भाग निकलना चाह रहा हो; पर पिजरे की मजबूत सलाखों को तोड़ सकने मे असमर्थ होकर उछल-कूद मचा रहा हो! धूर्तराज जयशकर के षड्यंत्र के सबल पिजरे में पड़कर वैसी ही दशा अब जिम्मावाल की भी हो चली थी। उसकी बुद्धि जैसे पूरी तरह जवाब दे चुकी थी। उन सलाखों मे से निकल भागने का कोई मार्ग उसे दिखाई न दे रहा था। क्योंकि सारकी का वह शिशु उसी के वीर्य की करामात है इस तथ्य को वह अच्छी तरह जानता भी था, और उसके चेहरे पर अकित इस जीवन्त तथ्य को स्वयं परख भी चुका था। लेकिन आश्चर्य कि इस तथ्य और सत्य को न वह समझना

चाह रहा था और न स्वीकार करना चाह रहा था कि—दलितों के भी दिल होता है ! और उस दिल मे भी भावनाओं का स्पन्दन हुआ करता है ! और उस सारकी के मन में भी प्रतिशोध की भावना पैदा हो सकती है ! और प्रतिशोध का मौका पाकर न वह चूक सकती है ! और अभी शरणदाता राजा हरिबहादुर के भय की तलवार उस अभागे सारकी से उसी प्रकार चाहे जो कुछ करा सकती है जिस प्रकार स्वयं जिम्मावाल का भय उससे वह कुकृत्य करा चुका था !

अब उसका हृदय निरुपायता के आधिक्य में रो भी पड़ा । उसकी आँखो में आँसू भर आये । वह निराशा के आधिक्य में जैसे थककर पलग पर फिर लेट गया । अब एकाएक राजा हरिबहादुर शाह का चेहरा उसकी आँखों में उभर आया। जैसे सरकस का कठोर मदारी धूर्त अड़ियल हिंस्र जन्तु के समक्ष हाथ मे मजबूत चाबुक थामे खड़ा हो ! और उस मदारी के चेहरे पर व्यग की तीखी हँसी थी। प्रतिशोध-भावना की क्रूरता थी । अब वह राजा को उद्देश कर मन-ही-मन बोलने लगा—"राजा ! तेरा भला न होगा ! मैने तेरा कुछ बिगाड़ा नहीं ! तेरे राज मे कभी कोई दखल दिया नहीं ! कभी कोई उत्पात किया नहीं ! फिर क्यो एक सारकी से मेरा धन और धर्म दोनों छिनवाना चाहता है ? इस तरह मेरा क्यों सत्यानास करना चाह रहा है ? अगर जूते ही मारना हो तो खुद आकर मेरे सिर पर जूते मार जा ! बर्दाश्त कर लूँगा ! कुछ भी हो, तुम ठकुरी हो ! राजा हो ! मगर सरे-आम एक नीच सारकी से तो इस तरह जूते न मरवाओ ! इस तरह मेरा सर्वनाश तो न कराओ !"—कहते-कहते उसकी आँखों मे खूब वेग से आँसू उभर आये ।

वह बार-बार मुखिया जयशंकर को याद करने लगा । उसके वचन और आश्वासन को याद करने लगा । लेकिन विश्वास और अविश्वास एवं आशा और निराशा के पाटो में मन उसका पिसता रहा । वह राजा का अनेक बार अपमान करके उसकी शत्रुता मोल ले चुका था । और जयशंकर ठहरा राजा का पुश्तैनी सेवक ! क्या वह राजा के

विरुद्ध उसके शत्रु जिम्मावाल का साथ दे सकेगा? अपने प्रयास में वह सफल हो सकेगा? क्या वह वचन के प्रति ईमानदार बना रह सकेगा? अथवा क्या पता कि वह धूर्त, जिम्मावाल से गहरी रकम ऐंठ-कर भी उसे अन्त में धोखा ही दे? उसे दोहरा मूर्ख बना दे? इस प्रकार के अनेक तर्क-वितर्कों से अपराध-अविश्वास से बोझिल उसका हृदय भय और आतंक से विमूढ़ हो चला था।

दिन के दो पहर का समय था। जिम्मावाल ने किसी तरह अपना मुँह जूठा कर लिया था। लेकिन घर की स्त्रियों का भोजन अभी हुआ न था। नेपाली प्रथा के अनुसार उच्च जाति की स्त्रियाँ प्रतिदिन पति का चरणोदक लिये बिना भोजन नहीं करतीं। और विशेषकर ब्याहता स्त्रियाँ तो और भी नहीं! सो, जिम्मावाल की जेठी ब्याहता पत्नी इसी समय पति का 'पाँउ को जल' (चरणोदक) लेने उसके कमरे में पहुँची। पति को अन्य-मनस्क भाव से पलंग पर मुँह छिपाये लेटे देख उसने आज्ञा नहीं माँगी। नित्य की आदत के अनुसार उसने पलग के किनारे पति के लटकते दाँये पैर के अँगूठे को तोलाभर पानी से धोकर चुपचाप उसे पी लिया। लेकिन पानी का स्पर्श होते ही जिम्मावाल जैसे चौंक उठा।

"हुँह!"—एकाएक मानो होश में आकर वह चिढ़कर पत्नी को फटकारते हुए बोला—"पेट मे आग लगी है सबके! बिना खाये एक दिन भी रहा नहीं जाता!"

लेकिन पति के 'पाँउ को जल' की ही तरह पति की फटकार को भी चुपचाप पीकर वह साध्वी वृद्धा कमरे से निकलकर रसोई-घर की ओर जा बढ़ी। उसी क्षण रसोइया धर्मराज बाजे ने कमरे में प्रविष्ट हो मुखिया जयशंकर बाजे के आगमन की शुभ-सूचना पेश की। जिम्मावाल का मन मुसीबत के अथाह सागर में डूब रहा था। मुखिया के आगमन को इस समय तिनके का सहारा मानकर वह झट पलग पर उठ बैठा।

"बुला ले आओ बाहुन! उसे यहीं बुला ले आओ!"—यह

आदेश देकर बड़ी उत्सुकता से उसके आगमन का इंतजार वह करने लगा।

मुखिया कमरे मे प्रविष्ट हुआ। विनय से झुककर जुड़े हाथो को उलीचते हुए 'स्वस्ति' कहकर उसने जिम्मावाल को आशीर्वाद दिया। और जिम्मावाल ने भी आज खूब विनय से दोनो हाथ जोड़ उसे प्रणाम निवेदन किया।

मुखिया के मन का शैतान मन-ही-मन मुसकरा पड़ा। नीचे बिछे कंबल पर विनयपूर्वक मुखिया को बैठने का उपक्रम करते देख जिम्मावाल झट उठकर बड़े आदर से उसका हाथ पकड़कर पलग की ओर खीचते हुए बोला—"यहाँ बैठिये मुख्याज्यू! यहाँ! आप मेरे गुरु हैं! गुरु का नीचे बैठना उचित तो नही!"

और तब मुखिया ने भी स्वर मे चापलूसी भरकर अतिशय विनय-भाव दर्शाया—"ब्राह्मण तो ब्रह्मा की सन्तान हैं प्रभु, और क्षत्रिय साक्षात् विष्णु भगवान की! विष्णु भगवान सभी देवताओ मे श्रेष्ठ हैं हजूर! इसलिए उनकी सतान भी सभी मनुष्यो मे, सभी जातियो मे श्रेष्ठ है! इसलिए मेरी तो नीचे बैठने में ही शोभा है जिम्वालज्यू!"

जिम्मावाल मन-ही-मन खुश होकर बोला—"मगर ब्रह्मा तो सबको पैदा करने वाले पिता हैं न? सबके पितामह! ऊपर ही बैठिए मुख्याज्यू! ऊपर ही!"

और मुखिया ने भी मन-ही-मन मुसकाते हुए उसके आग्रह को टाल न सकने का नाट्य किया। आज इस दुर्लभ सत्कार को सिर-आँखो पर उठा पलग पर ही उसकी बगल में वह बैठ गया।

"कांछी ी ी! ओ ी ी काछी ी ी ी!"

और पति की परमोदात्त पुकार पर झट कांछी कमरे मे प्रविष्ट हुई।

जिम्मावाल ने झट आदेश दिया—"मुख्या बाजे के लिए चिलम तो भर ले आ! और हाँ, उस तमाकू में से कांछी, जिसे मै कभी-कभी

खुद पिया करता हूँ !"

पतिदेव के आदेश पर कांछो के कमरे से झट पैर बढ़ाते ही मानो कुछ यादकर उसे रोककर वह फिर बोला—"अरी नहीं ! चिलम बाद मे लाना ! अभी वह चुरट का डब्बा तो मुख्या बाजे की सेवा में हाजिर कर जिसे मैं काशीजी से इनके लिए ही साथ लाया था !"

पति की आज्ञा का झट पालन हुआ। कांछी कमरे के सदूक में से डब्बा निकाल ले आई। कांछी के हाथ से पूरा डब्बा लेकर स्वय उसे मुखिया की ओर बढ़ाते हुए अत्यंत आदर-भरे स्वर में वह बोला—"यह आपकी सौगात रखी हुई थी मुख्याज्यू ! समय पर याद ही नहीं रहा कि पेश करूं !"

जिम्मावाल के लिए चिलम भरकर आ गई थी। स्वयं डब्बे में से एक सिगरेट निकालकर चिलम की आग मे सुलगाकर उसे मुखिया के हाथ मे थमाते हुए अपनी सौगात की प्रशंसा मे वह फिर बोला—"जरा देखिए तो ! कैसी सुगध है इस चुरट के धुएँ मे मुख्याज्यू ! अभी ही सारा कमरा गमक उठा ! पीजिए ! पीकर देखिए कि मै झूठ-मूठ की तारीफ तो नही कर रहा !"

और मुखिया तो सिगरेट का एक कश लेते ही प्रशसा के पुल बाँधते बोल उठा—"भला आप कभी किसी चीज की झूठ-मूठ तारीफ करेंगे हजूर ! राजा हरिबहादुर शाह के दिये चुरट भी कई बार पी चुका हूँ, मगर सच कहता हूँ कि इसके एक ही दम मे वो स्वाद आ गया कि सारा पिछला स्वाद ही भूल गया !" फिर एकाएक जिम्मावाल के चेहरे को देखकर हमदर्दीभरे स्वर मे उसने जिज्ञासा भी की—"इस बीच आप बीमार ता नहीं रहे जिम्वालज्यू ? चेहरा बहुत गिरा हुआ दीख रहा है हजूर का ?"

और जिम्मावाल ने उलहने के स्वर में जवाब दिया—"सब कुछ जान-बूझकर भी आप यह क्या पूछ रहे हैं मुख्याज्यू ? मेरी बीमारी की बात पूछ रहें हैं आप ? अरे, इस बीमारो से तो लाख दरजे अच्छा

होता कि महेन्द्र हमाल मर ही जाता ! और आप खुद उसकी लाश को उठवाकर फेंकवा देते ! या जलवा देते !" फिर एकाएक आँखों मे आँसू भरकर—"अपने राजा साहेब से कहो न मुख्याज्यू, कि इस तरह मुझे बेमौत मारने के बजाय वे खुद मुझे गोली मार दें ! खुद यहाँ आकर अपने हाथो मेरे सिर पर दस जूते लगा लें ! मगर सरेआम एक नीच सारकी से जूते तो न लगवाएँ ! मुझे इस तरह बेमौत तो न मरवाएँ ! आखिर मै उन्हीं की जात-बिरादर का हूँ ! इस तरह मेरी इज्जत बरबाद करवाने से उन्हें क्या लाभ होगा ? क्या फायदा होगा ? मै उनके राज मे न सही, मगर मै तो उन्हे अपना राजा ही मानता हूँ ! भगवान जानते हैं कि नेपाल के 'पाँच सरकार' और 'तीन सरकार' के बाद मै उन्हे ही अपना सबसे अधिक पूज्य मानता हूँ !"

मुखिया ने सिगरेट का एक कश लेकर मुँह से धुआँ उड़ाते हुए आश्वासन-भरे स्वर मे जवाब दिया—"आप तो नाहक परेशान हो रहे हैं जिम्वालज्यू ! अरे, आपने मुझपर विश्वास किया, भरोसा बकसा, तो जयशकर पंत यों ही तो बैठा नहीं रहा अब तक ? मेरे रहते भी अगर आपकी जाति चली ही गई, सरेआम आपकी इज्जत बरबाद कर दी ही गई, तो धिक्कार है मुझे और हमारी आपस की इस दोस्ती को !"

जिम्मावाल एकाएक बहुत कुछ आश्वस्त होकर बोला—"सो ही तो ! सो ही तो मुख्या बाजे ! सच कहता हूँ मुख्याज्यू, अगर आपका भरोसा न होता तो मै कब का इस दुनिया से कूच कर चुका होता ! इस मुसीबत से तो मरण कही लाख-गुना अच्छा ! मगर मैं तो केवल आपपर भरोसा रखकर अब तक जी रहा हूँ ! धीरज, धर्म, मित्र और नारी की असली परीक्षा तो विपत्ति के समय ही होती है मुख्या बाजे ! आप मेरे सच्चे मित्र हैं ! और सच्चा मित्र साक्षात् भगवान का ही रूप होता है मुख्याज्यू ! अपने मित्र-रूपी भगवान पर विश्वास करके ही मै अब तक जिये जा रहा हूँ ! नहीं तो क्या जहर की कोई पुड़िया मुझे नही मिल सकती थी अब तक ?"

"सो तो है ही ! सो तो है ही !"—मुखिया ने कई बार गरदन हिलाकर सहमति जताते हुए जवाब दिया—"मगर जहर की पुड़िया भला आप क्यो खायेंगे प्रभु ? खायें आपके दुश्मन ! मित्रता के धर्म में बँधा हुआ ही तो मै कल राजा साहेब के यहाँ दौड़ा हुआ पहुँचा, और आज सीधे आपकी सेवा मे दौड़कर हाजिर हुआ हूँ हजूर ? मगर इस बात का मुझे कम दुख नहीं कि शुरू मे ही मेरे मना करने पर भी राजा ने कल मेरे पहुँचने से पहले ही खून का मुद्दा दायर करवा ही दिया !"

सुनते ही जिम्मावाल के चेहरे पर वापस आया रंग झट उड़ चला। और मुखिया ने उसे लक्ष्य करके झट आश्वासनभरे स्वर में कहा—"अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं जिम्वालज्यू ! अंत में सब ठीक हो जायगा ! मुझपर भरोसा रखें ! राजा, दैव, अग्नि, हवा और पानी पर किसका वश चल सकता है जिम्वालज्यू ! मगर पूजा-अर्चा और स्तुति से इन देवताओं के क्रोध में भी कुछ कमी आती ही है ! मैने कल आपकी ओर से बड़ी स्तुति और पूजा की राजा साहेब की जिम्वालज्यू ! आपके दिये सारे रुपये आपकी ओर से बतौर नजराने के पेश कर दिये ! आपका असली काम बन गया ! कल 'पानी का मुद्दा' भी दायर करवाने ही जा रहे थे कि ठीक मौके पर मै जा पहुँचा ! मगर नजराना पेश करने के बावजूद बड़ी मान-मनौती और आर्जू-मिन्नत के बाद उन्हें मै रोक सका ! उन्हें समझाया कि 'आखिर सारकी सारकी है, और हमालज्यू हमाल ! अपनी जात-बिरादर के हैं ! उनकी जेठी छोरीज्यू अगर आज हजूर के महल में होतीं, तो खुद प्रभु ही उनके पक्ष मे होकर ऐसी बातों से उनकी रक्षा करते ! मगर एक बार उनसे भूल अगर हो ही गई तो उस भूल को अब भूलकर उन्हें माफ बकसा जाय प्रभु ! उनकी होने वाली दुर्दशा पर तो जरा दयापूर्वक विचार किया जाय !' "—कहकर उसने पुनः सिगरेट का एक कश खींचा।

जिम्मावाल के चेहरे का रंग पुनः कुछ-कुछ वापस आने लगा था। लेकिन अभी वह कुछ बोल न सका। और मुखिया ने मुँह से धुआँ

उड़ाकर एक हाथ से सिर खुजलाते हुए इस बार चुपके-चुपके कहना आरंभ किया—"मगर जिम्वालज्यू ! मै बिना आपसे पूछे ही एक गलती कर आया हूँ ! मित्र होने के नाते मै आपको अपने से अलग नही मानता ! इसलिए मुझे पूरा भरोसा है कि अपने मित्र की गलती को अपनी ही गलती मानकर मेरे वचन की रक्षा आप जरूर करेगे प्रभु !"—कहकर जिम्मावाल के चेहरे की ओर वह देखने लगा।

"कैसी गलती मुख्याज्यू ?"—जिम्मावाल ने आश्चर्य से आँखे फैलाकर कौतूहलभरे स्वर मे प्रश्न करते हुए कहा—"और मै भी तो आपको अपने से अलग नही मानता मुख्याज्यू ? जरूर मुझपर पूरा-पूरा हक है आपका ! विश्वास रखे ! मगर उस गलती को बताएँ भी तो ? आपके वचन की रक्षा होगी क्यो नही ? जरा बताएँ भी तो ?"

जिम्मावाल युद्ध आरभ होने से पहले ही जैसे हार चुका था। पराजय की भावना बलवती हो चली थी। दीवाल पर खिची रेखाओ की तरह पराजय की निश्चित दुर्दशा की स्पष्ट रूप-रेखा जैसे साफ वह देख रहा था। उस दुर्दशा से बचने की घबड़ाहट और आतक मे वह मुखिया की किसी भी बात को, उसकी किसी भी इच्छा को जैसे आँख मूँद तत्काल पूरा करने को तैयार था। जैसे सरकस का खूँखार बाघ भी कुशल कठोर मदारी की इच्छा के आगे तत्काल झुक जाता है।

अब मुखिया ने पुनः सिर खुजलाते हुए चुपके से जवाब दिया—"जिम्वालज्यू ! आपको याद होगा कि आपकी जेठी छोरी की मँगनी कभी राजा की ओर से की गई थी ! सो किसी शैतान ने शायद झूठ-मूठ उनसे चुगली खाई कि हमाल ने अपनी छोरी देने से इसलिए इनकार कर दिया है कि वह राजा साहेब को लुहारिन की संतान मानता है ! वही बैर आज तक राजा अपने मन में पाले हुए हैं ! और उसी का बदला वे आपसे चुकाना चाह रहे हैं सूद-दर-सूद के साथ जिम्वालज्यू !"

यह सुनते ही जिम्मावाल अपने हाथ और सिर हिला-हिलाकर

घबड़ाये स्वर में बार-बार प्रतिवाद करने लगा—"बिलकुल झूठ मुख्याज्यू! बिलकुल झूठ! भगवान-कसम, अगर मैंने कभी ऐसा कहा हो!" फिर जीभ पर दाँत गड़ाकर—"मेरी जीभ गलकर गिर जाय मुख्याज्यू, अगर स्वप्न में भी मैने ऐसा कुछ कहा हो! सत्यानास हो उस शैतान का जिसने ऐसी झूठी चुगली खाई! मै अभी जाकर राजा साहेब से माफी माँगूँगा मुख्याज्यू, अगर इसी की खातिर वे मुझपर नाराज हैं! अगर इसी की खातिर ऐसी सजा मुझे देना वे चाह रहे हैं! मैंने तो जेठी छोरी उन्हें इसलिए नहीं दी मुख्याज्यू, कि दोनों की जन्म-पत्री ठीक नही बैठी! दोनों के लिए ही बुरा होता! बाप रे! इतना झूठ! और आपको भी यह मालूम ही है मुख्याज्यू, कि राजा साहेब की सबसे पहली 'स्वास्नी' विवाह के बाद ही इसी कारण तो चल बसीं कि दोनों की जन्म-पत्री ठीक बैठी न थी! बूढ़े राजा साहेब ने केवल इस कारण उस विवाह में जल्दबाजी दिखाई थी कि छोरी बड़े ऊँचे कुल की थी! मगर यह तो बिलकुल सफेद झूठ है मुख्याज्यू, कि मैने उन्हें लुहारिन की सतान समझकर अपनी छोरी देने से इनकार कर दिया! बाप रे! कैसा झूठ!"

"धीरज तो धरें जिम्वालज्यू!"—मुखिया ने अब चुपके से समझाया उसे—"कलियुग का युग है! ऐसी झूठी चुगली खाने वालों की दुनिया मे कमी नहीं है! मगर मै उसी गलती को सुधारने का वचन आपकी ओर से उन्हें दे आया हूँ! अगर आप उनसे माफी माँगना ही चाहते हैं तो खाली हाथ वहाँ जाने से कुछ होगा नहीं! भगवान की दया से सतान की कमी आपको नहीं है! एक-से-एक बढ़कर छोरे और छोरियाँ पैदा की हैं आपने! जेठी न सही, उसी पत्नी की काछी ही सही! कांछी अब तरुणी बन भी चुकी है! कहीं तो उसे देंगे ही आप? सो, इस शुभ अवसर को हाथ से जाने न दें जिम्वालज्यू! कहावत है कि 'घिउ कहाँ गिरा तो दाल में'! काछी के भाग्य में रानी होना लिखा है, रानी, जिम्वालज्यू! मैं काछी के ललाट की रेखाओं को

उसके बचपन से ही पढ़ता आ रहा हूँ हजूर ! और अब तरुणाई मे तो वे रेखाएँ तरुणाई की ही तरह साफ-साफ झलकने और चमकने भी लग पड़ी हैं ! भाग्य की रेखा एक बार खींचकर विधाता भी उसे नही मिटा सकते ! रानी वह बनकर रहेगी जिम्मालज्यू ! सो चुपचाप, बिना किसी से पूछे, काछी को साथ लेकर अब चले चलिए राजा साहेब के दरबार मे आप ! और तब देखिए कि देखते-देखते ही मुसीबत का यह सारा बवंडर किस तरह अपने-आप बिला जाता है !"—कहते हुए उसने अँगूठे से मध्यमा को चटका दिया ।

जिम्मावाल के बेचैन मन को अब काफी तसल्ली हुई । जैसे पिंजड़े से निकल भागने का एक आसान मार्ग उसे दिखाई दे गया । मुसीबत में झुकना पड़ता ही है । जिस राजा को किसी समय लुहारिन की औलाद मानकर अपमान-भरे शब्दो के साथ उसने उसे कन्या देने से इनकार कर दिया था, उसे ही अब कन्या देने मे उसे कोई आपत्ति दिखाई न दी । किन्तु स्वय कन्या ले जाकर उसके चरणो मे रख आने मे उसे आपत्ति अवश्य दिखाई दी । अपनी जाति की श्रेष्ठता और जिम्मावाली का अभिमान उसके मन मे अब भी मौजूद था । रस्सी भले ही जली जा रही थी, पर उसकी ऐंठन अब भी मौजूद थी। खुले दिल से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना कम अपमानजनक न था उसके लिए । लेकिन इससे भी बड़ा एक दूसरा अपमान चुनौती बनकर उसके सामने खड़ा था । दहाड़ रहा था । भाँड़ से उड़कर भट्ठी मे जाकर जल जाने-जैसी परिस्थिति सामने मौजूद थी ।

लेकिन फिर भी उसने हिचक-भरे स्वर मे जवाब दिया—"आपके वचन की रक्षा करने मे कोई हर्ज तो नहीं मुखया बाजे, मगर खुद जाकर अपनी छोरी दे आना क्या आप ठीक समझते हैं ? मेरे मित्र हो ! मेरी इज्जत का भी तो जरा ख्याल करो ! अगर राजा साहेब को मेरी छोरी की ही भूख है, तो क्या विधिपूर्वक यहीं से विवाह करके उसे वे नहीं ले जा सकते ?"

"अगर-मगर की बात अभी छोड़िए जिम्वालज्यू !"—मुखिया ने उसे डराते हुए, समझाते हुए कहा—"इसके लिए तो मैंने खुद राजा को बहुतेरा समझाया, बहुतेरा मनाया, मगर उन्होंने नहीं माना ! नहीं समझा ! आखिर राज-हठ तो ठहरा ! बाल-हठ, तिरिया-हठ और राज-हठ के सामने कुछ चलती भी तो नहीं ! राज-हठ और इस हठ का क्रोध कितना खतरनाक होता है इसे आप खुद अच्छी तरह समझते हैं जिम्वालज्यू ! पृथ्वीनारायण शाह ने इसी हठ और क्रोध में आकर अपनी ससुराल तक का सर्वनाश कर दिया ! 'मकवानपुर'[1] का वह भरा-पूरा राज मटियामेट हो ही गया ! उसका निशान तक नहीं बचा ! और…"

इतने मे कमरे के बाहर एकाएक कोलाहल मच गया। धर्मराज बाजे घबड़ाया हुआ कमरे में प्रविष्ट हो बोल पड़ा—"बाहर देखिए प्रभु ! क्या हो गया !"

"क्या हुआ ? क्या हुआ बाहर ?"—जिम्मावाल ने भी घबड़ाये स्वर मे प्रश्न किया।

"सारा आँगन भर गया प्रभु !"—धर्मराज ने खूब बेचैनी-भरे

---

१. नेपाल के वर्तमान राजवंश के प्रतिष्ठापक गोरखा-नरेश पृथ्वीनारायण शाह की पहली शादी 'मकवानपुर' की सेन-वंशी राज-कन्या से हुई थी। पृथ्वीनारायण पत्नी का 'डोला' लेने पहुँचा। मकवानपुर-राजवंश ने सामन्ती अहंकार मे अपने से छोटे राज्य के इस राजकुमार का अपमान कर दिया। फलतः पृथ्वीनारायण 'डोला' लिये बिना ही 'गोरखा' वापस आ गया। बाद में सैन्य-संग्रह करके मकवानपुर पर आक्रमण करके उस राज-वंश को समाप्त कर दिया। उस राज्य पर अधिकार भी कर लिया। काठमांडू-वीरगज के मार्ग में स्थित 'हेटौंड़ा' से १०-१२ मील पूरब भीतरी तराई के जंगल में मकवानपुर का ध्वंसावशेष अवस्थित है।

स्वर में जवाब दिया—"सारा 'अड्डा' जाने कहाँ से उतर आया! आपको पूछ रहा है प्रभु!"

जिम्मावाल के चेहरे पर अचानक आतंक की रेखाएँ अंकित हो उठीं। और मुखिया ने भी घबड़ाहट का नाट्य करते हुए उठ खड़े होकर दाँये हाथ का सकेत करते हुए जिम्मावाल से कहा—"आप इतमीनान से यहीं बैठे रहें जिम्वालज्यू! मै खुद बाहर जाकर पता लेता हूँ! मामला क्या है?"—कहते हुए वह झट कमरे से बाहर हो गया।

कुछ देर बाद लौटकर घबड़ाहट-भरे स्वर में वह बोला—"ये सारे जिल्ला-अड्डा के यमदूत हैं जिम्वालज्यू! बेईमान आखिर आ ही धमके! मगर आप डरिए नही! इतमीनान से बैठे रहिए! मै सब ठीक कर दूँगा! आप और आपके बड़े कुँवर साहेब की गिरफ्तारी का 'मियाद-सम्मन' लेकर आये हैं! वही जो आपके खिलाफ वहाँ खून का मुद्दा दायर हुआ था न! उसी का मामला है! नौसिंदा, विचारी और डिट्ठा भी आ पहुँचा है! सिपाहियो के हाथ मे हथकड़ियाँ भी हैं! मगर आप घबड़ाइए नही जिम्वालज्यू! अभी उनके सेवा-सत्कार का, भोजन-पानी का जरा बढ़िया प्रबन्ध हो जाना चाहिए! फिर मैं इतमीनान से सारा मामला निबटाकर ही यहाँ से हटूँगा! विश्वास रखे! इस सेवक के रहते सरकारी हथकड़ियाँ आपके हाथो की ओर न बढ़ सकेंगी, न छू सकेगी! धरी-की-धरी ही रह जायेंगी!"—इतना कहकर मुखिया फिर वापस जाकर राज-कर्मचारियो मे शामिल हो गया।

लेकिन मुखिया के दिलासे के बावजूद जिम्मावाल का मन मारे भय के सिहर उठा। चेहरे पर पसीना छा गया। मुखिया के कमरे से निकलने पर जिम्मावाल ने खिड़की से स्वय आँगन का दृश्य देख लिया था। वे चेहरे उसके जाने-पहचाने थे। जिनसे पहले कभी रंचमात्र भी वह डरा न था, इस क्षण वे हो मानो भय के भयानक भूत बनकर उसे दिखाई दिये। क्योंकि उन भूतो के पीछे अपने-प्रबल प्रतिद्वन्द्वी राजा हरिबहादुर के भयानक हाथ उसे जैसे स्पष्ट दिखाई दे गये।

और उन हाथो में बड़े हाकिम के हाथों का जोरदार बल भी ! क्योंकि जिम्मावाल जानता था कि 'बड़ा हाकिम' राजा का समीपी रिश्तेदार है। उन हाथों की भयानकता से त्राण पा सकना कतई आसान नहीं है। और उधर घर की औरतों का भी बुरा हाल हो चला। वे भी लुक-छिपकर उन भूतों को देख रही थीं। जेठी पत्नी घबड़ाई हुई पति के कमरे मे प्रविष्ट हुई। लेकिन पति की फटकार पर झट बाहर हो अन्य कमरे मे जा छिपी।

कुछ देर बाद मुखिया फिर वापस जिम्मावाल के पास आया। कुछ मिनट दोनों मे गुप-चुप बाते होती रहीं। फिर मुखिया की सलाह से उसी के साथ जिम्मावाल नीचे उतरा। मुखिया ने पहले ही दालान मे उन राज-कर्मचारियों के बैठने का आदरपूर्ण प्रबन्ध करा दिया था। उनके लिए भरे हुए हुक्के भी पहुँच चुके थे। उनके रुख में परिवर्तन आ चुका था। जिम्मावाल अब उनसे इतमीनान से बाते कर सकता था। और मुखिया जैसे उसका वकील बनकर उनसे बातें भी कर रहा था, और शानदार दावत के सामान जुटाने का आदेश और उपदेश भी जिम्मावाल को दिये जा रहा था। उन सम्मान्य अतिथियों के स्वागत-सत्कार में जिम्मावाल को खूब उदार बनना पड़ा। अपनी पुत्री के विवाह मे भी शायद ही मेहमानों का इतना आदर कोई करता हो। और शायद ही उसने 'काली माई' के थान में भी कभी उतने अच्छे बकरे की बलि दी हो। और मुखिया इस भोज का आयोजक भी था, भोक्ता भी। और बाद में विदा से पूर्व यहाँ भी चॉदी की तलवार का इस्तेमाल खूब उदारता-पूर्वक किया गया। और मुखिया ने अपने हिस्से के तलवार के टुकड़े अपनी जेब मे इस कौशल से छिपा लिये कि जिम्मावाल भी न जान सका। जिम्मावाल की शैतानी ऑखें भी जैसे अंधी हो चलीं। आह, कितने कौशल से अपने चमत्कारी नाटक का एक 'अंक' खेल लिया जयशंकर ने !

दूसरे दिन सवेरे ही उन मेहमानों को खूब आदर-पूर्वक विदा करके

मुखिया और जिम्मावाल की एकांत गोष्ठी फिर जमी।

मुखिया ने कहा—"देखा न जिम्वालज्यू! शेर भी अगर दैव-योग से किसी दलदल में जा फँसे तो सियार भी शेर बनकर उसे आँखें दिखाते हैं! चिढ़ाते हैं! पूँछ तानकर दहाड़ते हैं! खैर! यह आपत्काल है आपका जिम्वालज्यू! मुसीबत के दलदल मे फँसे हैं आप! सियारों की भी बन आई है अभी! अभी तो किसी भी उपाय से इस दलदल से निकलना है आपको!"

एक मँजा हुआ शिकारी जैसे दुर्भाग्यवश किसी दूसरे मँजे शिकारी की चपेट मे पूरी तरह कैद हो चला हो! जिम्मावाल ने अनेक अभागों के शिकार खेले थे। मानो उन सबके पुंजीभूत अभिशाप आज जयशकर के शैतानी मस्तिष्क मे प्रविष्ट हो बदला चुकाये जा रहे थे। जयशंकर की सान्त्वनाओं और सलाहो को वह चुपचाप सुन रहा था। पर कुछ अन्तिम निर्णय कर सकने की उसकी सारी सूझ-बूझ और उसका सारा आत्मविश्वास जैसे दुर्भाग्य की आँधी मे उड़कर विलीन हो चला था।

जयशंकर ने पूर्व प्रसंग का छोर पकड़कर दृढ़ स्वर में उसे पुनः परामर्श दिया—"देखिए जिम्वालज्यू! अधिक सोच-विचार अब छोड़ दीजिए! आप शकुन्तला की कथा तो जानते ही होंगे! आखिर उसे भी तो स्वयं ले जाकर दुष्यन्त के दरबार मे हाजिर किया गया था? और बाद में वही शकुन्तला सारे भरत-खंड की महारानो बनी? आज बड़ा ही शुभ दिन है जिम्वालज्यू! 'बीहबार' (बृहस्पतिवार) है! और तिथि है त्रयोदशी! शास्त्र मे कहा है—'शुक्ला वा यदि वा कृष्णा सर्वसिद्धा त्रयोदशी!' सो, आज के इस सिद्धि-योग में ही यह शुभ-कर्म पूरा कर दिया जाय! आज रात मे हम लोग कांछी को साथ ले चुपचाप राजा साहेब के घर चले चलें! कोई जान भी नहीं पायेगा! और जानकर भी कोई आपका कर ही क्या लेगा?" और फिर एकाएक अँगूठे को मध्यमा से चटकाकर—"फिर देखिए कि कितनी आसानी से मुसीबत का यह सारा बवंडर छू-मंतर होता है जिम्वालज्यू! और तब

सियार फिर अपनी जगह हो जायेंगे ! और शेर अपनी जगह !"

जिम्मावाल को इस सलाह के समक्ष सिवा झुकने के कोई चारा दिखाई न दिया। और उस तरुणी-रत्न 'कांछी' के समर्पण का वह गुप्त अभियान उस रात को ही अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचकर सफल हो गया। और राजा हरिबहादुर तो काछी 'कमला' से सामना होते ही परमानन्द की लहरों में जैसे खोकर सब कुछ भूल गया। अचानक जैसे रूप की जगमगाती ज्योत्स्ना उसके महल में प्रविष्ट हो उसकी चेरी बन गई हो ! मुखिया ने उससे आखिर झूठ तो नहीं कहा था कि उसके रूप की बिजली अँधेरे घर में भी उजाला बरसा दे ! और न उसने झूठी प्रतिज्ञा ही की थी कि वह जिम्मावाल महेन्द्र हमाल को उसकी रूपवती कन्या-सहित अपने स्वामी के चरणों पर ला पटकेगा! स्वर्ग का पारिजात लाकर स्वामी के आँगन मे अवश्य लगा देगा ! पारिजात-हरण करके रहेगा ! और इस पारिजात के साथ मानो स्वर्ग की प्रहरी-अप्सराओं के रूप में दो नौजवान 'कमारियाँ' भी आई और दो 'कमारे' भी। इस अनुपम रूप-पुष्प को पाकर राजा के बुढापे मे जैसे यौवन की संजीवनी भर उठी। जैसे सुदर तरुणी राजकन्या 'सुकन्या' को पाकर च्यवन ऋषि का बुढ़ापा दूर हो चला था। फिर जयशकर के प्रति वह क्यो न खूब कृपालु हो उठे ! उसके नाम तुरन्त उसने दान-पत्र लिखकर एक काफी बड़ा 'बिर्ता'[1] बकस दिया।

जिम्मावाल और राजा मे बैर-विरोध सदा के लिए खत्म हो गया। 'पानी का मुद्दा' पानी मे ही पडा रह गया। और 'खून का मुद्दा' बेचारे गुप्तबहादुर का खून करके समाप्त हो गया।

इस प्रकार मुखिया जयशंकर ने जिस कौशल से उस झगडे का शानदार चमत्कारभरा महल खड़ा किया था, उसी कौशल से उसे झट धूलिसात् भी कर दिया। जैसे युद्ध के निमित्त खडी की गई अस्थायी

---

१. राजा-रजवाड़ से पुरस्कार में प्राप्त भूमि को 'बिर्ता' कहते हैं।

किलेबन्दियाँ युद्ध की समाप्ति के बाद विजयी निर्माता द्वारा ही ध्वस्त कर दी जाती हैं।

(१५)

जयशंकर पंत ने अब तक के सारे मोर्चे जीत लिये। बुद्धि के बारीक-बारीक धागो से बुने और सुकौशल से फैलाये उसके मजबूत आकर्षक जाल मे सफलता जैसे अपने-आप खिची आकर उलझ जाती। और समाज की परिस्थितियाँ जैसे अपने-आप नये मोर्चों का निर्माण करके उसके सामने पेश कर देती। जैसे परिस्थितियाँ उसकी इच्छा-आकांक्षा की दासियाँ हो! राजमहल की दासियाँ जैसे राजा-रानी अथवा राजकुमारो के आगे उनकी इच्छा का आभास पाते ही चौपड़-पाशे या शतरंज की गोटियाँ फैलाकर, पेश कर, स्वय तटस्थ बनकर उनके खेल देखा करती हो!

वर्ष भर बाद परिस्थिति-दासी ने जयशकर के सामने फिर एक नया मोर्चा पेश कर दिया। और उसी मोर्चे के उदर से पुनः एक नया मोर्चा पैदा हुआ। पहला नया मोर्चा बहुत कुछ बाहरी था, किन्तु उसी मोर्चे से उत्पन्न दूसरा नया मोर्चा बिलकुल घरेलू था! और बिलकुल अजीब भी! कहते हैं कि कोई बड़ा डाक्टर-वैद्य भी अपने घर के या निज के रोगो की चिकित्सा में सफल नहीं हो पाता। सो, जयशंकर अपने इस घरेलू मोर्चे के समक्ष बिलकुल पंगु और निःशक्त बन गया। गृह-युद्ध की उस लपट के उठते ही उस दिग्विजयी वीर का मजबूत और गर्वोन्नत माथा भी चकरा गया! झुक गया! जो बाह्य शत्रुओ के समक्ष सदा अजेय बना रहा, वह घर की दासियो से परास्त हो गया! बड़े ही अपमानपूर्ण ढंग से! आखिर उसको वे दोनो पत्नियाँ व्यवहारतः दासियाँ ही तो थी उसके लिए! लेकिन इन दासियो के क्रुद्ध मोर्चे के समक्ष दिग्विजेता जयशंकर का वैसा ही हाल हो चला जैसा अपने विशाल कर्ण-कुहरो में प्रविष्ट किसी क्रुद्ध शरारती चोटी की हरकतों से

महाबलशाली हाथी का हो जाता है !

पत्नियों के संग्रह में संख्या की दृष्टि से अपने स्वर्गीय पिता का मुकाबला जयशंकर ने कर लिया था। 'जेठी' पत्नी उपाध्याय ब्राह्मण की कन्या थी, 'माहिली' जइसी ब्राह्मण की, और कांछी 'घरती' की। 'घरती' जाति नेवार, मगर और गुरुङ से तनिक नीचे की सवर्ण शूद्र मानी जाती है।[1] जिस प्रकार माहिली के प्रवेश के बाद से जेठी उपेक्षित हो चली थी, उसी प्रकार कांछी के आगमन के बाद से माहिली भी उपेक्षित हुए बिना न रही। लेकिन जयशंकर अब पिता से भी आगे बढ़ने की तैयारी में था। और कांछी अब 'साहिली' बनने जा रही थी। क्योंकि जयशकर ने अपने घर मे अब एक नई-नवेली 'कांछी' को प्रवेश कराने की तैयारी मन-ही-मन कर ली थी।

सक्षेप मे कहानी यो है—

'कुसुमा' के पिता साहु चन्द्रमान की वश-शृंखला नेपाल के 'मल्ल' राजाओ से जुडती थी। लेकिन ईसा की अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे गोरखा के राजा पृथ्वीनारायण शाह द्वारा नेपाल-विजय के बाद जाति-रूप से नेवारो की स्थिति हीन हो चली, तथा जातितः और अधिकारतः मल्लो की भी। शासन छिन जाने के बाद क्षत्रिय 'नेवार' भी वैश्य बनने पर मजबूर बन गये। वे क्रमशः नेपाल के मारवाड़ी और यहूदी बन गये। राज-वंशी नेवारों की भी नेवार जाति के वैश्यों में ही परस्पर रोटी-बेटी शुरू हो गई। लेकिन फिर भी अपने वंश-गौरव और उसके कीर्ति-सौरभ को वे न भुला सके। न भूल सके। जैसे कपड़े से लगा हुआ इत्र बहुत जल्द अपने सौरभ को नहीं भूल

---

१. नेपाल मे ईस्वी सन् १६२६ से पहले दास-प्रथा कायम थी। दासो की अपनी कोई जाति न थी। लेकिन जो कुछ मुट्ठी भर दास किसी उपाय से दासत्व के बन्धन से मुक्त हो जाते वे जात्या 'घरती' कहे जाते।

पाता ! नहीं छोड़ पाता !

कुसुमा की माँ 'श्रेष्ठ' जाति की नेवार वैश्य की संतान थी। लेकिन कुसुमा बचपन में ही अपनी माँ से बिछुड़ गई। उसके बाद वह अपनी दो सौतेली माँओं की सौतेली छाया के नीचे आ गई। जैसे फूल की कोई सुन्दर पौद एकाएक निष्ठुर मालियों के हवाले कर दी गई हो! लेकिन विमाताओ के प्यार से वचित रहते हुए भी वह पिता के वात्सल्य से वचित न रही, जैसे बाग का मालिक अपने हाथ से लगाई किसी भी पौद को विनष्ट होने देना नहीं चाहता। अतः मन का उल्लासमय विकास उसका रुका नहीं। और शरीर का विकास भी स्वाभाविक क्रम से जारी रहा। नेवार जाति के सम्मिश्रित रक्त की कुरूपता के बजाय उसका अनुपम सौंदर्य अपने माँ-बाप के रक्त से उसे मिला था। लेकिन एकाएक यह जान सकना कठिन था कि उसके रक्त मे आर्यत्व अधिक था अथवा मगोलत्व। उसकी बड़ी-बड़ी खिंची आँखे और सधी सुडौल नाक आर्यत्व की परिचायक थीं, और तनिक उभरे हुए गाल मगोलत्व के। बाल काफी काले थे। और ओठ पतले-पतले, गुलाबी। और चेहरे का रंग कुछ ऐसा था जैसे सुनहले रंग पर गुलाबी रंग की हलकी 'ओप' (वारनिश) चमक रही हो! और यौवन के आगमन से उसका यह रग-रूप यो खिल उठा जैसे वर्षा की फुहार मे नव-विकसित फूल-पत्तों का रूप-रग! और यौवन की परिपुष्टि उसके अगों मे विकस्वमान सौदर्य के साथ ही कामनाओ को भी अनजाने उभार-उभारकर उसकी नसो में ज्वार भी लाने लगी, जैसे वर्षा की जल-राशि छोटी-बडी सभी नदियों मे ला देती है।

मणिपुर के हिन्दुओ मे 'सुभद्रा-हरण' की प्रथा है। अर्थात् यदि कन्या के माँ-बाप राजी न हो, और मियाँ-बीबी यदि आपस मे राजी हों तो महावीर अर्जुन की तरह प्रेमी अपनी 'सुभद्रा' का हरण कर लेता है। उसी प्रकार नेपाल के नेवारों में 'उषा-हरण' की प्रथा है। इसके पीछे एक पौराणिक पृष्ठभूमि है। द्वापर में नेपाल-नरेश

'वाणासुर'[1] की कन्या उषा ने कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का हरण कराया था। लेकिन आज यह प्रथा उलटे रूप में, बहुत कुछ सुभद्रा-हरण के रूप मे वहाँ चालू है। अर्थात् प्रेमी ही अपहर्ता का पार्ट अदा करता है।

कुसुमा का आध्यात्मिक विवाह नेवारी प्रथा के अनुसार बाल्यावस्था मे ही हो चुका था। खास काठमांडू से 'देव-भाजू' या 'गुरु-बाजे' के नाम से प्रख्यात एक नेवारी पुरोहित कुसुमा के नगर 'बागलुङ' मे आया था। उसी के पौरोहित्य में एक दिन शालिग्राम भगवान की पाषाणी मूर्ति के साथ अनेक नेवार-कुमारियों के एक साथ हुए आध्यारिमक विवाह मे कुसुमा भी वधू बनी थी। उसे भी पति के प्रतीक रूप में बेल का एक गोल फल प्रात हुआ था। उस सामूहिक आध्यात्मिक विवाह की बाजी में बालिका कुसुमा को अन्य बालिकाओं के मुकाबले बेल का सर्वोत्तम फल प्राप्त हुआ था। अतः उसके भावी सांसारिक दाम्पत्य-जीवन के अवश्यंभावी सौभाग्य के सम्बन्ध में किसी को भी सदेह न था। लेकिन बेल के इस गोल फल में अथवा शालिग्राम की पाषाणी मूर्ति मे यौवन की आकांक्षा को दबाने की क्षमता कहाँ! उस आकांक्षा की परितुष्टि के लिए तो किसी हाड़-मांस के शरीरधारी मनुष्य की ही आवश्यकता होती है। सो, जब यौवन-वसंत की एक वेला मे कुसुमा का 'उषा-हरण' हो ही गया तो साहु चन्द्रमान के क्रोध की सीमा न रही। उसका चित्त चिंता के उद्वेग से अधीर हुए बिना न रहा। कुसुमा को भगाने वाला उसके योग्य है अथवा अयोग्य, धनी है या निर्धन, कुलीन है या अकुलीन, सवर्ण है या असवर्ण इत्यादि

---

१. 'वाणासुर' को अनेक प्रदेशों ने अपना लिया है। गढ़वाल के 'केदारनाथ' क्षेत्र मे 'उखीमठ' के पास गढ़वाली लोग वाणासुर की राजधानी बताते हैं। और इसी प्रकार 'असम' (आसाम) मे भी वाणासुर की राजधानी कल्पित कर ली गई है।

भावनाओं ने उसे चिंतित बना ही दिया। क्रुद्ध कर ही दिया।

इस क्रोध और चिंता मे एक और भी बड़ा कारण था। साहु चन्द्रमान ने एक धनी अधेड नेवार से कुसुमा के विवाह की बात पक्की की थी। क्योकि चन्द्रमान उस भावी दूल्हे का कर्जदार था। उसके कर्ज के बोझ से आपाद-मस्तक लदा हुआ। घर-द्वार और मकान के बिक जाने का खतरा पैदा हो चुका था। अतः हार मानकर उस बेमेल विवाह की वेदी पर उसने कुसुमा को बलि देने का निश्चय किया। किन्तु पिता की इस हृदयहीनता की वेदी पर निछावर होने को तैयार वह न हो सकी। जब पिता की दूसरी क्वाॅरी तरुणी कन्याएँ भी मौजूद थी ही तो उस मातृ-हीना का ही बलिदान क्यो ? लेकिन दूसरी कन्याओ की माताएँ मौजूद थी ! सौत की कन्या के रहते आखिर वे अपनी कन्या को बलि-वेदी पर निछावर करने को क्यो तैयार होतीं ?

साहु चन्द्रमान के घर मे एक ब्राह्मणी नौकरानी थी। इस ब्राह्मणी के पति ने साहुकार का कर्ज चुकाने मे असमर्थ होने के कारण बतौर बधक के उसे उसके घर मे रख दिया था। यह कर्ज उन दिनो का था जब चन्द्रमान की आर्थिक स्थिति खराब हुई न थी। मातृहीना कुसुमा को इस ब्राह्मणी से प्यार भी मिला करता, सलाह भी। सो, जब बाप ने बेटी की बलि देने का फैसला कर ही लिया तो ब्राह्मणी ने कुसुमा को चुपके से आगाह किया। आॅखों में आॅसू भरकर सलाह भी दी—"जीवन मे सब कुछ धन ही तो नहीं 'नानी' ! तेरा वह दूल्हा तो कई बेटे-बेटियो का बाप है, रोगी भी, और बूढ़ा भी ! आज अगर तेरी अपनी आमाॅ होती तो यह सब न हो पाता नानी ! तेरा बाप ही आज तेरा सबसे बड़ा दुश्मन न बन पाता ! अरी, ओ अभागिन ! कृष्णलाल के साथ समय रहते कहीं भाग क्यो नहीं जाती ! वह भी नेवार है ! अच्छे कुल का है ! गरीब हुआ तो क्या, जवान तो है ? सुन्दर तो है ? तेरी जवानी बरबाद तो न होगी उसके साथ ? जवानी का सुख तो भोग सकेगी उसके साथ ? वह तुझे कितना चाहता है क्या नहीं जानती तू ?"

और उस ब्राह्मणी की मदद से ऐन विवाह के दिन ही वह कृष्णलाल के साथ घर से भाग निकली। साहु चन्द्रमान को विवश होकर अपनी दूसरी कन्या की बलि देकर वचन की रक्षा करनी पड़ी, अपने धन-दौलत की भी। लेकिन कुसुमा के प्रति उसका क्रोध और भी उग्र हो उठा। जैसे बलि के निमित्त खूब लाड़-प्यार से पाला हुआ बकरा बलि के ऐन मौके पर रस्सी तुड़ा किसी जगल में जा छिपा हो! साहु चन्द्रमान ने खोज शुरू की। पर कृष्णलाल ने इस यत्न से उसे छिपा दिया कि लाख प्रयत्न करने पर भी उसका पता न चल सका। नेवारी प्रथा के अनुसार यदि ग्यारह दिन के भीतर भागी कन्या का पता न चल सके तो भगाने वाले के साथ उसके विवाह मे कोई बाधा नहीं रह जाती।

कृष्णलाल मुखिया जयशकर के गॉव मे अपने मामा के घर कुसुमा के साथ भाग आया था। बारहवें दिन दोनों प्रकट हुए। उसका मामा भी गरीब था। लेकिन भाजे के विवाह मे जयशकर से कर्जा लेकर उसने भोज की तैयारी की। एक भैंसा भी मारा। चिउडा, तरकारी, अचार और रक्सी आदि का प्रबन्ध उसने दिल खोलकर किया। शाल के पत्तों के छोटे-बड़े सैकड़ों दोने तैयार किये गये। कई गॉवों के नेवार निमत्रित किये गये। लेकिन पता पाकर साहु चद्रमान अपने दल-सहित ऐन विवाह-भोज के मौके पर उपस्थित हो गया। इस विवाह को स्वीकार करने को वह कतई तैयार न था। उसने जबरन कुसुमा को लौटा ले जाने की कोशिश की। अच्छा-खासा हगामा उठ खड़ा हुआ। वर-पक्ष ने जयशंकर की भी मदद मॉगी। और जयशकर के लिए यह कम अपमान की बात न थी कि उसके गॉव मे भागकर आई और ब्याही हुई कन्या को कोई बाप इस प्रकार लौटा ले जाय! साहु चन्द्रमान के रूप में जैसे कोई सरकार सदल-बल आ धमकी हो किसी अन्य राष्ट्र मे अपने किसी विद्रोही नागरिक को बलपूर्वक पकड़ ले जाने के लिए! जयशंकर भला कैसे इस धृष्टता को बर्दाश्त करता! वह न केवल अपने गॉव का,

बल्कि उस इलाके का माना हुआ आदमी था। उसकी घुड़की पर ही चद्रमान को पराजित और निराश हो लौट जाना पड़ा। जैसे सोवियत-संघ के प्रधान मंत्री की घुड़की पर ही ब्रिटेन को मिस्र की समर-भूमि से भागना पडा। विवाह पक्का होकर रहा। कुसुमा और कृष्णलाल का दाम्पत्य-जीवन बाकायदा आरम्भ हो गया।

लेकिन साहु चद्रमान इस अपमान को पचा न सका। जयशकर से सीधे जूझने की क्षमता अथवा साहस का अभाव था उसमे। पर गरीब कृष्णलाल को वह क्षमा करने को तैयार कतई न था। जैसे अपने से कमजोर प्रतिद्वन्द्वी कुत्ते को सामने पाकर कुत्तो की पूँछे तन जाती हैं। सो, जयशकर के मुकाबले दुम दबाकर भागा हुआ चन्द्रमान कृष्ण-लाल पर पूँछ तानकर टूट पडा। उसने चोरी के मुद्दे मे कृष्णलाल को फँसा दिया। वही घिसा-पिटा अभियोग था—लड़की के साथ कई हजार के जेवर-जेवरात चुराकर भाग जाने का। लेकिन आश्चर्य कि मुखिया जयशंकर ने इस बार साहु चंद्रमान का साथ दिया। जैसे राजनीति के खेलाड़ी स्वार्थवश किसी भी क्षण अपना पक्ष और रंग बदला करते हैं। फलस्वरूप सरकारी जेल में कृष्णलाल का 'थुना' जाना (कैद होना) आसान बन गया। और कुछ मास बाद कृष्णलाल जेल में ही इहलोक से कूच भी कर गया। कुसुमा खूब रोई, खूब पीटी, पर उसके आँसू जंगल के आँसू बनकर रह गये। लोगों से उसे मालूम हुआ कि कृष्णलाल को जेल मे इतना पीटा गया कि सिवा मौत के उसके लिए कोई उपाय न रह गया। पिटाई में ही वह चल बसा। लेकिन फिर भी कुसुमा पिता के घर न जा सकी। अपने पति के हत्यारे के घर में प्रवेश करने अथवा उसका मुँह देखने तक को वह राजी न हो सकी। विधवा के रूप मे अपने मृत पति के मामा के घर में ही बनी रही।

लेकिन जयशंकर के पौरुष को मानो यह जबरदस्त चुनौती थी कि कोई परम सुंदरी तरुणी उसकी आँखो के आगे ही विधवा बनी रहकर अपने रूप-यौवन को बरबाद करती रहे। सो, सुअवसर देखकर जयशकर

ने कुसुमा पर डोरे डालना शुरू किया। उसे अपने घर के पत्नी-साम्राज्य मे मिला लेने का संकल्प उसने मानो उसी प्रकार कर लिया जैसे अग्रेजो ने शुभ संकल्प से प्रेरित होकर भारत के लावारिस देशी राज्यो को कृपापूर्वक अपने साम्राज्य में मिलाना शुरू किया था। उसकी जवानी को कहीं अन्यत्र बरबाद होते देखने के बजाय उसके सरस कृपालु हृदय ने उसका स्वयं इस्तेमाल करने का संकल्प किया। उसने उसे 'ल्याइता' बनाकर अपनी 'काछी' के सुमधुर व सौभाग्यपूर्ण पद पर अधिष्ठित करना चाहा। लेकिन कुसुमा इस पद-गौरव के महत्त्व और सौभाग्य को महसूस शायद न कर सकी। अथवा महसूस करके ही वह घृणा से यो भर उठी जैसे झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई अंग्रेजी साम्राज्य के जाल मे फँसने की परिस्थिति से।

उसने जयशकर की जेठी पत्नी से अत्यंत व्यथा-भरे स्वर में फरियाद की—"मुझे बचाइए 'आमॉज्यू'! मेरी आमॉ नहीं! आप ही मेरी आमॉ हैं! अपनी छोरी को अपनी सौत बनने की मुसीबत से बचा लीजिए आमॉज्यू!"

फिर उसने माहिली से भी रो-रोकर फरियाद की—"मै आपकी बहिनी हूँ दीदी! इस मुसीबत से इस अभागिन को बचा लो दीदी!"

और इसके बाद वह हेमा के पैरो पर भी गिरकर रोने लगी। गिड़गिड़ाने लगी—"इस अभागिन को अपने चरणों मे जगह दो दीदी! तुम्हारे ही साथ रहूँगी! तुम्हारे ही साथ सुख-दुख से जीवन के बचे दिन काट लूँगी! इस पाप से, इस मुसीबत से मेरा उद्धार करो दीदी!"

हॉ, हेमा और कुसुमा मे कुछ दिनों से दीदी-बहिनी का हार्दिक पड़ोसी सम्बन्ध कायम हो चुका था। खासकर उस दिन से जिस दिन कुसुमा के सिर अचानक वैधव्य का वज्रपात हुआ था। उस दिन हेमा भी यों रोई थी जैसे स्वयं उसकी सगी प्यारी छोटी बहन का सौभाग्य लुट चला हो! और आज कुसुमा एक अनाथ भिखारिन की भाँति

उसकी शरण और संरक्षण माँग रही थी, ताकि समाज का वह प्रबल खूँखार डाकू उसके जीवन और यौवन को लूट न सके! उसपर अधिकार न कर सके! जैसे वह हेमा के स्नेह और हरिशंकर के पौरुष के कवच मे सदा के लिए बँध जाना चाहती थी। हेमा ने महसूस किया इसे। लेकिन उसके हृदय में नारीत्व की क्षुद्रता के बजाय जैसे एकाएक विशालता उमड़ पड़ी। इस दुखिया पर अपने हरिशंकर को भी जैसे मन-ही-मन लुटाने को अचानक वह तैयार हो गई। जैसे पाडव-माता कुन्ती ब्राह्मणी के पुत्र की रक्षा के महान् मानवतावादी आदर्श की तरंगों से उद्वेलित हो अपने प्रिय पुत्र भीमसेन को बकासुर के हवाले कर देने को तत्काल तैयार हो चली थी। सौतें किस बकासुर से कम होती हैं? पर कुसुमा का विपद्ग्रस्त वर्तमान जीवन तो उस ब्राह्मणी-पुत्र के जीवन के ही समान था?

और तब हेमा कुसुमा को झट छाती से लगाकर बगैर किसी बाधा-द्विधा के अश्रु-विह्वल स्वर मे बोली—"मै अपने माँ-बाप की अकेली छोरी हूँ बहिनी! मै तेरी-जैसी बहिनी कहाँ पाऊँगी भला!"—इतना कहकर उस दुखिया का मुँह चूमते हुए इस पावन और स्नेहिल सम्बन्ध की डोर उसने एकाएक पक्की कर दी। उसने अपनी सास और हरिशंकर को स्वय राजी करके उसे अपने घर मे सदा के लिए जगह दे दी।

अभी शिकार के हाथ से निकलने के पहले ही जयशकर की जेठी पत्नी जयशकर को फटकार रही थी—"बूढ़े हो गये! जरा शरम तो करो! उस बेचारी की उम्र से अधिक उम्र की तो तुम्हारी अपनी छोरी है! नाती-नतकुर वाले भी बन चुके! घर में कितनी मौजूद हैं, मगर मरद की हवस फिर भी मिटने की नही!"

और अब जेठी के साथ माहिली भी हो चली, जैसे हिटलर के विरुद्ध ब्रिटेन और फ्रांस पोलैंड के साथ हो. चले। मानो कुसुमा-रूपी पोलैंड के बचाव में सयुक्त मोर्चा बनाती हुई माहिली भी फटकार उठी —"औरतों का चिड़िया-घर बनाना चाहते हो घर में? लाज-शरम धोकर

पी गये !" और फिर एकाएक तर्जनी तानकर भौंहें टेढ़ी करके चुनौती के स्वर में—"अगर तुमने फिर भी बेशरमी करने की ठान ही ली तो कहे देती हूँ कि तुम्हारे मुँह पर कालिख पोतकर मैं घर से निकल जाऊँगी !"

लेकिन जयशंकर इस फटकार और चुनौती को बर्दाश्त न कर सका। जैसे कोई परम दुर्बल राष्ट्र सबल राष्ट्र को चुनौती दे रहा हो ! वह एकाएक क्रोध में आकर माहिली पर मुक्के बरसाते हुए बोला—"तो निकल हरामजादी, अभी मेरे घर से ! यह तेरे बाप का घर नहीं कि यहाँ हाथ-पैर तोड़कर बैठी रहे ! जा, कर ले किसी और खसम को ! 'जइसी' की ही तो छोरी है तू ? धमकी देने चली है ! धमकी ! निकल हरामजादी !"

जैसे सबल राष्ट्र तत्काल उस दुर्बल राष्ट्र पर टूट पड़ा हो ! और तब जेठी ने जैसे झट तटस्थ राष्ट्र का पार्ट अदा करते हुए बीचबिचाव किया। लेकिन उसे भी धक्के देते हुए अपमान-भरे स्वर में वह बोला—" तू भी भाग चुड़ैल अपने बाप के घर ! या किसी नये खसम के घर में जाकर मजे लूट !"

मानो सबल राष्ट्र ने अपने बल के घमंड में दुर्बल राष्ट्र की मध्यस्थता का अपमान कर दिया। जैसे स्वेज नहर के मामले में ब्रिटेन और फ्रांस ने दुर्बल एशियाई राष्ट्रों के तटस्थ परामर्श का अपमान कर दिया हो !

लेकिन माहिली अपनी सौत एवं निज के अपमान से अतीव उग्र होकर बोल उठी—"बेशरम ! छिनाल ! अपने ही जैसा सबको समझ रखा है तुमने ! तुम्हें बुढ़ापे में अगर शरम नहीं आती तो क्या औरों के भी कोई शरम नहीं ? ऐसा बोलने से पहले तुम्हारी जीभ कटकर गिर क्यों नहीं जाती !"

मगर मुखिया का क्रोध और उग्र हो उठा—"अगर फिर जीभ चलाई तो मैं जीभ काट लूँगा बदमाश !"—कहकर मुखिया ने फिर

हाथ उठाया। जैसे स्वेज के प्रथम युद्ध में पीछे हटकर ब्रिटेन पुनः मिस्र पर टूट पड़ना चाह रहा हो!

लेकिन बीच में ही उसका हाथ पकड़कर उसे खूब जोर का धक्का देकर अब माहिली एकाएक उसकी छाती पर सवार हो गई। जैसे रूस की मदद से सबल हो मिस्र ब्रिटेन की छाती पर चढ़ बैठा हो! नौजवान थी। शरीर से खूब तगड़ी! अपने शारीरिक बल के सहसा उभरे विश्वास और साहस ने उसे एकाएक अत्यन्त सबल बना दिया। पहला अपमान वह किसी तरह बर्दाश्त कर गई। लेकिन इस बार जयशंकर की कटी-तराशी मूँछों को नोचते हुए मानो पागल होकर वह बोलने लगी—"बद-माश तू, और बदमाश तेरा बाप! जिसे एक से मन नहीं भरा तो अनेक रख लीं! पापी! तू तो किसी को भी नहीं छोड़ता! 'भाई-बुहारी' तक को भी नहीं बकसता! तेरे पाप का भंडाफोड़ अब होने ही वाला है! भंडाफोड़ तेरा करके रहूँगी! याद रख तू! पतित! मेरी जीभ भला काटेगा तू? देखूँ! कैसे काटता है तू!"—कहकर अचानक अपने तेज दाँतों से उसके ओठ पकड़कर वह जोर से खींचने भी लगी।

जयशंकर अब बुरी तरह फँसा। उस क्रूर पकड़ में पड़कर वह चीखने लगा। चिल्लाने और घिघियाने लगा।

और तब जेठी ने माहिली को धक्के देते हुए पति के उद्धार का प्रयास किया—"ओ माइली! ओ माइली!! पागल न बन! ऐसा पाप न कर!"

लेकिन माहिली की क्रूर पकड़ से फिर भी जयशंकर का उद्धार न हो सका। जैसे ग्राह ने गजराज को पूरी शक्ति से पकड़ लिया हो!

अब जेठी छाती-कपार पीटती कमरे से बाहर आई। उसने सोमशंकर को आवाज दी—"माइला बाबू-ऊ-ऊ-ऊ! माइला बाबू-ऊ-ऊ-ऊ!" और फिर हरिशंकर को भी आवाज दी—"साइला बाबू-ऊ-ऊ-ऊ! साइला बाबू-ऊ-ऊ-ऊ!"

और तब 'भाउज्यू' (भाभीजी) की आवाज पर दोनों भाई पारी-

पारी से "हजूर ! हजूर !"—कहते दौड़कर भीतर आये। उन्हें ग्राह और गजराज के इस असभावित युद्ध पर कम आश्चर्य न हुआ। महिला माहिली मे मानो नर ग्राह का बल और क्रूरता अचानक प्रविष्ट हो गई हो ! और जयशकर की आर्त आत्मा जेठो मे प्रविष्ट हो 'त्राहि मा-त्राहि मा' कर रहा हो !

गजेन्द्र-मोक्ष के प्रयास मे अब वे दोनों भाई सयुक्त रूप से लग पड़े। जैसे संयुक्तराष्ट्र-सघ स्वेज के दलदल में फँसे युद्धयमान राष्ट्रों को अलग-अलग करने का प्रयास कर रहा हो !

"माइली भाउज्यू-ऊ-ऊ ! माइलो भाउज्यू-ऊ-ऊ ! यह क्या कर रही हैं आप ? पागल तो नहीं हो गई ?"—कहते हुए बिना किसी अधिक परेशानी के उन्होंने माहिली-रूपी ग्राह को अलग खींचकर उसके ग्रास से गजेन्द्र जयशकर को उबार ही लिया। मानो कुछ क्षण के लिए द्वापर कलियुग मे प्रविष्ट हो गया हो, और कृष्ण के साथ बलराम का भी अश सोमशकर और हरिशकर मे !

जयशकर का उद्धार तो हो गया, पर उसके ओठों से खून बह चला था। माहिली की जीभ और ओठ भी खून से तर हो चले थे। मानो वह काली बन चुकी हो ! क्रोध से थर-थर काँपती हुई वह अब भी बोल रही थी—"जरा इस पापी बेशरम को समझाओ न माइला बाबू ! आप काशीजो से पढकर आये हो ! शास्त्र-पुरान सब कुछ जानते हो ! क्या इस्त्री गाय बनकर पुरुष के सारे अत्याचार सहती रहे ? और पुरुष जब चाहे जितनी औरतें घर मे इकट्ठो करके दूसरी औरतों का जीवन बरबाद करे ? आप भी तो बड़े पडित हो ? एक इस्त्री से बाल-बच्चा नहीं हुआ ! मगर फिर भी आपने दूसरा ब्याह तो नहीं किया ? मगर इसके घर में बाल-बच्चों की कमी नहीं ! फिर भी इस छिनाल की हवस नहीं मिटती ! अभी क्या बताऊँ इसके और पाप की बात !…"—कहते-कहते अचानक एक अन्य अभागी अबला के सर्वनाश की आशंका की स्मृति से घबड़ाकर वह रुक गई। झट कुसुमा के प्रसंग

को लेकर बोली—"और उस बेचारी दुखिया के पुरुष को छल-परपंच से 'थुनवा' दिया इस पापी ने ! जेहल में मरवा भी दिया ! और अब इतनी बेशरमी से जबरदस्ती उस दुखिया को 'ल्याइता' बनाने चला है !··· मै देखूँगी कैसे उसे ल्याइता बनाता है तू ! पापी ! पिशाच ! थू !"—कहकर उसने रक्त-मिश्रित थूक का एक लौदा भी मुँह से फेंक दिया ।

× × ×

सोमशकर ने समझा-बुझाकर उस समय झगडे को शांत अवश्य कर दिया, लेकिन झगड़ा फिर भो मिटा नहीं । अब जयशकर ने जेठी और माहिली को अपना 'पॉउको जल' देना बन्द कर दिया । उनसे बोल-चाल भी बन्द कर दी । रिश्ता-नाता तोड़ने और घर से निकालने का ऐलान भी कर दिया । जैसे कोई बौखलाया हुआ राष्ट्र अपने प्रति-द्वन्द्वी राष्ट्र से कूटनीतिक सम्बन्ध तोडने का ऐलान कर रहा हो ! लेकिन घर से वे निकली नही । रिश्ता-नाता तोड़ने को तैयार भी न हो सकी । जैसे वे अपना अधिकार किसी भी कीमत पर त्यागने को कतई तैयार न थी । दोनों ही ब्राह्मण-कन्या थी । दोनो ही पति का 'पॉउको जल' लिये बिना कभी मुँह जुठाती न थी । फलस्वरूप अब दोनों का उपवास रहने लगा । लेकिन जयशंकर के खान-पान मे कोई बाधा न पहुँची । क्योंकि उसपर ऐसा कोई धार्मिक-सामाजिक प्रतिबन्ध न था ।

अभी माहिली केवल दो शाम की भूखो थी । सोमशंकर के घर मे अपने दो-वर्षी पुत्र को पीठ पर बाँधे वह मन मारे बैठी थी । सोमशंकर की पत्नी 'चोलो' आदि उतारकर केवल साडी पहने भात और काले उडद की दाल पका रही थी ।

दाल मे तोला भर घी के साथ लाल मिर्च की छौंक लगाकर वह अत्यन्त सहानुभूतिभरे स्वर में माहिली से बोली—"माइली दीदी ! आज मुँह जूठा कर लो तुम ! तुम्हारे लिए भी भात बना दिया है !"

"नहीं बहिनी !"—माहिली ने इनकार करते जवाब दिया—"पेट भरकर खाने दो उसी पापी को ! औरत होकर ऊँची जात में जनम लेने

के पाप का फल हमें भोगने दो ! क्या हुआ अगर भूख से मर ही गई ! इस पाप से निस्तार तो हो जायगा ?"—कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू भर आये।

सोमशंकर की पत्नी ने देखा उसे। दिल से पिघलकर जीभ दबाकर बोली वह—"ऐसा नही बोलते माइली दीदी ! तुम्हारे बाल-बच्चे हैं ! जाने कहाँ से ऐसा रेवाज इस पहाड़ मे आ गया ! तुम्हारे माइला बाबू के साथ मै काशीजी मे कई मास बिता चुकी हूँ ! खुद उनके गुरु के घर मे जाकर देख चुकी हूँ ! वे 'मदिसे'[1] बाहुन हैं ! 'ठूलो' पंडित ! बडे पूजा-पाठ करने वाले ! मगर वहाँ ऐसा टट-घंट तो देखा नही ! वहाँ किसी बाहुन की 'स्वास्नी' को पति का 'पॉउको जल' लेकर भात खाते तो देखा नहीं !"

इतने मे सोमशकर ने घर मे प्रवेश किया। उसकी पत्नी ने एका-एक पूछा उससे—"क्यों जी ? तुम्हारे काशीजी में तो यह रेवाज देखा नहीं कि कोई इस्त्री पति के 'पॉउको जल' के बिना भूखी ही रह जाय ? फिर तुम्हारे इस 'भूचड' पहाड में यह रेवाज कहाँ से आ गया ?"

और काठ के पीढ़े पर बैठते हुए सोमशंकर ने हँसकर जवाब दिया—"यह तो देश-देश का रेवाज है भाई ! जैसा देश वैसा भेस !"

लेकिन पति के उत्तर से पत्नी को संतोष न हुआ। बल्कि वह खूब खीझकर बोली—"तो क्या तुम्हारा ही देस सबसे श्रेष्ठ है कि औरत पर इस तरह अतियाचार किया जाय ? 'मदेस' में कहाँ यह रेवाज है कि कोई बाहुन शूद्दर की छोरी को भी 'स्वास्नी' बनाके रख ले ? और उसके साथ और सब कुकरम तो कर ले, मगर उसके हाथ का पकाया भात न खाये ? सब करम करने में, उसके मुँह-में-मुँह मिलाकर उसकी जीभ चाटने से तो जात नहीं जाती, मगर हाथ का पकाया भात खाने मे

---

१ नेपाल के पहाड़ों में तराई-निवासियों या भारतीयों के लिए 'मदिसे' या 'मधेसी' शब्द इस्तेमाल करते हैं। (अर्थात् 'मध्यदेशी')।

जात चली जाती है ! हाथ का पकाया भात क्या जीभ के थूक से भी अपबित्तर होता है ?"

"तुम तो शास्त्रार्थ पर उतर आई भाई !"—सोमशंकर ने हँसकर जवाब दिया—"मगर मै तो शास्त्रार्थ मे तुमसे जीतूँगा नही ?"

"शास्तारथ मे न जीतो, मगर हम लोगों को सताने मे तो जीत ही जाते हो तुम लोग ?"

सोमशंकर फिर हँसा । बोला—"मगर कल माइली भाउज्यू को दाज्यू की छाती पर बैठे देखकर तो विश्वास हो ही गया कि अब तुम लोग सताने मे भी हमें जीत जरूर जाओगी !" और फिर व्यग-भरे नेत्रों से माहिली की ओर देखकर मुसकाते हुए—"क्यो माइली भाउज्यू ? झूठ तो नहीं बोल रहा मै ?"

माहिली के सूखे ओठो पर भी एक धीमी-सी मुसकान उभर ही आई । लेकिन एकाएक गंभीर होकर वह बोली—"माइला बाबू ! सच-सच बताना कि आपके पोथी-पुरान में क्या लिखा है ऐसा, कि पति का 'पॉउको जल' अगर इस्त्री को न मिले तो वह भूखी ही मर जाय ?"

सोमशंकर इस बार भीतर से आर्द्र होकर सहानुभूतिभरे स्वर में बोला—"नहीं माइली भाउज्यू ! यह तो केवल पाखड है ! पाखंड ! बदमाशी है ! पुरुष तो स्वयं बदमाशी करता फिरे, और अपनी पत्नी को वह पातिव्रत का पाठ पढ़ाया करे ! इस पहाड़ के पंडितों ने बडे-बडे पाखंड यहाँ रचकर चला रखे हैं माइली भाउज्यू !"

"सो ही तो ! सो ही तो मैने भी कहा जी !"—सोमशंकर की पत्नी अपने पडित पति से अपने पक्ष का समर्थन पाकर खुश होकर बोल उठी—"अभी मैने दीदी के लिए भी भात बना दिया है !...तुम्हे आज मुँह जूठा करना पड़ेगा माइली दीदी ! मेरी-कसम ! कहे देती हूँ !"

माहिली कुछ न बोली । और सोमशंकर बोलने लगा—"शास्त्र में तो ऐसा लिखा है माइली भाउज्यू, कि यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्रा स्त्री से संभोग करे, और उसमें पुत्र पैदा करे, तो वह ब्राह्मण रह ही नहीं

जाता ! परन्तु यहाँ शास्त्र को मानता कौन है ? काम-वासना ने यहाँ शास्त्र को जीत लिया है ! यहाँ तो बड़े-बड़े कर्म-काण्डी पंडित भी शूद्र की कन्या को ल्याइता बना लेते हैं ! और उसमें पुत्र पैदा करके उसे 'खत्री' बना देते हैं ! ऐसी गजब की वर्ण-व्यवस्था है इस पहाड मे ! यहाँ तो घोर पाखड है माइली भाउज्यू ! घोर पाखंड ! धर्म-कर्म सब दिखावा मात्र है यहाँ ! यदि मधेस के ब्राह्मण यह सब जान लें तो यहाँ के पहाड़ी ब्राह्मणों को ब्राह्मण भी न कहें ! इनके हाथ का छुआ पानी भी न पियें !"

"सो ही तो मैं भी कहती हूँ जी !"—सोमशकर की पत्नी फिर बोल उठी।

"आखिर तुम भी तो पंडित की ही पत्नी हो न !"—सोमशकर ने मुसकाते हुए उसका समर्थन करके आगे कहा—"कहावत है माइली भाउज्यू, कि 'धन की बाजै घाँटी, निर्धन लोटै माटी' ! दाज्यू के पास धन है ! तरह-तरह के छल-प्रपच से वह धन एकत्र करता है ! किस लिए ? सुख के लिए ! भोग-विलास के लिए ! जब एक स्त्री से उसका मन नहीं भरता, दूसरी ले आता है ! धन के बल पर स्त्रियाँ उसे मिल ही जाती हैं ! कई तरुणी 'कमारियाँ' भी हैं उसके पास ! धन-बल और राज-बल से क्या नहीं किया जा सकना माइली भाउज्यू ? नेपाल के राणा और थापा वश की बात बताऊँ आपको ! किसी समय इनके पुरखे 'खश' जाति के शूद्र थे। परंतु जब राज इनके हाथ में आ गया तो ये ही लोग ऊँची जाति के क्षत्रिय बन गये ! यहाँ के पंडितों ने भी इन्हें मान लिया ! क्योंकि धन का बल इनके पास था, और खुकुरी का, राज का बल भी ! और आप जानती ही हैं कि हिंदू धर्म मे गाय का माँसू खाना घोर पाप है ! परतु गाय का माँसू खाने वाली भोटियानियों के पेट से जब ये ही राणा लोग बच्चे पैदा करते हैं तो वे बच्चे राणा भो कहलाते हैं, और क्षत्रिय भी ! और बड़े-बड़े पडित लोग भोटियानियों के इन राणा छोरा के आगे बिलकुल धरती तक

झुककर आशीर्वाद के नाम पर असल में प्रणाम करते हैं ! दिन-रात उनकी जी-हजूरी भी करते हैं ! उनके सामने नीच लोगो की तरह नीचे आसन पर उकडूँ होकर बैठते भी हैं ! यहाँ तो धर्म के नाम पर सब कुछ पाखड है, पाखंड, माइली भाउज्यू !"

अब माहिली ने प्रश्न किया—"माइला बाबू ! मेरे मन में एक शंका है ! उसका निबटारा आप कर दीजिए ! 'जइसी' भी ब्राह्मण, और 'उपाध्ये' भी ? तो जइसी लोग उपाध्ये से हीन कैसे बन गये ? उपाध्ये लोग जइसी के हाथ का भात क्यो नहीं खाते ? उनकी छोरी तो ले लेते हैं, मगर अपनी छोरी उन्हे क्यो नही देते ? आप-जैसे बडे पडित से भी पूजा-पाठ क्यों नही कराते ?"

और सोमशकर ने हँसकर जवाब दिया—"यहाँ भी उपाध्ये लोगों की बदमाशी है माइली भाउज्यू ! और नेपाल के राजाओ की भी ! हम जइसी लोगो ने किसी समय नेपाल के राजा पृथ्वीनारायण शाह को अपना राजा नही माना ! उसकी मदद नही की ! क्योकि हम जइसी लोगो ने अपने पहले राजा के साथ धोखा नहीं किया ! विश्वास-घात नहीं किया ! और इसी से पृथ्वीनारायण ने नाराज होकर अपने राज्य के सारे जइसियों को अपूज्य बना दिया ! और उनके पिट्ठू उपाध्याय ब्राह्मणों ने भी ! परतु जानती ही तो हैं आप, कि मैं किसी भी उपाध्याय ब्राह्मण अथवा उपाध्याय ब्राह्मणी के हाथ का छुआ भात नहीं खाता ! और अब मै यहाँ के जइसियो को भी समझाने लगा हूँ कि किसी भी उपाध्याय ब्राह्मण को वे न अपनी छोरी दें, न उनके हाथ का पकाया भात खायें !"

माहिली तनिक अप्रतिभ और उदास हो चली । क्योंकि वह स्वयं जइसी की कन्या होकर उपाध्ये की ब्याहता बनी थी । क्षण भर के लिए उसके मन में यह विफल आकांक्षा कौंद ही उठी—"आह, यदि मै भी पिशाच जयशंकर के बजाय किसी जइसी पुरुष से ही ब्याही गई होती !"

और अपने पति के आदर्श-पथ के अनुसरणजन्य अहं को जैसे

व्यक्त करते हुए सोमशंकर की पत्नी भी गर्व-भरे स्वर में बोल उठी—"मै भी जेठी दीदी या किसी भी उपाध्ये का छुआ भात अब नहीं खाती ! और माइली दीदी, तुम भी तो जइसी की छोरी हो ? तुम भी जेठी दीदी या किसी भी उपाध्ये का छुआ भात अब से न खाओ ! वो बडे हैं अपने घर के, तो हम भी बड़े हैं अपने घर के !"—कहते-कहते उसके चेहरे पर जातीय अहंकार की लाली भी उभर आई ।

"अब से मै भी ऐसा ही करूँगी बहिनी !'—माहिली ने उत्साहपूर्वक सहमति जताई ।

और सोमशकर की पत्नी प्रोत्साहित होकर पुनः बोली—"सो ही माइली दीदी ! अपनी जात की मरजाद हम लोग ही अगर न रखे तो रहेगी कैसे ? देखो न ! यहाँ के जइसी लोग तुम्हारे माइला बाबू से ही कथा-पुरान सुनने लगे हैं ! इससे उपाध्ये लोग खूब मन-ही-मन जलते हैं ! क्योंकि अब पूछ उनकी कम जो हो गई है !"

"माइला बाबू से बढ़कर यहाँ बिद्दावान है ही कौन बहिनी ?"—माइली ने फिर उत्साह-भरे स्वर मे जवाब दिया—"यहाँ के उपाध्ये तो कहने भर के लिए बाहुन हैं ! सब मूरख-चपाट हैं !"

"अच्छा दीदी !"—अब सोमशकर की पत्नी माहिली को भोजन पर आमंत्रित करते हुए बोली—"तो तैयार हो जाओ अब ! तुम्हारे माइला बाबू ने बता ही दिया है कि पोथी-पुरान में कोई दोस नहीं लिखा है !"'तुम्हें मेरी-कसम दीदी ! मुँह जुठाना पड़ेगा आज !" और फिर पति को आमंत्रित करते हुए—"तुम भी धोती पहनकर आ जाओ जी ! अपनी भाउज्यू को अपने साथ बैठाकर खिलाओ तो मैं समझूँ !"

माहिली के मन से अब द्विधा-बाधा दूर हो चली थी। विद्रोह का भाव भी प्रबल हो चला। मानो सोमशंकर की सम्मति की छेनी ने तराशकर अंध-सस्कार के चिपके जंग को दूर हटा विद्रोह-भावना के

फौलाद को और भी चमका दिया। और तिसपर वह स्नेहपूर्ण आग्रह ! उस आग्रह को वह टाल न सकी। दो शाम के उपवास के बाद अपने पातिव्रत के व्रत की पारणा उसे करनी पड़ी।

जयशंकर के जीवन की यह पहली पराजय थी कि कुसुमा उसके जाल से निकलकर अनायास, अयाचित हरिशंकर के पौरुष-कवच से जा बँधी ! और उसकी अपनी माहिली पत्नी ने उसके 'पाउँको जल' का सदा के लिए तिरस्कार कर दिया !

(१६)

माहिली अब ससुराल से मायके चली गई। एक तो पति का तिरस्कार, और दूसरे जैसे सोमशंकर की बातों की भाथी ने उसके मन मे जातीय स्वाभिमान की दबी धूमिल आग को एकाएक धधका दिया। अब उसने उपाध्याय की ब्याहता न बनी रहने का सकल्प कर लिया। अपने मायके के जइसियों मे उसने उपाध्यायों के खिलाफ प्रचार भी आरंभ कर दिया। लेकिन जेठी पत्नी भी वहाँ अधिक दिनों तक टिकने में समर्थ न हो सकी। धर्मभीरु थी। वृद्धा थी। मायके जाने को तैयार होकर भी, पति की आर्जू-मिन्नत करके भी, वह 'पाउँको जल' किंतु न पा सकी। पति का चरणोदक लिये बिना वह किस मुँह मायके में भी अन्न-ग्रहण करेगी ? और मृत्यु के बाद परलोक मे किस सबल के सहारे न्यायकर्ता के समक्ष खड़ी हो सकेगी ? इहलोक व परलोक के इस प्रश्नभरे भय से आतंकित हो उसने बहुत सारे लवग इस आशा और आशय से दुकान से मँगा रखे थे कि पति के पाँव के जल में उन्हें भिगोकर अपने साथ मायके वह ले जायगी। भोजन से पहले उन्हे मुँह से छुआ लिया करेगी। लेकिन वे लवंग अब तक सूखे पड़े थे। पर उसकी आँखे सूखी न थीं। जयशंकर दृढ़ सकल्प का व्यक्ति था। उस वृद्धा के आँसू भी उसमें करुणा न जगा सके। उसकी धारणा बन चली थी कि उस बुढ़िया का ही यह सारा रचा षड्यंत्र है ! उसने ही उस तरुणी

नेवारिन को उसके घर में ल्याइता बनकर आने नहीं दिया ! उसने ही उसे हरिशंकर के घर में चली जाने की सलाह दी ! यह सोचते ही उसका मन क्रोध और ईर्ष्या से और भी आकुल हो उठा। हेमा और कुसुमा को एक साथ रहते और काम करते देख उसका मन जल जाता। हरिशंकर के सौभाग्य पर वह क्रुद्ध हुए बिना न रह पाता। लेकिन अभी यह क्रोध हरिशकर पर बरसने के बजाय उसकी अपनी जेठी पत्नी पर बरस रहा था।

सोमशंकर ने उसे समझाने की कोशिश की—"ऐसा अन्याय और अधर्म तो न करें दाज्यू ! आखिर भाउज्यू आपका आदर करके ही तो 'पॉउको जल' मॉग रही हैं ? एक पतिव्रता के प्रति ऐसा अन्याय और पातिव्रत धर्म का ऐसा तिरस्कार धर्म-विहित तो नहीं ?"

लेकिन जयशंकर को भी धर्मज्ञ होने का कम अहकार न था। स्वल्प-पठित होते हुए भी बहुश्रुत वह अवश्य था। सोमशंकर की धार्मिक दुहाई पर पसीजने के बजाय वह और भी उग्र हो उठा। अपमानभरे स्वर में बोला—"मैं उपाध्याय ब्राह्मण हूँ 'माइला' ! एक जइसी, चाहे जितना भी विद्वान हो, मगर हमेशा रहेगा जइसी ही ! क्या यह धर्म-विहित है कि एक जइसी, उपाध्याय को धर्म की बात सिखाने आये ?"

सोमशंकर इस अपमान के लिए तैयार न था। अचानक उसके नेत्र मारे क्रोध के लाल हो उठे। उसने भी अपमानभरे तीखे स्वर में जवाब दिया—"मै तुम्हें बड़ा भाई मानकर तुम्हारा आदर अवश्य करता हूँ, परन्तु तुम्हें ब्राह्मण तो मैं कतई मानता नहीं ! ...और तुम तो उपाध्याय हो भी नहीं ? तुम तो 'कुमाऊँनी' हो! राज-गुरु कुमाऊँनी है! इसीलिए राजा के डर से उपाध्यायों ने तुम्हें अपने में मिला लिया है ! परन्तु तुम तो 'वृषली-पति' (शूद्रा-पति) हो ! वृषली-पति ! तुम्हें मालूम है कि धर्म-शास्त्र में वृषली-गमन का कितना घोर प्रायश्चित्त है ? पतित ! मेरे सामने ब्राह्मणत्व का घमंड करने चले हो ! मालूम है कि मनु ने

तुम्हारे जैसे शूद्रा-गामी ब्राह्मणो के लिए क्या लिखा है ?"—इतना कहकर उसने प्रमाण-रूप मे मनुस्मृति के इस श्लोक को पढ़ सुनाया—

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ।[१]

और पढ़कर पूरा अर्थ भी सुना दिया ।

लेकिन जयशंकर लज्जित या अप्रतिभ होने के बजाय शास्त्रार्थ पर उतर आया । सस्कृत का यत्किंचित् अध्ययन उसने किया था। शास्त्रार्थोचित समयोचित अनेक धर्म-वाक्य उसे याद रहते । ऐसे मौको पर उन वाक्यों को दुहराने से वह नहीं चूकता ।

सो, सोमशंकर को फटकारते हुए व्यगभरे स्वर मे वह बोला—"जइसी चाहे कितना भी पढ़ जाय, मगर धर्म के मर्म को वह कैसे समझ सकता है भला ? कहावत है कि 'लाख गोठाला (ग्वाला) वेद पढ़े, मगर एक बात जगल की करे !' आखिर उसी धर्मशास्त्र मे तो यह भी लिखा है माइला, कि—'यस्मिन् देशे य आचारः सदाचारः स उच्यते ?'[२] तुम जइसी लोग हल चलाने की बात भले ही कर लो, मगर वेद-पुराण पढ़कर भी धर्म का मर्म समझने का न तुम्हें अधिकार है, न बुद्धि है ! यहाँ पंडिताई मेरे सामने न छाँटो ! जाओ, अपने खेत मे हल चलाओ !"

सोमशकर इस व्यग से अत्यंत तिलमिला उठा । सहसा कोई जवाब उसे सूझा नहीं । किन्तु क्षण भर चुप रहकर जैसे सहसा एक अमोघ अस्त्र पाकर वह फिर बोला—"अपने खेतों मे हल चलाने से ही जइसी उपाध्यायों से हीन नहीं हो जाते दाज्यू ! महर्षि वेदव्यास के पुत्र महर्षि

---

१. अर्थात्—यदि ब्राह्मण किसी शूद्रा को अपने साथ सुलाये तो वह पतित हो जाता है । और यदि उसमे पुत्र पैदा करे तो ब्राह्मणत्व से भी हाथ धो बैठता है ।

२. अर्थात्—जिस देश मे जो आचार है वही सदाचार है ।

शुकदेव को ज्ञान का पाठ पढ़ाने वाले राजर्षि जनक ने भी तो हल चलाया था ? इसीलिए उनका नाम 'सीरध्वज' अर्थात् 'हल की ध्वजा वाला' पड़ा था ? शास्त्र तो तुमने पढ़ा नहीं ! शास्त्रों में ब्राह्मण द्वारा हल चलाने का कोई पाप या प्रायश्चित्त नहीं लिखा है, परन्तु वृषली-गमन का पाप और प्रायश्चित्त अवश्य लिखा है ! घोर पाप ! घोर-प्रायश्चित्त ! वृषलीगामी ब्राह्मण को घोर पतित कहा गया है ! मनु का प्रमाण मैने दे ही दिया है !"

जयशकर इस बार खूब नाराज होकर बोला—"घोर पतित तो तू खुद है माइला ! मूर्ख ! क्या तेरे जइसियों मे यह रेवाज नहीं है जो बडी बेशरमी से अपनी पडिताई छाँट रहा है मेरे सामने? पहले अपनी जाति को तो सुधार ! फिर बाद में मेरे सामने आना अपनी पडिताई लेकर ! तूने केवल मुझे ही तो पतित नहीं कहा, बल्कि अपनी जात और अपने बाप को भी ! जिस बाप के वीर्य से तू खुद पैदा हुआ, आखिर तेरा वह बाप भी तो वृषलीगामी था ? वह भी तो कुमाऊँनी था ? और जो पुत्र अपने बाप को भी पतित कहे, उससे बढ़कर पतित भला इस ससार मे और कौन हो सकता है ? घोर पतित तू है ! प्रायश्चित्त तू कर ! हट मेरे सामने से ! पतित ! पापी !"

इस वाचाल शैतान के सामने सोमशकर की सारी पडिताई भूल गई । उससे कुछ जवाब देते न बना । वह एकाएक अप्रतिभ हो चला । जैसे किसी चतुर धृष्ट चोरबाजारिये बनिये ने किसी क्रुद्ध कमजोर उपदेशक को मुँह पर ही बडा चोर साबित करके एकाएक अप्रतिभ और निरस्त्र कर दिया हो !

इसी समय मानो आनुषगिक उद्धता के रूप मे पड़ोस के एक गाँव से एक धनवान जइसी का पुत्र सोमशकर को बुलाने आया । उसकी माँ ने अठारह पुराण सुनने का संकल्प किया था । इस कार्य के निमित्त किसी उपाध्याय पडित के बजाय अपनी जाति के माने हुए विद्वान सोमशकर पंत को ही उसने निमत्रित किया था ।

उस युवक ने पारी-पारी से सोमशंकर और जयशंकर के पैरों पर माथा रखकर प्रणाम किया। लेकिन 'भागवानो होउ' कहकर आशीर्वाद देकर भी जयशकर पंत मन-ही-मन जल-भुनकर उस जइसी युवक से बोल उठा—"क्या ऐसे ही पतित पंडित से तुम्हारी आमाँ ने पुराण सुनने का संकल्प किया है नानी, जो अपने बाप को भी पतित कहता है! और अपने दाज्यू को भी! और सारी जइसी जाति को भी! छी! क्या पवित्र ब्राह्मणो का इतना अभाव हो गया इस पहाड़ मे?"

वह जइसी युवक एकाएक हक्का-बक्का होकर उन दोनो का मुँह ताकने लगा। मारे क्रोध और अरुचि के जयशकर इस समय खूब अशिष्ट बन चला था।

"मुँह क्या ताकते हो भाई?"—जयशकर ने उसी अशिष्ट लहजे मे तनिक तीखे स्वर मे उससे फिर कहा—"क्या तुम्हारे 'बुबा' ने घरती की छारी को ल्याइता बनाके नही रखा? मगर तुम्हारा यह जइसी पंडित अभी-अभी मुझसे कह रहा था कि जो ब्राह्मण शूद्रा को ल्याइता बनाके रखे वह पतित है! पापी है! फिर ऐसे ही कृतघ्न को पूजने लगे हो तुम लोग! छी!"

वह जइसी युवक फिर भी हक्का-बक्का ही रहा। अब सोमशकर ने झट उसका हाथ पकड़कर अपने घर की ओर खींचते हुए उससे कहा—"चलो नानी! यह बेईमान हम जइसियों का अभ्युदय देखना नहीं चाहता! हममें आपस मे फूट डालना चाहता है! चलो, मै अभी ही स्नान-पूजा और भोजन के बाद चलता हूँ तुम्हारे साथ!"—कहकर सोमशंकर उस युवक के साथ अपने घर की ओर चलता बना।

"पडित बनने चला है! मुझसे पडिताई दिखाने चला है! मूर्ख! पतित! पापी!"—सहसा मैदान छोड़कर भाग-चले सोमशंकर के उद्देश से इतना कहकर जयशंकर ने हुक्का भरकर लाने के लिए अपनी कांछी को आवाज दी।

झट हुक्का भरकर आ गया। चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हुए वह

विचारों में लीन हो गया। और जेठी ने शायद उसी दिन रात के अँधेरे में चुपके से पति के शयन-कक्ष में जाकर सोये पति के पाँव से जरा जल भिड़ाकर उसमें लवंग डुबोकर अपना मनोरथ पूरा कर लिया।

सोमशंकर के घर में प्रवेश करते ही उस युवक जइसी ने प्रश्न किया—"पंडितजी! ये उपाध्ये लोग हमसे जलते क्यों हैं? क्यों नहीं हमारा अभ्युदय देखना चाहते? हम जइसी ब्राह्मणों को ये लोग बराबर का क्यों नहीं मानते? आखिर हमारा भी रूप-रंग और चेहरा-मोहरा तो उपाध्ये-जैसा ही है पंडितजी?"

अपने घर के दालान में 'गुंद्री' पर बैठते हुए सोमशंकर ने जवाब दिया—"थोड़ी देर बैठो नानी! इसका कारण अभी बताता हूँ तुम्हें!"

उस युवक के गुंद्री पर बैठ जाने पर उसने पत्नी को आवाज दी—"पंडितानी! पाहुने के लिए साइला के घर से चिलम भरकर तो ले आओ!" फिर युवक से—"जानते ही हो नानी, कि मैं धूम्रपान नहीं करता! पाहुने के लिए दूसरों के ही घर से मँगाना पड़ता है!"

घर के भीतर से सोमशंकर की पत्नी के निकलते ही उस युवक ने उसके पैरों पर भी माथा रखकर प्रणाम किया। पंडितानी ने बड़े प्रेम से 'भागवानी होउ'!—कहकर उसे आशीर्वाद दिया।

अब पं० सोमशंकर ने उस युवक के प्रश्न का जवाब देना शुरू किया—"तुम्हारे 'बुवा' (पिता) ने भी यह प्रश्न मुझसे किया था नानी! परन्तु उस दिन तुम वहाँ न थे! इन उपाध्याय ब्राह्मणों ने झूठ-मूठ हम जइसियों को उपाध्याय जाति की विधवा ब्राह्मणी की संतान कहकर लोगों में प्रचारित किया है! इन बदमाशों के पुरखों ने इसी झूठ को साबित करने के विचार से जाति बनाने का नया रेवाज भो इस पहाड़ में चालू कर दिया! ये लोग कामुकता-वश अपनी जाति की विधवा को 'ल्याइता' बना लेते हैं! और उससे उत्पन्न संतान को 'जइसी' बनाकर हम जइसियों को आज तक अपमानित करते आ रहे हैं! और इसीलिए ये लोग यह झूठा प्रचार भी करते हैं कि जइसियों के पूर्वज आरम्भ से

ही विधवा ब्राह्मणी की संतान होने के कारण पूज्य नहीं रहे ! किन्तु बडे दुख की बात है कि जइसी लोग भी इस झूठे प्रचार को सत्य मान बैठे हैं !"

"तो सच्ची बात आप हम लोगो को बताइए और समझाइए न पडितजी ! इस झूठ के फैलाये जाल को काटिए न ! हजूर ही तो हमारी जाति के गर्व हैं इस पहाड म !"

सोमशकर गर्वान्वित होकर बोल उठा—"सो हो तो, सो ही तो समझाने का प्रयत्न मै कर रहा हूँ नानी ! और हम लोग प्राचीन राजाओं के भी पूज्य रह चुके हैं इसका एक बहुत बडा प्रमाण भी प्राप्त कर चुका हूँ ! परन्तु उस प्रमाण को प्राप्त करने में बड़ा श्रम मुझे करना पड़ा ! काशी मे मेरे साथ पढ़ने वाला 'जुमला' पहाड़ का मेरा एक जइसी मित्र था ! उसने मुझसे यह बताया कि आज से सैकड़ों वर्ष पहले दुल्लू-जुमला के ठकुरी राजा पृथ्वीमल्ल ने उसके पूर्वज को 'कनक-पत्र' के द्वारा अनेक गॉवो का बिर्ता दिया था ![1] मै उस कनक-पत्र को देखने बडे परिश्रम से अपने मित्र के साथ उसके घर पँहुचा ! और उस कनक-पत्र को पढ़कर मुझे तो तनिक भी सदेह न रहा कि हम जइसी लोग पहले बडे-बडे प्रतापी राजाओ तक के पूज्य थे, पुरोहित थे, उनके अध्यापक और गुरु थे ! इन उपाध्यायो के किसी भी पूर्वज को किसी राजा ने ताम्र-पत्र के बजाय स्वर्ण-पत्र न दिया होगा ! किन्तु हमारे पूर्वज तो कनक-पत्र तक प्राप्त कर चुके हैं नानी !"—कहते-कहते सोमशकर

---

१. शाके १२७८ (ई० सन् १३५६) में दुल्लू-जुमला (पश्चिमी नेपाल) की राजधानी 'सेंजा' (आधुनिक 'सिजा') में थी। राजा था पृथ्वीमल्ल। उसने गौल्हू नामक जोइसी (ज्योतिषी = जोइसी = जइसी) ब्राह्मण को चंद्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण के अवसर पर दान में स्वर्ण-पत्र द्वारा कई गॉव दिये थे। (देखिये—"नेपाल सास्कृतिक परिषद पत्रिका"—वर्ष २, अंक २, सवत् २०१०)

के चेहरे पर जातीय स्वाभिमान की लाली उभर आई।

चिलम भरकर पंडितानी पेश कर गई थी। चिलम के कश लेकर उस युवक ने भी, पिता के मुँह से पहले सुन चुके होने के बावजूद, अब विद्वान सोमशंकर के मुँह से इस नये तथ्य को पुनः सुनकर जातीय स्वाभिमान से भरकर कौतूहल-भरे स्वर में पूछा—"तो फिर हम अपूज्य कैसे बन गये पंडितजी ?"

"इन्हीं उपाध्यायों के पुरखों और उनके मालिक ठकुरी राजाओं, और खासकर राजा पृथ्वीनारायण की बदमाशी से नानी! वास्तव में हम 'जइसी' ही पहाड़ के मूल ब्राह्मण हैं! हम ही इन उपाध्यायों से पहले इन पहाड़ों में आये! किंतु बाद में बहुतेरे ठकुरी राजा 'देश' (भारत) से भागकर पहाड़ों में आ जमे! उनके साथ कान्यकुब्ज के कनौजिये ब्राह्मण गुरु और पुरोहित बनकर आये! अपने साथ आये होने के कारण उन राजाओं ने उनके षड्यन्त्र में आकर उन्हें ही मान्य बनाया! उन्हें ही गुरु और पूज्य बनाया! वे ही कनौजिये इन पहाड़ों में 'उपाध्याय' के नाम से प्रख्यात हुए! फिर बाद में इन्हीं ठकुरी राजाओं के वंशज पृथ्वीनारायण शाह का नेपाल के सारे पहाड़ों में राज्य कायम हो गया! कुछ जइसियों ने अपने राजाओं का पक्ष लेकर युद्ध में पृथ्वीनारायण का विरोध भी किया! फिर उपाध्यायों की चुगली और अपनी चिढ़ में आकर उसने राजाज्ञा द्वारा नेपाल के सारे पहाड़ों में हम जइसियों को अपूज्य बना दिया!"

"अच्छाऽऽ! तो यह बात!"—वह युवक एक साथ क्रोध और आश्चर्य से बोल उठा—"तब तो नेपाल का राजा सदा से ही हमारा दुश्मन है पंडितजी? और ये उपाध्ये लोग भी?"

"सो तो है ही नानी!"—उस युवक के उत्तेजनाभरे मन्तव्य का समर्थन करके सोमशंकर ने आगे कहा—"तुम्हें शायद मालूम नहीं कि कुमाऊँनी ब्राह्मण भी बहुत पहले उपाध्यायों के बराबर न थे! किन्तु 'विजयराज' नाम के कुमाऊँनी ने राणा जंगबहादुर के षड्यंत्र में उसका

साथ दिया ! और जंगबहादुर के नेपाल का प्रधान मन्त्री बनते ही वह राज-गुरु बना दिया गया ! और तब सारे कुमाऊँनी ब्राह्मण भी ऊँचे हो गये ! उपाध्यायों ने भी राज-भय से उन्हे बराबरी का मान लिया ! उपाध्यायों ने उनके साथ अपनी छोरियाँ भी ब्याहना आरम्भ कर दिया !"

"मगर पंडितजी ! कुमाऊँनी तो अपनी छोरी उपाध्यायो को नहीं देते ?"

सोमशंकर ने हँसकर जवाब दिया—"वे अब राजगुरु की जाति के जो ठहरे ! और मजाक की बात तो यह नानी, कि उपाध्याय लोग उन्हे छोरी तो देते हैं, परन्तु भात उनका नहीं खाते ! और बदले में कुमाऊँनी लोग भी उनका भात नहीं खाते !"

"जात के बनने और बिगड़ने का गजब पुराण है पंडितजी !"

सोमशंकर फिर हँसा । बोला—"सो तो है ही नानी ! तुम्हें शायद नेपाल के राणाओं का जाति-पुराण नहीं मालूम ? यह भी एक गजब पुराण है !"

"अच्छाऽऽ !"—उस युवक ने पुनः आश्चर्य प्रकट किया ।

और सोमशंकर ने तनिक हँसकर फिर कहा—"यह तो जानते ही हो नानी, कि हम लोग यहाँ 'खश' जाति को शूद्र मानते हैं ? मनुस्मृति मे भी खशो को शूद्र कहा गया है ! नेपाल के राणा-थापा लोग इन्हीं खशो की संतान हैं ! परन्तु राज पर अधिकार करते ही वे ऊँचे बन गये ! जंगबहादुर ने धोखे से प्रधान मंत्री की गद्दी हथियाते ही नेपाल के राजा 'राजेन्द्र वीर विक्रम शाह' से जबर्दस्ती 'राणा' की उपाधि ले ली ! और तब से नेपाल के राणाओं द्वारा यह प्रयत्न चालू है कि उदयपुर के राणा इन्हें अपने वंश का मान लें ! कई इतिहासकारों को घूस-रिश्वत देकर उन्होंने उदयपुर के राणाओं से सम्बन्ध जोड़ने वाली झूठी वंशावली भी तैयार कराई ! किन्तु फिर भी उनका यह प्रयत्न अब तक सफल न हो सका ! हाँ, नेपाल के 'तीन सरकार' बनकर

वे नेपाल में अवश्य सफल हो गये ! तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा नानी, कि खश-शूद्रों की संतान ये राणा लोग अपने 'राजगुरु' को भी अपने से नीचे आसन पर बैठाते हैं ! गोमांस-भक्षी किसी भोटियानी-तमाङनी रखेल के गर्भ से उत्पन्न राणाओं के सामने भी बड़े-बड़े विद्वान् तिलक-धारी उपाध्याय ब्राह्मणों को भी नीचे भूमि पर ही बैठना पड़ता है ! अब तुमने जान लिया न नेपाल की ऊँची जातियों का यह गजब पुराण ?" —कहकर सोमशंकर तनिक जोर से हँसा।

वह युवक भी जोर से हँसकर बोला—"हाँ, जान लिया पंडितजी ! मगर अब बिन्ती जरूर करूँगा कि आप पहाड़ के जइसियो को खूब तेजी से जगा दीजिए ! उन्हें समझा दीजिए कि हम पहले क्या थे ? और अब क्या हो गये ? और क्यों और कैसे इस हीन हालत मे हम आ गये ?"

सोमशंकर ने अब धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"सो ही तो कर रहा हूँ नानी ! मगर धीरे-धीरे कर रहा हूँ ! जोर से हो-हल्ला मचाकर काम करने पर अभी गडबड़ हो जायगा ! कुमाऊँनी राजगुरु है ! उपाध्यायों का पक्ष लेकर वह भी हमारे खिलाफ हो जायगा ! इनकी चुगली पर राणा-सरकार हमें 'थुन' देगी ! जेल मे जाने पर सब काम रुक जायगा ! इसीसे अभी चुपके-चुपके काम करना होगा ! देखो नानी ! नेपाल की राणा-सरकार उपाध्याय के छोरों को तो छात्र-वृत्ति देकर, खर्चा देकर, काशी में पढ़ने को भेजती है ! परन्तु किसी जइसी छोरे को राज की ओर से खर्चा नहीं मिल सकता ! क्योंकि वह अपूज्य है ! इसीलिए उपाध्याय लोगों में अधिक पढे-लिखे लोग हैं ! मैंने तो किसी तरह अपने 'बुवा' को राजी करके बड़ी कठिनाई से विद्या पढ़ी ! अब चाहता हूँ कि एक पाठशाला खोलकर जइसी बालकों को पढ़ाऊँ ! उन्हे ज्ञान की आँख दूँ !"

युवक प्रसन्नता से खिलकर बोल उठा—"यह तो बड़ा बढ़िया विचार है आपका ! तो हमारे ही गाँव में, मेरे ही दरवाजे पर पाठशाला

खोलिए न आप ! मै बुवा से आज ही कहूँगा !"

"हॉ, अवश्य कहना ! लक्ष्मी की तुम्हारे बुवाज्यू पर कृपा है ! तो कम-से-कम अपनी जाति का भी तो वे भला सोचे ? इस जाति को ऊँचा उठाने मे सहायता तो करे ? और हॉ, एक बात ! तुमने जो जयशंकर पत के पैरो पर मस्तक रखा सो मुझे तनिक भी पसद न आया ! तुम लोग अब जइसी पूज्यो के अतिरिक्त किसी अन्य ब्राह्मण के पैरों पर मस्तक न रखा करो ! समझे ?"

"समझा पडितजी !"—युवक सहमत और प्रसन्न होकर बोला—"मै तो ऐसा ही करूँगा अब से ! और दूसरे जइसियो को भी समझाया करूँगा !"

इस प्रकार के वार्तालाप में घटा-डेढ़-घंटा गुजर जाने के बाद पडितानी ने रसोई तैयार होने की खबर दी। पंडित सोमशकर ने झट एक धोती लाकर युवक को दी। स्वयं सक्षिप्त स्नान और सक्षिप्त सध्या-पूजा से निबटने के काम मे वह लग पड़ा।

(१७)

वर्षा-ऋतु आरंभ हो चुकी थी। पानी का सेक पा-पाकर पहाड के पेड़-पौधों में नया जीवन आ गया था। पौडी-नुमा खेतों में जीवन की हरियाली मुसका उठी थी। मकई की छोटी-छोटी पौद मानो जवानी मे कदम रखने के प्रयास में काफी ऊँची उठ चुकी थी। ढलानी खेतों पर लहराती और लहलहाती फसलें दूर-दूर से तिरछी बिछी हरी चादर-सी दिखाई दे रही थीं। और उस चादर के नीचे मानो सुख की अँगडाई लेती हुई किसानों की आत्मा मन-ही-मन मचल रही थी। मुसकरा रही थी। भविष्य को आशाभरे नेत्रों से निहार रही थी।

अपनी पैतृक संपत्ति में से हरिशकर के हिस्से में पचीस 'माटा मोरी'[1]

---

१. माटा मोरी = नेपाल के पहाड़ों में जमीन का लघुतम माप।

जमीन आई थी, जिसमें पॉच 'माटा मोरी' 'गहरी'[1] थी, और शेष 'पाखा'[2]। जयशकर के पास कई 'खेत'[3] जमीन थी, पर ल्याइता-पत्त का होने के कारण हरिशंकर के हिस्से में एक 'खेत' भी जमीन न आ सकी। लेकिन घर मे हेमा के आ जाने के बाद से वह खूब परिश्रमी हो चला था। 'पाखा' खेतो में मकई-मडुआ और उड़द-फापर आदि कुल मिलाकर पहले वर्ष में उसने तीस 'मोरी'[4] अन्न पैदा कर लिया। और 'गहरी' में दस मोरी धान। पाखा और गहरी में एक-डेढ़ मोरी जौ-गेहूँ भी पैदा कर ही लिया। इस प्रकार खाने का टोटा उसे न था। और हेमा एव कुसुमा जैसी परिश्रमी, सुशील और सुमिष्ट गृहिणियों के सहयोग और संपर्क में उसका जीवन अब खूब सरस, सुखी और समृद्ध हो चला। और साथ ही वह लोगों की ईर्ष्या का कारण भी बन चला। लेकिन फिर भी सिवा जयशंकर के कोई अन्य उसका बुरा न सोचता।

हरिशंकर अपने सारे परिवार के साथ आज किसानी में लगा था। उसकी मॉ मकई के खेत में मकई की जड़ों के आस-पास मडुआ के बीज लगा रही थी। यद्यपि मडुआ की पृथक् खेती भी थी, लेकिन मकई की फसल के पहले तैयार होने के कारण उसकी जड़ में लगाई गई मडुआ की बीज-पौद भी बाद में तैयार हो जाती है। इस प्रकार वह बित्ता भर जमीन भी व्यर्थ न जाने देती। हेमा और कुसुमा के साथ स्वयं हरिशंकर, 'गहरी' जमीन में धान की खेती में लगा था। वह स्वयं हल चलाकर खेत तैयार कर रहा था। तथा हेमा और कुसुमा खेत के

---

१. गहरी = धान उपजने वाली नीची जमीन।

२. पाखा = ऊपरी सूखी जमीन।

३. खेत = १०० माटा मोरी जमीन।

४. मोरी = अनाज का सबसे बड़ा नेपाली माप (लगभग दो मन के बराबर)। लघुतम माप 'मुट्ठी' (मुट्ठी भर अन्न)। १० मुट्ठी = १ माना; ८ माना = १ पाथी; २० पाथी = १ मोरी।

पास से बहते बरसाती नाले से पानी का कुछ अंश अपने खेत मे ले आने के प्रयास में नाली को दुरुस्त करने में लगी थीं। इस प्रकार जब नाली की धारा व्यवस्थित रूप से उसके खेत मे आने लगी, तब वे दोनों धान के 'बिउ' (बीज पौद) उखाड़ने मे लग पड़ी। यद्यपि कुल्लू के पहाड़ो की तरह नेपाल के पहाड़ो मे भी धान की खेती में सहकारी श्रम-विनिमय की प्रथा जहाँ-तहाँ मौजूद है, पर हरिशंकर के गाँव मे यह प्रथा शायद न थी। और यदि प्रथा रही भी हो तो वह स्वयं मुखिया का पुत्र होने के कारण कभी गाँव के सहकारी श्रम-विनिमय में शामिल हुआ न था। अतएव उसका अपना परिवार ही अपने काम मे लगा था।

हरिशकर ने जोत और पलोटकर खेत तैयार कर दिया। अपने बैलों को जगल में चरने छोड़ आया। हेमा और कुसुमा ने बीज की पौदे उखाड़कर अनेक मुट्ठे बनाकर तैयार कर दिये। दोपहर का समय हो चुका था। सवेरे का खाया-पिया अन्न-पानी अब तक गल-पचकर समाप्त हो चुका था। अब वे खेत से कुछ ऊपर पगडडी पर बड-पीपल के चबूतरे की छाया मे जमा हो गये। हरिशंकर की माँ भी वहाँ आ गई। डोके में मडुआ-मकई की रोटियों की तह मे 'गुंद्रुक'[1] का साग धरा हुआ था। अलग एक बडे 'ठेक'[2] मे मही (मट्ठा) भरी हुई थी, और एक ठेकी में दही भी। भोज्य सामग्री मे गुड़ की एक डली भी थी।

हरिशकर की माँ ने दो-दो रोटियाँ और 'गुन्द्रुक' का साग सबके हाथ में थमा दिया। दही की ठेकी हरिशंकर के आगे धर दी। गुड़ की डली में से जरा-जरा सबको देकर शेष हरिशंकर की ओर बढाते ही हरिशंकर ने मना किया—"सब चीज में से सबको बराबर-बराबर

---

१. गुद्रुक = राई-सरसो के पत्तों अथवा मूली की सुखाँट।

२. ठेक = लोटे की आकृति का लंबा-गोल काठ का गरदनदार बरतन जिसमें दूध, दही, घी और मही रखे जाते हैं। छोटे आकार के ठेक को 'ठेकी' कहते हैं।

बॉटो आमॉ! अमीरों के घर में खाने-पीने में भी भेद-भाव भले ही चले, मगर गरीबों के घर तो ऐसा होना न चाहिए?"

"दुत् लाटा!"—मॉ ने मीठी फटकार जताई—"तू मरद है! मरद का हक औरतों से जादा तो होता ही है!"—कहते हुए उसने वह शेष डली उसकी ओर फिर बढ़ाई।

मुँह का कौर निगलकर हरिशंकर ने बॉया हाथ हिलाते हुए फिर मना किया—"नहीं आमॉ! सबको बराबर-बराबर बॉटो! मैं तो कहता हूँ कि घर मे अगर भात भी बने तो सबके लिए! मगर तुम हो कि मानतीं ही नहीं!"

अब उसकी मॉ उस डली को हेमा के हाथ थमाते हुए तनिक तुनककर बोली—"ले जेठी! तू ही मना अपने मरद को! मेरी मानता कौन है?"

मॉ को नाराज होते देख हरिशंकर हँसकर बोला—"नहीं आमॉ! खाऊँगा तो तुम्हारे ही हाथ से! हम तो तुम्हारे बाल-बच्चे हैं! आमॉ को अपने बाल-बच्चों मे भेद-भाव तो न करना चाहिए? गुड़ और दही को बराबर करके बॉटो सबमें!"

मॉ मन-ही-मन निहाल हो मुसकाते हुए बोली—"तो मैं सब अपनी बुहारियों (बहुओं) में बॉट दूँगी! तुझे राई-रत्ती भी न दूँगी!"

हरिशंकर ने भी मुसकाते हुए सहमति जताई—"तो दे दो न! रोकता कौन है?"

"ले कांछी! ले जेठी!"—कहकर मॉ ने हेमा के हाथ से गुड़ की डली लेकर कुसुमा के आगे रख दी, और दही की ठेकी हेमा के आगे।

हेमा जरा आँखें तिरछी करके स्वर में कृत्रिम क्रोध भरकर हरिशंकर से बोली—"क्यों नखरे करते हो इतने! औरतें इतनी भूखी या लालची नहीं होतीं!" फिर सास से स्नेहभरे स्वर में—"ये न खायँ तो न सही! मगर हम तो अपनी आमॉज्यू के हाथ से ही खायेंगी!"—कहकर उसने दही की ठेकी अपनी सास की ओर बढ़ा दी, और कुसुमा ने भी

मुसकाते हुए गुड़ की डली बढ़ा दी।

"तो क्या मै ही सबमें भूखा, लालची और दलिद्री हूँ भाई ?"—हरिशंकर ने भी कृत्रिम क्रोध जताया।

हेमा हँसकर फिर बोली—"तो आमॉज्यू, अपने छोरे को न दीजियेगा ! न इन्हे भूख लगती है, न लालच !"—कहकर तनिक जोर से बिहुँस पड़ी। कुसुमा भी हँसी।

माँ अपने सौभाग्य पर मन-ही-मन उछलकर हरिशंकर के आदेशानुसार दही और गुड़ का बराबर भाग लगाती हुई मुसकाते हुए बोली—"ये तो यों ही नखरे करता है जेठो ! जीभ का ये इतना चटोर और लालची है कि अगर सुअर-मुर्गी का माँसू मिले तो उसे भी न छोड़े ! अपने जनेऊ का विचार भी न करे !"

हेमा और कुसुमा ठहाका मारकर हँस पड़ीं। और हरिशंकर ऊपर से नाराज होकर बोला—"अच्छा, बताओ तो आमॉ ! जनेऊ पहनने के बाद कब मैंने सुअर-मुर्गी का माँसू खाया ? तुम झूठ क्यों बोलती हो आमॉ ?"

"तूने इसलिए खाया नहीं कि नहीं मिला ! मिले तो कब छोड़ेगा तू ? और मिला भी तो जनेऊ से डरकर नहीं खाया साइत !"

माँ के इस अभियोग पर जनेऊ को पकड़ने का प्रयास करते हुए हरिशंकर नाराजी-भरे स्वर मे बोला—"तो कहे देता हूँ आमॉ ! जनेऊ मैं तोड़ दूँगा ! मैं डरता किसी से भी नहीं !"

और माँ झट उसका हाथ पकड़कर रोकते हुए बोली—"लाटा ! जूठे हाथ से जनेऊ छूयेगा ! धरम का ख्याल नही ! जनेऊ ने क्या बिगाड़ा तेरा ?...अच्छा, अभी पेट भर खा तू ! अब फिर कभी ऐसा न बोलूँगी !"

झगड़ा समाप्त हो गया। सबने बड़ी रुचि से गुड़-दही के साथ साग-रोटी खाई, और जी भरकर मट्ठा पिया।

भोजन के बाद अब सबको तमाकू की सुध आई। खेत की मेंड़

पर कडे की आग सुलग रही थी। चिलम-तमाकू साथ में था। कुसुमा ने झट चिलम भरकर ला दी। पारी-पारी से सबने धूम्र-पान किया। थकान मिटी। हरिशंकर आषाढ़ की उस धूप में कुछ देर उस छाया मे लेटने का लोभ रोक न सका। महिला-मडल भी विश्राम करने लगा। बीच-बीच मे चिलम भी भरी जाने लगी। बाल-बतियान का रग भी फिर जम चला।

अब हरिशंकर ने हेमा और कुसुमा से अनुरोध किया—"अच्छा भई! तुम दोनों एक गीत तो सुनाओ! सारी थकान मेरी मिट जाय! फिर चलेंगे खेत रोपने!"

और तब हेमा ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"कांछी सुनाएगी! इसका गला बडा मीठा है!"

"दीदी झूठ बोलती है!"—कुसुमा ने स्निग्ध स्वर मे प्रतिवाद किया—"मीठा गला तो है दीदी का कि पशु-पंछी भी सुनकर मोहित हो जायँ! और मैं तो 'पर्बते' (गोरखाली) गाना जानती भी नहीं!" और फिर हेमा से अत्यत प्यार और अनुरोध के स्वर में—"दीदी! तुम्हारा गीत सुनने को मन हमेशा तरसा करता है! मैं तो शहर में पैदा हुई! 'पर्बते' गाना जानती भी नहीं कि तुम्हारा साथ पूरूँ!" और फिर उसके गले से लिपटकर—"मेरी अच्छी दीदी! जल्दी सुनाओ न!"

और तब सास ने भी कुसुमा का साथ दिया—"जेठी! तू ही सुना! बड़ा मीठा गला है तेरा! 'साइला' और 'कांछी' को खुश कर दे!"

और तब हेमा ने अनुरोध अस्वीकार न करके अपने मीठे गले से गाना आरम्भ किया—

"माछीले फूल पारथो पानीमा,
आमा जस्तो नहुने सानीमाँ!··"

गीत के शेष अन्य पदों को गा-गाकर उपरोक्त दोनों पदों को बार-बार दुहराकर वह गाने लगी, ध्रुपद के रूप में। पास के पर्वत की चट्टानों

और वन-झाड़ियों से टकराकर उस गीत के स्वर और भी मधुर हो उठे। मानो चट्टानों और वन-झाड़ियों ने उन स्वरों को युगपत् दुहरा-दुहराकर हेमा का साथ पूरना शुरू कर दिया हो! गीत का शब्दार्थ था—"मछली ने पानी में फूल अर्थात् अंडे दिये। मगर अपनी माँ-जैसी सौतेली माँ नहीं होती।" लेकिन इन सीधे-सादे शब्दों का तात्पर्य बड़ा गहरा था। करुण भाव से परिपूर्ण! और खासकर मातृहीना कुसुमा के लिए! अर्थात् मछली ने अपने शरीर के फूल यानी कुसुम को पानी-रूपी सौत के हवाले कर दिया! लेकिन अपनी माँ-जैसी सौतेली माँ नहीं होती! कितना अच्छा होता यदि अपने शरीर के फूल को अपनी ही गोद में वह रखे होती!

कुसुमा की माँ ने कुसुमा को जन्म तो दे दिया, पर उसका लालन-पालन वह स्वयं न कर सकी! मछली की ही तरह उसने भी अपने शरीर के फूल को जैसे पानी में फेंक दिया! इस गीत ने कुसुमा के मानस-पट पर एकाएक उसके जीवन की वे सारी दुखभरी घड़ियाँ अंकित कर दीं जो सौतेली माताओं की क्रूरता की छाया में व्यतीत हुई थीं। उनकी स्मृति-मात्र से वह अधीर हो उठी। जैसे उन स्वरों के सवेग उष्ण-उष्ण आघात ने हिमवत् जमी स्मृति-शृंखला को पिघलाकर अथवा तोड़-फोड़कर एकाएक उसके हृदय को तरंगित कर दिया हो! वे तरंगें जैसे उछल-उछलकर उसके नेत्रों से बहने लगीं। उसने साड़ी-चोली का नेवारी पहिनावा त्यागकर पहाड़ी लिबास अब अपना लिया था। झट 'घलेक' से चेहरा ढककर वह चुपके-चुपके रोने भी लगी।

"अरी कांछी! तुझे हो क्या गया? रोती क्यों है?"—सास ने घबड़ाकर प्रश्न किया।

हेमा भी घबड़ाकर सहसा गीत बन्द कर उसे आश्चर्यभरी आँखों से निहारने लगी। लेकिन कांछी फिर भी रोती ही रही। और हरिशंकर की माँ, जैसे उसके रोने का कारण झट भाँपकर उसे गोद में खींचकर उसकी पीठ थपथपाते हुए गद्गद कंठ से अत्यंत स्नेहसने स्वर में बोली—

"नानी ! रोते नहीं ! क्या हुआ अगर तेरी अपनी आमॉ न रही ! बेचारी स्वरग सिधार गई, और तुझे अपनी सौत के हवाले छोड़ गई ! मगर मैं तो तुझे अपने पेट की छोरी से कम नहीं मानती ? मै तो तेरी सानी-मॉ नहीं नानी ? भगवान जानते हैं ! मैं तुम दोनों को बुहारी ही नहीं, बरन पेट की छोरी से भी अधिक मानती हूॅ नानी !"—कहते-कहते उसका स्वर और भी विह्वल हो उठा। उसने भी अपनी अश्रु-तरल ऑखे घलेक में पोंछीं।

हेमा की ऑखें भी तर हो उठीं। कुछ देर बाद कुसुमा के हृदया-वेग के शान्त होने पर हरिशकर की मॉ ने हेमा को मीठी फटकार सुनाई—"अब से तू कभी ऐसा गीत न गा जेठी ! ऐसा गीत गाकर मेरी छोरी को कभी मत रुला !"

और हेमा ने कुसुमा को स्नेह-भरी ऑखों से देखकर पूछा—"तुम्हें बड़ा दुख पहुॅचा बहिनी ! क्यों ?"

"नहीं दीदी !"—कुसुमा ने स्नेह-भरे गद्‌गद स्वर में प्रतिवाद किया—"दुख नहीं, सुख पहुॅचा है। स्वर्ग में बैठी आमॉ याद आ गई !"—कहते-कहते पुनः उसका स्वर भारी हो उठा।

कुसुमा ने शायद हेमा को दुख-दान के अभियोग से मुक्त करने के विचार से ही यह बात कही हो। लेकिन बिछुडे प्रियजनों की स्मृति में सुख के साथ दुख भी लिपटा होता ही है। बल्कि दुख उसका बाह्य आवरण है जिसके भीतर का सुख सहसा अनुभव नहीं हो पाता। उसका बाह्य रूप ही सहसा प्रबल होता प्रतीत होता है। उस स्मृति के पुष्प में दुख के कॉटे यों जुडे होते हैं जैसे गुलाब के फूल में उसके कॉंटे। किन्तु कॉटे सौरभ के माधुर्य में व्याघात नहीं डाल सकते। पर कुसुमा की स्मृति में सहसा सौतेली माताओं की क्रूरता ही प्रबल हो उठी होगी ! अपनी स्वर्गीया मॉ के प्यार का प्रसाद वह पा कब सकी थी ? 'आमॉं जस्तो नहुने सानीमॉं' इस वाक्य ने उस कल्पित अप्राप्त पवित्र प्यार की स्मृति को जैसे अचानक जगाकर उसे विह्वल बना दिया।

हेमा को प्रसन्न करने के विचार से ही शायद अपने उच्छ्वास पर काबू पाकर पुनः अनुरोध-भरे स्वर में वह बोली—"एक कोई गीत और तो सुनाओ दीदी !"

"मगर तुम रोने जो लगती हो ?"

"अब रोऊँगी नही ! कसम खाती हूँ !"

"अरी ! कसम क्यो खाती है ?"—हेमा मुसकाते हुए कहकर उसके अनुरोध का झट पालन करते हुए बोली—"ले, सुन ! इस बार तुझे धान का गीत सुनाती हूँ !"—कहकर वह एक दूसरा गीत अलापने लगी—

"धानको बाला लरी रऽ लरी कोदाको केसरी,
बइसालु जोबन सबइलाई आउँछऽ बइलंछऽ फूलसरी ।
मधुरऽ बेनी यो तीरथइमा घामइ रऽ लाग्दइनऽ,
हितको माया नभयेसम्मऽ रमाइलो लाग्दइनऽ ।"

अर्थात्—धान के बालों की लड़ियाँ और मड़ुआ के बाल के छिटके हुए गुच्छे कितने सुदर होते हैं ! जवानी का यौवन तो सबमें आता है, पर काल का घाम लगते ही वह फूल की तरह मुरझा भी जाता है ! यानी धान और मड़ुआ के बालों को हरियालो और सौदर्य काल के घाम में पककर मुरझा भी जाते हैं, किंतु प्रेम की मधुर त्रिवेणी के तीर्थ में काल के घाम का प्रवेश नहीं होता ! अर्थात् मधुर प्रेम में अमर, अखंड और अनन्त यौवन छिपा होता है। लेकिन यह प्रेम यदि परस्पर हित-भावना के आधार पर न हो तो उसमें माधुर्य नहीं होता ! रमणीयता भी नहीं आती ! वह अमर या चिर-यौवन नहीं होता !

यह गीत मानो उन सबके पारस्परिक प्रेम के लिए एक चुनौती थी, संदेशा था। हेमा लेकिन मुग्ध हो, आत्म-विभोर हो गा रही थी। वे तीनों मुग्ध होकर उस चुनौती और संदेशे को मानो जी-भरकर पी रहे थे। तृप्ति न थी। थकान न थी। हरिशंकर की माँ और कुसुमा को

आँखों में आँसू थे, पर हरिशंकर तनिक उदासीनता का नाट्य किये, आँखे नीची किये सुन रहा था।

गीत समाप्त होने पर कुसुमा एकाएक हेमा के गले से लिपटकर बोली—"मेरी अच्छी दीदी! कितना बढ़िया गीत सुनाया तुमने! अच्छा दीदी! अब हम चलें खेत रोपने! तुम मेंड़ पर बैठकर इसी तरह गीत सुनाती जाओ, और हम लोग बात-की-बात में खेत रोप लें!"

और हेमा ने स्नेहभरे स्वर मे सास से शिकायत की—"देखिए आमॉज्यू! यह छोकरी बीमार होकर रहेगी! शहर में पैदा हुई! बानिये की छोरी ठहरी! यह भला कैसे सकेगी खेत के काम मे हम लोगों के साथ? लाख मना करती हूँ, मानती नहीं! जरा आप ही समझाइये न आमॉज्यू! बड़ी हठी छोकरी है यह!"

और सास ने भी सहमति जताई—"कांछी! जेठी ठीक कहती है! तू अब से खेत का काम छोड़कर घर मे ही बैठी रह! घर मे भी तो बहुत काम-काज है! अगर कहीं तेरे सरीर में कुछ हो गया नानी, तो बड़ी आफत होगी!"

कुसुमा ने तुनककर उलहनाभरे स्वर में जवाब दिया—"आप मुझे इतना प्यार करके मेरे शरीर को बिगाड़िए नहीं आमॉज्यू! और दीदी तो यों ही झूठ बोलती है! पूछिए न! मैंने कितना 'बिउ' (बीज) उखाड़ा आज! मगर थकी तनिक भी नहीं!" और फिर अपने सुपुष्ट शरीर पर एक नजर डालकर—"देखिए न! जब से अपनी आमाँज्यू के पास आई हूँ, कितनी मोटी हो चली हूँ!"

"अरी नहीं!"—सास ने स्नेह-भरे स्वर में प्रतिवाद किया—"तू तो दुबली हो चली है कांछी! यों ही झूठ बोलती है तू भी!"

लाख मना करने पर भी कुसुमा भी रोपनी के काम में शामिल हो ही गई। यद्यपि रोपनी का काम केवल औरतों के जिम्मे होता है, लेकिन हरिशकर भी उनके साथ शामिल हो ही गया।

पास के एक दूसरे खेत में भी रोपनी चालू थी। खेत जयशंकर का

था, पर एक गरीब किसान ने उसे ठेके पर ले रखा था। उसकी पत्नी अपनी दो जवान बेटियों के साथ रोपनी मे लगी थी और वह बूढ़ा हल चलाने का काम पूरा करके खेत की मेड पर बैठा धीरे-धीरे चिलम का दम ले रहा था। खाँस रहा था। चिलम का दम लेने के बाद मानो शरीर मे कुछ दम आने पर वह भी, शायद अपना बनाया ही एक गीत गाने लगा—

"तीस मोरी खेतमा पचीस मोरी धान।
बीस मोरी ठेक भरदा बाकी कति जान ?
तीस पाथी हली भरछऽ बाकी साढ़े तीन !"

अर्थात्—खेत के मालिक ने तो तीस मोरी धान उपजने वाला खेत कहकर उसे बीस मोरी पर ठेका दिया! मगर उसमे उपज पचीस मोरी से ज्यादा नहीं होती! लेकिन बीस मोरी ठेका तो भरना ही पड़ता है! फिर बाकी क्या रहा? अर्थात्, साल भर की हड्डी-तोड़ मेहनत के बाद किसान के हिस्से मे कुल पाँच मोरी धान शेष रहा! उसमे भी हल-बैल का भाड़ा अथवा हल चलाने वाले की मजूरी में तीस पाथी यानी डेढ़ मोरी चला गया। फिर बाकी बचा कुल साढ़े तीन मोरी!

गीत की आवाज हरिशंकर के खेत मे भी स्पष्ट रूप से आ रही थी। बाँये हाथ मे बीज का मुट्ठा सम्हाले हुए क्षण भर धान रोपना छोड सीधी हो, दाँये हाथ से मुँह का पसीना पोछकर कुसुमा ने सास से पूछा—"आमॉज्यू! वह जो गीत में गा रहा है सो क्या सच है?"

"हाँ काछी!"—सास ने भी सीधी होकर जवाब दिया—"बिलकुल सच! तू तो शहर में पैदा हुई नानी! तुझे अभी क्या मालूम गाँव के गरीब किसानों का दुख? आखिर अमीरों के घर में धन इसी तरह तो इकट्ठा होता है?"

"मगर शहर का हाल तो मुझे मालूम है आमाँज्यू?"—कुसुमा ने जवाब दिया—"धन बटोरने का तरीका तो सब जगह एक जैसा ही होता

है? शहर के बड़े-बड़े साहूकार भी तो इसी तरह अमीर बनते हैं? किसी अभागे को कर्जा दिया, और फिर ब्याज-पर-ब्याज जोड़कर उसका सब कुछ लूट लिया! और तिसपर अपनी दुकानों की चीजें भी महँगे दाम पर बेचना! अपने बाप के घर रहते सब कुछ देख चुकी हूँ आमॉज्यू!"

उसकी सहृदया सास ने व्यथाभरे स्वर में समर्थन किया—"हाँ नानी! सच कहा तूने! इन गरीबों का भगवान ही मालिक!"

बात आगे न बढ़ी। कुसुमा चुपचाप व्यथाभरे दिल से हेमा की देखादेखी फिर खूब तेजी से रोपनी के काम में जुट पड़ी।

(१८)

पहाड़ की स्त्रियों में शायद ही कोई सूर्योदय से पहले शय्या का परित्याग न करे। हरिशंकर की माँ, हेमा और कुसुमा दो घड़ी रात रहते ही बिछौना छोड़कर गृह-कार्य मे लग चुकी थीं। गाँव के मुर्गे 'कुकड़ूँ कूँ-ऊँ-ऊँ' की ऊँची आवाज में मानो सबको शय्या छोड़कर गृह-कर्म मे लग जाने का आदेश और उपदेश दे रहे थे। हरिशंकर के पास न कोई 'कमारो' था, न 'कमारी'। काली-काली पाँच गायें थीं जिनमे दो सूखी हुईं और तीन दुधार। बैलों की एक जोड़ी के अतिरिक्त एक भैंस भी थी। तीन-चार बकरियाँ भी। हेमा ने झट चूल्हा जला दिया। मकई-मडुआ के फालतू 'पीठो' (आटा) में कन-भुस मिलाकर उन्हें ढोरों के लिए पकाने लगी। कुसुमा ने घर-बाहर झाड़ू देना शुरू किया। और हरिशंकर की माँ 'गोठ' (पशुओं का घर) में जाकर उन ढोरों की खोज-खबर लेने के बाद कल संध्या को जंगल से लाये घास-पात को उनमें बाँटने लगी।

लेकिन हरिशंकर फिर भी बिछौने पर पड़ा रहा। उसे जगाने या उठाने की किसी ने कोशिश न की। किंतु हेमा और कुसुमा पारी-पारी से अपने सोये पति के पैरों पर सिर रख आईं। पशुओं का दाना-पानी

तैयार हो जाने के बाद हेमा और कुसुमा ने 'डोको' मे पीतल के बड़े-बड़े गगरे डाले। फिर डोको मे नाम्लो लपेटकर उसे पीठ पर लाद, नाम्लो के बिचले चौडे भाग को अपने कपार से अटकाकर करीब दो फर्लांग दूर पानी लेने 'धारा'[1] की ओर चलीं। रास्ते में ही शौचादि से निबटकर वे 'धारा' के पास पहुँचीं। वह सूखा पहाड़ भी अब वर्षा के कारण काफी सरस हो चला था। अतः 'धारा' की धीमी-धीमी धारा आजकल कुछ तेज हो चली थी। यह धारा ही मानो सारे गॉव का जीवन थी। और ग्रीष्म ऋतु मे तो यह जीवन की सहारा 'धारा' और भी अमूल्य बन जाती। घडी भर रात रहते ही गॉव की स्त्रियॉ अपने गगरों में इस जीवन को बटोरने वहॉ एकत्र हो जाती। उस जीवन को एकत्र करने के ख्याल से उस धारा के नीचे ही एक कुड बना दिया गया था। लोहे के 'तापूके' से, पारी-पारी से, उस कुण्ड से जल निकाल-निकालकर वे उस समय भी अपने गगरे भरे जा रही थीं। और सवर्णों का कुंड होने के कारण कोई असवर्ण-अछूत उसमे से जल-ग्रहण का अधिकारी न था। अतः दमाई, सारकी, लुहार आदि अछूत स्त्रियॉ उस कुण्ड से कुछ दूर नीचे एक छोटी धारा से पानी लेने उस समय भी एकत्र थीं।

सवर्णों की धारा के पास हेमा और कुसुमा के पहुँचने से पहले ही उन दोनों की चर्चा छिड़ चुकी थी। एक महिला 'तापूके' के पानी से अपना हाथ-मुँह पखारते हुए चुपके-चुपके एक दूसरी महिला से कह रही थी—"दोनों जैसे लछमी और सरोसती की जोडी बनकर घर में आई हों! लछमी-सरोसती मे तो बैर-विरोध भी था बहिनी, मगर इन

१. पहाड़ मे से पानी की निकलती पतली धार को पश्चिमी नेपाल के पहाड़ों और कुमाऊँ मे 'धारा' कहते हैं। धारा के जल को संचित रखने के लिए कहीं-कहीं उसके नीचे पत्थर में बावड़ी-सा कुंड भी खुदा रहता है।

दोनों का प्यार देखकर तो छाती सीतल हो जाती है !"

और दूसरी ने हँसकर जवाब दिया—"मगर मुख्या के दिल मे तो आग जलती है, आग दीदी ! मगर कुसुमा ने खूब छकाया उसे ! मुख्या देखता ही रह गया ! और साइला का भाग जाग उठा ! जैसी आमॉ भली है वैसा ही छोरा भी ! बुढ़िया को बुढ़ापे में सुख लिखा था !"

फिर पहली ने कहा—"मगर मुख्या को अंत समय खूब दुख भोगकर मरना पडेगा बहिनी ! पाप का करम उसका नास करके रहेगा ! दो स्वास्नी (पत्नी) तो घर से निकल गई ! अब तीसरी 'घरती' की छोरी बची है ! मेरी तो छाती सीतल हो जाय बहिनी, अगर उसे कोई भगाकर ले जाय, या खुद ही कहीं भागकर वह चली जाय !"

"मगर भागकर जायेगी कहाँ बेचारी ?"—दूसरी ने जवाब दिया—"बाप ने उसे बेच दिया ! अड्डा-अदालत मुख्या के हाथ मे है ! और उस 'लाहुरे'[1] बेचारे की दुरदसा के बाद तो कोई जवान उस छोकरी की ओर नजर भी उठाकर देखने की हिम्मत न करेगा ! भगाने की बात तो दूर !"

अब पहली अपने स्वर में व्यथा भरकर बोली—"बेचारा 'लाहुरे' 'मोगलान' में जिनगी गुदास करके हजार-पाँच सौ कमाकर लाया था ! किस कुलगन में अभागे ने मुखया की 'काछी' को देखा कि बेचारे का सतियानास ही हो गया !"

"धरम से तो दीदी, मुख्या की कांछी उस लाहुरे की ही स्वास्नी है ? कांछी के बाप ने बचपन में उसके साथ ही तो ब्याह किया था उसका ?

---

१. भारत या विदेशों में नौकरी करने वाले को नेपाल के पहाड़ों में 'लाहुरे' कहते हैं। पंजाब-नरेश महाराजा रणजीत सिंह की सेना में नेपाली गोरखे भरती होने 'लाहौर' जाया करते थे। 'लाहौर' जाने वाले को 'लाहुरे' कहा जाने लगा। तब से यह शब्द उन सभी नेपालियों के लिए रूढ़ हो चला जो विदेशों में कहीं भी नौकरी करते हैं।

बेचारा परदेस मे मर-खटकर कई बरिस बाद कुछ ले-लेवाकर घर पहुँचा तो स्वास्नी भी छिन गई, और गाँठ का पइसा भी !"

"इसीसे तो कहावत है बहिनी, अपने पहाड़ की—'आयो लाहुरे बुटपट्टि कसेरऽ, गयो लाहुरे खरानी घसेरऽ !'[1]"

हेमा और कुसुमा के पहुँचते ही यह वार्तालाप बंद हो गया। हेमा को देखते ही पहली अपने स्वर मे स्नेह घोलकर बोल उठी—"तुम दोनो की जोड़ी देखते ही छाती सीतल हा जाती है बहिनी ! तुम दोनो जरूर से पुरूब जनम की सगी हो ! दोनो दोनों से बिछुडी थीं, सो विधाता ने फिर एक साथ कर दिया !"

"सगी से भी बढ़कर दीदी !"—दूसरी भी अब पीछे न रही—"सगी तो ब्याह के बाद बिछुड़ भी जाती है ! मगर इन दोनो का तो जैसे जीवन भर का साथ हो गया ! खायेंगी-पियेंगी तो साथ ! सोयेंगी तो साथ ! बिछौना छोड़ेंगी तो साथ ! और घर से बाहर निकलेंगी तो साथ ! जैसे डरती हैं कि कही कोई एक दूसरी को भगाकर ले न जाय !"—कहते हुए वह तनिक जोर से हँस भो पड़ी।

हेमा और कुसुमा ने जवाब मे केवल तनिक मुसकरा दिया। फिर वे दोनों, कुड मे से ताप्के से जल निकालकर हाथ-मुँह खूब अच्छी तरह धोकर, फिर माँज-माँजकर गगरों को चमकाने मे मशगूल हो पड़ीं। कुछ देर बाद पानी लेकर घर पहुँचीं ता भोर बिलकुल साफ हो गया था। उनकी सास मकई-मड़ुआ का आटा अलग-अलग गूँधकर रोटी पकाने में लग चुकी थी। और हरिशंकर बिछौने से उठकर शौचादि के लिए बाहर चला गया था।

उसके शौचादि से लौटकर आने के बाद माँ ने उसे आदेश

---

१. अर्थात्—लाहुरे पैरों मे बूट और कमर में पट्टी कसे हुए घर लौटा, लेकिन घर से फिर वापस हिन्दुस्तान गया 'खरानी' अर्थात् भस्म रमाकर ! अर्थात् कंगाल होकर !

दिया—"साइला ! तेरा चूल्हा जला दिया ! साफ करके चावल-दाल भी रख दिया ! झटपट दाल-भात बनाकर खा ले ! और चल खेत में ! आज जो थोड़ी रोपनी बाकी बची है पूरा कर लेंगे !"

लेकिन साहिला उन पकी रोटियों की ओर देखकर नाराज होकर बोला—"आमाँ ! बार-बार कहता हूँ कि मेरे लिए यह अलग टट-घट न करो ! क्या हुआ अगर मैं भी सबके साथ रोटी ही खाऊँ ?"

"अरे लाटा !"—माँ ने स्नेह-भरे स्वर में जवाब दिया—"तेरा तो खाया-पिया सरीर है ! सरीर का ख्याल तो रखा कर ! एक बखत तो तेरे लिए भात होना ही चाहिए ! हम औरतों की बात क्या ? जनम से ही रोटी की आदत पड़ी हुई है ! हाँ, कांछी को जरूर भात की जरूरत है ! इसे तो बाप के घर से ही भात खाने की आदत है ! मगर यह छोकरी भी तो नही मानती !"

"नहीं आमाँज्यू !"—कांछी ने प्रतिवाद किया—"मुझे तो रोटी खूब अच्छी लगती है !"

लेकिन हरिशंकर ने तर्जनी तानकर चुनौती दी—"अगर सबके लिए भात बने तभी मै 'भान्सा' (कच्ची रसोई) में पैर रखूँगा आमाँ !"

अब हेमा मुसकाते हुए व्यंगभरे स्वर में बोली—"आमाँज्यू ! अपने छोरे के लिए कहीं से एक खत्री की छोरी अब ला दीजिए ! ये भात से रिसाते इसीलिए हैं कि खुद हाथ जलाना पड़ता है !"

"तेरा मरद तैयार भी तो हो ?"

"तो घर को चिड़िया-घर बना दो आमाँ !"—हरिशंकर ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"फिर मैं जेठा दाज्यू से शास्तारथ करूँगा कि मैं बड़ा कि आप बड़े ?"—कहकर वह जोर से हँस पड़ा। माँ, हेमा और कुसुमा भी हँसीं।

विभिन्न जाति के इन चारों प्राणियों को एक परिवार मे एकत्र कर मानो भाग्य ने मखौल किया हो ! माँ मगरनी, जेठी पत्नी गुरुङसेनी, कांछी नेवारिन, और स्वयं गृहपति खत्री ! चारों की जात-भात अलग-

अलग, लेकिन चारों ही अनुपम स्नेह और संबंध के सूत्र में बँधे हुए!

हरिशंकर ने माँ के बहुत अनुनय-विनय के बाद सिर से गोल टोपी अलग की। बदन से 'भोटो' अलग किया। 'सुरुवाल' अलग करके धोती पहनी। फिर रसोई मे प्रविष्ट हो उसने दो तसलों मे अलग-अलग दाल-भात का अदहन डाला। उसमे दाल और चावल डाला। जलते चूल्हे मे कुछ और लकडी डालकर वह उकड़ूँ होकर बैठ गया। क्योंकि नेपाल की उच्चवर्णी प्रथा के अनुसार बगैर पूरी रसोई तैयार किये और भोजन किये चौके से कोई बाहर नहीं आता।

भात की तसली मे हरिशकर ने अब कलछी चलाकर मुसकाते हुए कहा—"आमाँ! भगवान ने भी कैसी माया रच दी हमारे घर मे! अगर सबको दाल-भात खाने की इच्छा हो तो अलग-अलग पूरे चार चूल्हे जलाने पड़े!"

माँ ने जवाब दिया—"तो क्या हो गया, अगर तनिक मेहनत और कर ही ली?"

"मेहनत की बात नहीं कहता आमाँ! बात इस परपच की है! किसी गरीब उपाध्ये बाहुनी को रख न लो! सबका काम चल जायगा! वह 'भान्सा' कर दिया करेगी! हम सब खायेंगे!"

"इतनी-सी बात के लिए एक और परानी का खरच बढ़ाने की क्या जरूरत साइला?"—माँ ने जवाब दिया।

"तो सिरफ मेरा ही भात पकाने के लिए एक खत्री छोरी लाने की क्या जरूरत आमाँ?"

"अरे लाटा! तू तो··"

हरिशंकर की माँ की बात जैसे मुँह में ही रह गई। आँगन में एकाएक एक आदमी के आ-धमकने और धमकीभरे शब्दों की आवाज घर के अदर पहुँची। हेमा ने घर के भीतर से ही बाहर झाँका। वह तो अवाक् रह गई। घबड़ाकर बोल उठी—"सिपाही! सिपाही आया आमाँज्यू!"

और दूसरे ही क्षण आँगन में से सिपाही ने रोबभरे स्वर में फिर आवाज लगाई—"हरिशंकर खत्री !!! 'मियाद सम्मन' आया !! हाजिर हो !!!"

जैसे घर के द्वार पर बम का धड़ाका हो उठा हो! एकाएक घबड़ाकर सब-की-सब बाहर दालान में आ गईं। भय और आश्चर्य की आँखो से सिपाही को वे देखने लगीं। सहमा किसी के मुँह से कोई आवाज न निकल सकी। कुछ पूछने का साहस न हुआ। और हरि-शंकर भी अकचकाकर रसोई मे बैठे-बैठे ही बाहर की ओर झाँकने लगा।

"अरी! तुम लोग मुझे क्या देखती हो? हरिशंकर को बाहर बुलाओ! 'मियाद सम्मन' पर निशान लगाना पडेगा!"—सिपाही ने एक बार हेमा और कुसुमा पर रोबभरी सतृष्ण आँखे डालकर धमकीभरे स्वर मे आदेश दिया।

"कैसा मियाद सिपाहीज्यू?"—हरिशकर की माँ ने मारे भय के थर-थर काँपते हुए विनम्र स्वर मे प्रश्न किया।

"कैसा मियाद सिपाहीज्यू!"—सिपाही ने लेकिन मुँह बनाते हुए ऐंठकर रोबीले स्वर में जवाब दिया—"मुख्या बाजे का कर्जा खाया सो क्या नहीं मालूम तुमको? याद नहीं तुमको? बुलाओ बेटे को! यहाँ इस कागज पर अँगूठे का निशान वह लगा दे, और सात दिन के भीतर अड्डे में हाजिर हो जाय! नहीं तो 'मियाद सम्मन' का यह कागज तुम्हारे द्वार पर 'टाँस' (चिपका) दूँगा! और तुम्हारी सारी जमीन-जायदाद और यह घर-बार कुर्की में स्वाहा हो जायगा! समझी?"

हरिशंकर की माँ अब एकाएक अत्यधिक घबड़ाकर बोली—"आमइ![1] कुर्की? कुर्की क्यों होगी सिपाहीज्यू? हमने कर्जा चुकाने से

---

१. अत्यधिक भय या आश्चर्य के समय नेपाली (गोरखाली) लोग 'आमइ!' या 'बाबइ!' उच्चारण करते हैं।

इनकार कब किया सिपाहीज्यू ?"

सिपाही लेकिन फिर भी रोबभरे अशिष्ट लहजे में बोला—"जा ! अपने छोरे को तो बुला ले आ ! बात मत बना ! कर्जा चुकाना हो तो जाकर अड्डे मे चुका ! मुख्या बाजे के पैर पकड़ ! मै तो सिरफ हरिशंकर को चाहता हूँ अभी !"

हरिशंकर से अब रसोई मे बैठा न रहा गया। वह एकाएक उठकर वायु-वेग से बाहर आ गया। सिपाही के सामने तनकर खड़ा हो गया। आँखें तरेरकर जैसे घृणा और क्रोध की चिनगारियाँ बरसाते हुए बोला—"यह लो, आ गया हरिशकर ! तुम्हारा 'ज्वॉइ' ! तुम इस तरह ऐंठकर बोलते क्यों हो सिपाही ?"

"तो कैसे बोलूँ ? तुम्हीं बताओ न ?"—राज-बल के सहारे के मद में जैसे चूर सिपाही ने पुनः मुँह बनाते हुए ऐंठकर जवाब दिया।

हरिशकर की क्रोधाग्नि मे जैसे घी का भरा घड़ा उँडेल दिया गया। एकाएक क्रोधोन्मत्त हो सिपाही के गले मे हाथ डालकर दूसरे हाथ से उसे ठेलते हुए बोला वह—"भाग जॉटा, मेरे द्वार से ! जा अपने बाप मुख्या बाजे के घर ! तेरा बाप खुद आयेगा कर्जा वसूलने तो पूछूँगा उससे !"

हरिशकर के रोब ने सिपाही के रोब को एकाएक ठढा कर दिया। बल्कि हरिशंकर के क्रोध का नशा और भी तीव्र हो उठा। उसे खूब जोर की गरदनियाँ देते हुए ताबड़तोड़ उसपर मुक्के भी बरसाने लगा। नई जवानी का खून ! शरीर से खूब तगडा ! सिपाही को ठेलते धकेलते हुए वह जयशंकर के दरवाजे तक ले गया। जयशंकर उस समय दालान मे गुंद्री पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था।

जाते ही वह जयशकर पर बरस पड़ा—"दाज्यू ! तुम अब इस कमीनापन पर उतर आये ? अब इन सरकारी कुत्तों से हमे बेइज्जत कराने पर उतर आये ? यह जॉटा कुत्ता मेरी आमॉ से ऐंठकर बोल रहा था ! तुम मेरे बड़े भाई हो ! मेरी आमॉ धरम से तुम्हारी भी आमॉ

है ! वह भी आखिर शिवशंकर पंत को ही हाथ-धरी है ! तुमने कभी मेरे सामने कर्जा की चर्चा तक न की ! और एकाएक दौड पडे अड्डा-अदालत में ! जेठा भाई होकर भी इस कमीने ढग से मुझे बेइज्जत कराने पर तुले हुए हो तुम !"—कहते हुए वह क्रोध से थर-थर कॉपने लगा ।

सिपाही को हरिशंकर के अत्युग्र स्वभाव, साहस और शारीरिक शक्ति का परिचय न था । लेकिन परिचय की पहली किस्त ही उसके लिए कम भयजनक न थी ! और तिसपर 'अतिप्रचंड-भुजदंड' मुखिया जयशंकर को भी यह छोकरा उसके मुँह पर ही उस कड़े लहजे में फटकार रहा था ! दूसरे के बल पर भौंकने वालों का स्वभाव कुत्तों के स्वभाव से बेहतर नहीं होता । सिपाही खूब डर गया । उसकी तनी दुम एकाएक टॉगों में घुसकर जैसे पेट से जा सटी ।

अब वह एकाएक डरकर हाथ जोड़कर मुखिया से गिड़गिडाते हुए कहने लगा—"देखिये हजूर ! देखा जाय हजूर ! आपका यह भाई मेरी जान लेना चाहता है ! मेरा खून करना चाहता है ! आखिर मैंने क्या कसूर किया ? सरकार बहादुर का नौकर हूँ ! सरकार बहादुर का नमक खाता हूँ ! सरकार बहादुर का हुकुम लेकर ही तो यहॉ आया ? मैंने क्या कसूर किया हजूर ?"

"हजूर के बच्चे ! सरकार बहादुर के कुत्ते !"—हरिशंकर फिर उसे एक जोर की गरदनियाँ देकर बोला—"सरकार बहादुर का हुकुम लेकर आया तो बेइज्जत करेगा सबको ! जा, भाग यहॉ से कुत्ते !"

और मुखिया तो हरिशंकर की उस उग्र मूर्ति को देख हक्का-बक्का भौंचक्का रह गया । सहसा उससे कुछ बोला न गया । हुक्का पीना छोड़कर हरिशंकर को आश्चर्य और भय की ऑखो से वह देखने लगा ।

हरिशंकर अब तर्जनी तानकर हिलाते हुए क्रोधभरे स्वर मे चुनौती देते हुए बोला उससे—"देखो दाज्यू ! कसम खाकर कहता हूँ ! मै भी

शिवशंकर पंत का छोरा हूँ! भले घर की इज्जत का मोल जान के मोल से भी जास्ती होता है! अगर तुम इस तरह मेरी बेइज्जती पर उतर आये तो मै खुद खून हो जाऊँगा, मगर पहले तुम्हारा खून करके रहूँगा! समझे ?"

इतना कहकर उसने एक बार अगल-बगल देखा। उसके पीछे-पीछे उसकी माँ, हेमा और कुसुमा भी दौड़ती हुई आ पहुँची थी। उसने हेमा को उद्देश करके कहा—"जेठी! जरा ले तो आ मेरी खुकुरी! आज काली माई को एक बेईमान बदमाश आदमी की बलि चढ़ाऊँगा! आज इस पापी का खून करके रहूँगा!"

क्षण भर पहले हरिशंकर ने खून की केवल चुनौती दी थी, लेकिन क्षण भर बाद ही इस चुनौती को कार्यान्वित करने को भी वह तैयार हो चला। इस चुनौती और आदेश को सुनते ही मारे भय के मुखिया के सारे बदन मे पसीना आ गया। वह हरिशंकर के प्रचंड उद्दड स्वभाव से परिचित था। वह जानता था कि क्रोध आने पर उस अक्खड़ उद्दंड मिजाज के युवक को आगा-पीछा दिखाई नहीं देता! इस शेर को इस कौशलविहीन तरीके से छेड़ने मे उसे एकाएक अपनी गहरी भूल भी महसूस हुई। और जब उसने देखा कि हेमा भी पति के आदेश पर घर से खुकुरी ले ही आई तो मारे आतंक के उसका भय कई-गुना बढ़ गया। हेमा-जैसी गंभीर सुंदरी महिला मे ऐसी उग्रता की कल्पना उसने की न थी। उसका जेठा पुत्र अपने गाँव से दो-तीन दिन के रास्ते पर 'पोखरा' नामक स्थान में संस्कृत पढने गया था। जेठी और माहिली मायके जा चुकी थीं। कांछी मे साहस का अभाव था। कमारे उससे मन-ही-मन चिढ़े थे। और खेतों मे काम पर भेजे भी जा चुके थे। अतः इस मुसीबत से उसे त्राण करने वाला उसका अपना कोई वहाँ न था।

इधर हेमा भी झट घर से खुकुरी ले आकर अपने पति के हाथ की ओर उसे बढ़ाती हुई खूब क्रोधभरे स्वर मे बोली—"लो जी! खून

कर दो इस पापी का ! गॉव की एक बला टल जाय ! इसके चलते चाहे हम सब बरबाद ही हो जायँ ! हम सबका खून भले ही हो जाय ! मगर एक पाप तो टले गॉव के सिर से ! इसके चलते कुछ भी हो जाय ! फिकर नहीं ! परवाह नहीं !"

हरिशंकर अगर 'बीस' तो हेमा जैसे 'तीस' साबित हुई ! जलती आग मे उडेले गये घी के भरे घडे-जैसी ! लेकिन हरिशकर की मॉ हेमा के हाथ से खुकुरी छीनते हुए क्रोधभरे स्वर में बोली उनसे—"तुम क्या दोनों ही पागल हो गये जेठी ? आगा-पीछा नहीं दिखाई देता तुम दोनों को ?"—कहकर उसने खुकुरी हेमा के हाथ से छीन लेने की जोरदार कोशिश की। छीनने में सफल भी हुई।

हेमा का ऐसा रूप किसी ने अब तक देखा न था। मारे क्रोध के परम सुन्दरी दुर्गा ही मानो स्वय चंडी की मूर्ति बनी वहॉ खड़ी हो ! जयशकर तो अब तक आधा बेहोश भी हो चला था। लेकिन हेमा के हाथ से उसकी सास को खुकुरी छीनते देख, और उसकी वाणी सुनकर उसका होश जैसे फिर पलट आया।

"कांछी आमॉ !"—अब वह भय से थर-थर कॉपते हुए हरिशंकर की मॉ से उलहनाभरे स्वर में बोला—"देखो अपने छोरे की करतूत ! मुझे खून करने चला है ! ऐं ! ऐसा अन्याय ! मैंने कर्जा देकर तुम लोगों को चोरी के मुद्दे से बचाया ! जेल में थुने जाने से बचाया ! उसका ऐसा बदला ? ऐं ! मुझे खून करने चला है ! रोको अपने छोरे को ! नहीं तो..."

जयशंकर की मनोदशा एकाएक हरिशंकर की भोली-भाली सहृदया मॉ का सहारा पाकर उस धृष्ट व्यक्ति की-सी हो चली जो शत्रु के पजे से तनिक मुक्त होते ही उसे जवाबी चुनौती भी देने लग जाता है। पर हरिशंकर, जयशंकर की 'नहीं तो...' इस असंपूर्ण चुनौती को झट स्वीकार करते हुए उसपर टूट पड़ा।

"नहीं तो, क्या ? मैं अभी तेरा गला दबाकर मारूँगा बदमाश !"—

कहते हुए हरिशंकर दोनों हाथ के अँगूठे और तर्जनी को गोल किये हुए ज्यों ही जयशंकर की ओर बढ़ा कि उसकी माँ झट बीच में आकर बोल उठी—"पहले मेरा खून कर ले साइला ! फिर अपने दाज्यू का खून करना ! कुछ भी है, तेरा बडा भाई है ! मेरे मायके का नास कराकर अब अपने कुल का नास करने चला है कुकरमिये ?"—कहकर रोते हुए उसने अभी-अभी हेमा के हाथ से छीनी म्यान-सहित खुकुरी को हरिशंकर की छाती मे भिड़ाकर पूरे जोर से उसे पीछे की ओर धकेल दिया।

हरिशंकर मानो माँ का मान रखने के लिए ही कुछ कदम पीछे हट गया। लेकिन अब तक सोमशंकर जइसी और पड़ोस के दूसरे लोग भी वहाँ इक्ट्ठे हो गये। उन सबको देखकर जयशंकर का साहस पलटा। लेकिन फिर भी भय न मिट सका।

उन सबसे हाथ जोडकर आँखों में आँसू भरकर अब वह फरियाद करने लगा—"देखो भाइयो, देख लो ! यह हरिशंकर मेरा खून कर रहा था ! खून करने चला था ! आप लोगो को अगर विश्वास न हो तो अभी भी उसकी आमाँ के हाथ में थमी खुकुरी को देख लो ! हत्यारा ! शैतान ! चोरी भी, और सीनाजोरी भी ! पैसा भी खा जाय, और माँगने पर खुकुरी लेकर खून पर उतर आये ! उलटे चोर खारदार को डाँटे ! कलियुग का जमाना है ! मैने रुपया देकर इन दोनों खसम-स्वास्नी को चोरी के मुद्दे से बचाया ! उसी का यह फल ? दोनो ही आ गये खुकुरी निकालकर मुझे खून करने ! उपकार का जरा भी ख्याल नही बेईमानों को ! कलियुग में किसी का उपकार न करना चाहिए ! नहीं तो तुम्हारी वह जान ले लेगा ! खून कर देगा ! ···रुपये का तगादा कई बार किया ! मगर जब नहीं मिला तो हारकर मैंने अड्डे में बिन्तीपत्र दे दिया ! मैंने बुरा क्या किया ? लेन-देन में तो होता ही है ऐसा ? अगर असामी कर्जा चुकाने से इनकार करे तो क्या अड्डे में भी न जाया जाय ? अगर···"

"बस दाज्यू !"—हरिशकर बीच में ही उबल पड़ा—"सबके सामने ऐसा सफेद झूठ न बोलो ! जीभ गलकर गिर जायगी तुम्हारी ! तुमने कब तगादा किया मुझसे ? झूठे ! बेईमान ! खुद तो कलजुग की मूरत बने बैठे हो, और दूसरे के सिर कलजुग का दास मढ़ते हो ? छी !" फिर वह एकाएक अपनी माँ के हाथ से खुकुरी छीनते हुए आँखों से क्रोध बरसाते हुए बोला—"मैं इस पापी का खून करूँगा सबके सामने ! इसे इसके पाप का फल अभी चखा के रहूँगा !"

लेकिन माँ ने खुकुरी नहीं छोड़ी, और अब सोमशंकर भी बीच में आकर हरिशंकर को रोकने लगा।

अपने बेटे के तनिक शांत होने पर अब हरिशंकर की माँ भी जयशकर को झूठा करारते हुए बोली—"यह तो सरासर झूठ है जेठा ! तुमने रुपइयाँ की तो कभी चर्चा भी न की ? हमसे तो यह भी नहीं बताया कि मै अड्डा में बिन्ती-पत्तर देने जा रहा हूँ ?" फिर अपनी दोनों बहुओं से—"क्यों जेठी, तुमसे कभी माँगा इसने रुपइयाँ ? क्यों काछी, तुमसे माँगा कभी ?"

दोनों ने इनकार मे सिर हिला दिया। कुसुमा शरमाकर मुँह छिपाकर जरा पीछे हट गई। लेकिन हेमा बोल उठी—"कभी नहीं ! झूठे की बात बिलकुल झूठ ! कभी किसी से चर्चा तक नहीं की !"

और जयशंकर ने दूसरे लोगों की उपस्थिति से खूब साहसी बनकर इस अभियोग से साफ इनकार करते हुए उलटे उन्हें ही डाँटा और धमकाया भी—"मैं झूठा ? और तुम लोग सच्चे ? कलियुग है न ? मगर कलियुग है तो क्या ? इस पाप का फल तुम लोगों को जरूर मिलेगा ! जरूर भोगना पड़ेगा ! पछताओगे तुम लोग !"

हरिशंकर के क्रोध की अब सीमा न रही। वह माँ के हाथ से लपककर खुकरी छीनकर यह कहते हुए जयशंकर की ओर फिर दौड़ पड़ा—"डर दिखाता है बेईमान ! हरिशकर को नहीं जानता तू ? न वह खुद खून होने से डरता है, न किसी पापी का खून करने से ! पापी,

आज तेरा खून कर दूँगा ! गाँव के सिर से, समाज के सिर से एक आफत, एक बडा पाप हमेशा के लिए खतम हो जायगा ! इस तरह सफेद झूठ बोलकर ऐसा बड़ा पाप करने की कोई हिम्मत तो नहीं करेगा ? वेईमान !"

हरिशंकर अब तक जयशंकर की शिखा पकड़ चुका था। वह उसके गले पर खुकुरी का प्रहार करना ही चाह रहा था कि जयशंकर के आर्तनाद और एक परम अनर्थ की संभावना से भयभीत हो इस बार हरिशंकर की माँ और सोमशंकर के अलावा दूसरे लोग भी झट बीच मे आ गये। उन्होने मिलकर टाँग पकडकर हरिशंकर को खीच लिया। उसके हाथ की खुकुरी भी झट छीन ली। और इस प्रकार मृत्यु के मुख से जयशंकर का तत्काल उद्धार हो गया। हरिशंकर को ठेलते हुए वे दूर ले चले। बडी मुश्किल से वातावरण कुछ शान्त हो सका। हरिशंकर की रसोई लेकिन रसोई-घर मे ही रह गई। और उस सारे परिवार का खाना उस दिन हराम हो गया। और उस दिन उनका खेती का काम भी इस दुर्घटना का शिकार बनकर ठप्प हो गया।

(१९)

जयशंकर ने हरिशंकर से कसकर बदला चुका ही लिया। अपने उस अपमान का क्रूर कठोर दड उसने उसे दे ही दिया, उनकी रोटी का सहारा छीनकर ! इससे बढ़कर क्रूर, कठोर दंड और होता ही क्या है ? भूख और स्वल्पाहार से तिल-तिलकर मरने से कहीं बेहतर होता है एकबारगी ही मर जाना। लेकिन जीने का मोह बड़ा प्रबल होता है। हरिशंकर मे यह मोह प्रबल न था, किन्तु उसकी माँ अपने एकमात्र पुत्र को किसी भी तरह जीवित देखने की नैसर्गिक मातृ-लालसा से परिपूर्ण थी।

हरिशंकर में जवानी का जोश था, क्रोध की प्रचंड उग्रता थी, और साथ ही अत्यन्त सरलता भी। जयशंकर में ठीक इनके विपरीत

तत्त्वों का समावेश था। अब वह बूढ़ा हो चला था, पर शायद ही जवानी में भी जवानी का जोश उसमें कभी प्रविष्ट हुआ हो! क्रोधी वह अवश्य था, पर शायद ही कभी क्रोध बेमौके उसे आया हो! और सरलता तो उससे उसी प्रकार सदा के लिए दूर भाग चली थी जिस प्रकार हेमा जिम्मावाल से! दूसरों की मजबूरी की तरह दूसरों की सरलता भी उसके जीवन की शिकार थी। हरिशंकर अपने जोश, क्रोध और सरलता के कारण अब पूरी तरह मजबूर बन गया था। और इस मजबूरी का शिकार बनकर वह जयशंकर का अब पूर्ण शिकार बन गया। लेकिन उसकी माँ ने जयशंकर के पैरों पड़कर, गिड़गिड़ाकर, माफी माँगकर अपने पुत्र को पूरी तरह जयशंकर का ग्रास बन जाने से बचा लिया। किन्तु फिर भी वह चबाया जा चुका था। रक्त उसका चूसा जा चुका था। अब केवल अपनी संतान का कंकाल ही जैसे उस जननी के जीवन की सान्त्वना, आशा और भरोसा रह गये थे।

हरिशंकर की माँ के बहुत अनुनय-विनय के बाद जयशंकर ने मुकदमा वापस अवश्य ले लिया, किन्तु सादे कागज पर लिखे उस पाँच सौ के कर्ज को उसने मुफ्त में वापस लेने अथवा माफ करने से इनकार कर दिया। और सूद-दर-सूद के साथ उस कर्ज को पूरे एक हजार बनाने की बुद्धि उसने वापस नहीं ली। अपना दावा उसने वापस नहीं लिया। फलतः माँ के अनुनय-विनय और आत्महत्या की धमकी में आकर हरिशंकर को वह सारा कर्ज चुकाना ही पड़ा। और तिसपर हरिशंकर ने उस सरकारी सिपाही को पीटा भी था। जयशंकर के उकसाने पर अड्डे की ओर से तत्काल हरिशंकर की गिरफ्तारी का मियाद-सम्मन आ गया। हरिशंकर की माँ ने मुखिया के पैरों पड़कर बड़ी आर्जू-मिन्नत की। इस मामले को शांत करने में जयशंकर से ही कर्ज लेकर घूस-रिश्वत में सौ-डेढ़-सौ रुपये भरने पड़े। और इन सारे रुपयों के भुगतान में केवल पाँच माटा मोरी 'पाखा' जमीन और घर-द्वार के अतिरिक्त अपनी सारी जमीन से उसे हाथ धोना पड़ा। अब

वह एक अच्छे खाते-पीते किसान से सहसा कंगाल बन गया। इस प्रकार उसकी अल्हड़ जवानी के अहंकार को जयशकर ने जैसे पूरी तरह कुचल दिया!

पं० सोमशकर ने बडी सहृदयता से उसे दिलासा दिया—"साइला! शैतान ने तेरा सर्वनाश अवश्य कर दिया, परन्तु मै तुझे भूखो मरने नहीं दूँगा! तू खत्री है, मै ब्राह्मण हूँ! परन्तु हूँ तो एक ही बाप की संतान! मै जयशकर नहीं हूँ! मुझपर विश्वास रख तू! मेरी सारी जमीन को अपनी ही जमीन मानकर अब उसी मे किसानी किया कर! कथा-पुराण और पाठशाला के काम से मुझे खुद फुरसत नहीं! मेरे कई कमारे हैं! उनकी मदद से मेहनत से खेती कर, और कुछ मुझे दे दिया कर, और कुछ खुद लेकर सुख से गुजारा किया कर! अब अधिक चिन्ता से कोई लाभ नही साइला!"

"माइला दाज्यू!"—साहिला ने मसोसते दिल से जवाब दिया—"इस जीवन से तो मरना कहीं अच्छा! यही तो कि खून के बदले मे खून हो जाऊँगा? मगर इस दुख से छुटकारा तो मिल जायगा? एक पापी को उसके पाप का फल तो मिल जायगा?"—कहते-कहते उसकी आँखों मे एकाएक क्रोध उतर आया।

"पाप का फल तो उसे अवश्य मिलेगा साइला!"—सोमशकर ने उसे समझाते और शान्त करते हुए फिर कहा—"किन्तु अब व्यर्थ के क्रोध को भूलकर सब कुछ भगवान पर छोडकर निश्चिन्त हो जा! आखिर भगवान के भी तो आँखे हैं? वह देखता अवश्य होगा! वह कभी-न-कभी न्याय अवश्य करेगा!"

"नहीं माइला दाज्यू!"—हरिशकर ने दृढ़ स्वर में प्रतिवाद किया—"उसके आँखें नहीं हैं! और अगर हैं भी तो अंधी हैं! नहीं तो ये बदमाश लोग इतनी बदमाशी और पाप करके भी सुखी क्यों रहते?"

"सुखी इसलिए हैं कि पूर्व जन्म का पुण्य अभी शेष है साइला!

किन्तु शास्त्र मे लिखा है कि अन्याय से उपार्जित धन और सुख अधिक दिन टिकाऊ नहीं होते ! जयशकर के पाप का घड़ा अभी खूब भरा नहीं है ! जब पाप उसके ऊपर तक आ जायगा वह घड़ा भी फूटेगा अवश्य ! और उस पाप के विष मे जयशकर का सत्यानास भी होगा अवश्य ! तू विश्वास रख साइला !"

"नहीं माइला दाज्यू ! विश्वास मुझे नहीं होता !"

"विश्वास करना ही चाहिए ! शास्त्र का वचन मिथ्या नहीं होता !"

"नहीं होता होगा ! मगर मुझे तो अब भी विश्वास नहीं होता ! उसके पाप से तो अब तक जाने कितने घडे भर चुके होंगे माइला दाज्यू ! मगर उन घड़ों को फोड़ने की हिम्मत अब तक कोई कर नहीं सका ! अब उन घड़ो को फोड़ने के लिए हरिशंकर का एक ही हाथ काफी है दाज्यू ! हुकुम दीजिए न ! एक ही हाथ में उन पाप के घड़ों को फोड़कर मै मिट्टी मे मिला दूॅ ! यही तो कि मैं खुद खतम हो जाऊॅगा, मगर दुनिया तो सुख से रह सकेगी ?"

"अब व्यर्थ का क्रोध नहीं करते नानी !"—सोमशंकर ने अब प्यारभरे स्वर मे समझाया उसे—"अपनी आमॉ का तू एक ही छोरा है साइला ! अपनी आमॉ का तो ख्याल कर ! उनकी क्या दशा होगी, इस बात पर तो विचार कर !"

इतने में उसकी मॉ भी वहॉ आ पहुॅची। उम्र अभी चालीस से अधिक हुई न थी, लेकिन इन दिनों मारे चिंता और व्यथा के बुढ़ापा उसके चेहरे पर खूब उभर आया था। व्यथा की रेखाएॅ मूर्तिमान हो उठी थीं।

आते ही वह व्यथा-भरे स्वर में बोली—"जरा इसे समझाओ न माइला, कि अब जो कुछ होना था हो चुका ! इसने खाना-पीना तक तियाग रखा है ! और इसके पीछे जेठी और काछी ने भी ! जरा सरीर का तो ख्याल रखा करे !"—कहते-कहते उसकी ऑखों मे दर्द के ऑसू भर आये।

हरिशंकर केवल एक बार अपनी माँ की आँखों मे देखकर सिर झुकाये बैठा रहा। और सोमशंकर उन आँसुओं से पसीजकर बोला—"सो ही तो इसे समझा रहा हूँ कांछी आमाँ! और मैने अपनी सारी जमीन अब साइला को सौप दी है! अब यही उसे जोते-फोड़े और उपजाये! जितना मुझे देना हो देकर बाकी से खुद गुजारा करे! गुजारा तो हो ही जायगा काछी आमाँ! फिर व्यर्थ का इतना क्रोध और शोक करने से अब लाभ क्या?"

सोमशंकर की बात से माँ को बडा ढाढ़स मिला। एकाएक उसके चेहरे की झुर्रियाँ मानो मिटती हुई प्रतीत हुई। उसकी धसी-धसी आँखो मे कृतज्ञता एव आशा के आनन्द की एक ज्योति चमक उठी। वह आँखो मे खुशी के आँसू भरकर बोल उठी—"तुम हमारे कुल के कमल हो माइला! तुम हमारे कुल मे 'जामीर के पेड का सन्तोला'[1] हो नानी! तुम्हारा ही तो भरोसा है!" फिर अपने बेटे से—"साइला! जेठा भाई धरम से पिता-तुल्ल होता है! बाप के बदले तेरा बाप-तुल्ल एक दाज्यू मौजूद है! तू अब चिता न कर! चल, 'भान्सा' मे चल! तू ने आज कई दिनो से पेट भर खाया भी नहीं! सरीर का ख्याल रख! जान है तो जहान भी है!"

और सोमशकर अपनी स्तुति से खुश हो पसीजकर प्यार-भरे स्वर मे बोला—"साइला! नानी! जा, 'भान्सा' मे जा! चिंता न कर! मै तेरा बडा भाई मौजूद हूँ! धर्म से पिता-तुल्य हूँ!...कांछी आमाँ, यदि घर में चावल-दाल न हो, अपनी बुहारी से ले जाओ! तुम लोग चिंता न करो! तुम्हारा पुत्र सोमशंकर मौजूद है कांछी आमाँ!"

कांछी आमाँ की आँखों में कृतज्ञता और वात्सल्य के आँसू उमड आये। उच्छ्वास-विह्वल स्वर में मानो सारे हृदय को उतारती हुई वह बोल उठी—"भगवान तुम्हारा भला करे नानी! अगर जिनगी में कोई

---

१. नींबू के पेड़ का संतरा।

धरम-पुन्न मैंने किया हो तो उसके फल से मेरी बुहारी की गोद भरे नानी ! तुम्हारा घर उजाला होवे ! मेरी बुहारी का सुहाग अचल रहे !" —कहते हुए अपनी घलेक में आँखें उसने पोंछ लीं।

सोमशकर की पत्नी इस मनचाहे आशीर्वाद से खूब खुश होकर बोल उठी—"कांछी आमॉज्यू ! आप सरदार हैं ! सिरीष्ट हैं ! यही असीरबाद दीजिए कि आपके माइला का साथ मेरा कभी न छूटे ! इनकी सेवा का बर्त-पुन्न कभी जिनगी में न टूटे !...हॉ, साइला बाबू ! अब तुम भान्सा में जाओ ! अपने पिता-तुल्ल दाज्यू के रहते कोई चिंता न करो ! ...कांछी आमॉज्यू ! चाउल-दाल अभी घर में 'प्रसस्त' (बहुत) है ! जितनी मरजी हो ले जाइए ! साइला के सरीर पर खूब ख्याल रखिए !"

"चाउल-दाल तो अभी अपने घर में भी 'प्रसस्त' है बुहारी !'— हरिशंकर की माँ ने इस उदारता को कृतज्ञतापूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा—"मगर अब आसा-भरोसा तो तुम्हीं लोगों का है बुहारी !"

हरिशंकर को अब रसोई के निमित्त उठकर अपने घर की ओर जाना पड़ा।

(२०)

वर्षा बीत चुकी थी। शरद् भी। हेमन्त भी लगभग आधा बीत चुका था। पहाड़ के जंगलों में घास-पात की अब कमी हो चली थी। फलतः पहाड़ी पशुओं के लिए अब जगलों में चारे का अभाव हो गया। कई सयत्न-रक्षित खानगी जगलों में घास-पात का अभाव अभी हुआ न था। लेकिन जयशंकर अपने जंगल में से किसी को पत्ते तक तोड़ने नहीं देता। और हरिशंकर तो अब उसका पूरा दुश्मन था। उसके पशुओं को अपने जंगल में जाने नहीं देता। चारे के लिए पत्ते लेने नहीं देता। और जब से सोमशंकर ने अपनी सारी जमीन उसे सौंप दी तब से जयशकर का मन और भी ईर्ष्या से आकुल रहने लगा। हरिशंकर

और सोमशंकर मे दिनोदिन बढ़ती आत्मीयता मानो उसकी आँखो का काँटा बन चली। लेकिन सोमशकर का कुछ बिगाड़ सकने मे समर्थ वह न था। क्योकि उस इलाके का परम धनवान जइसी चूडामणि उसकी पीठ पर था।

सो, जब गाँव मे चारे की कमी पड गई तो पड़ोस के एक 'मगर' ने हरिशंकर से कहा—"हरि दाई! गाँव मे अब चारे का अकाल पड़ गया! मगर हम गरीबो का तो असली धन पशु ही है! अगर उससे भी हाथ धो बैठे तो कही के न रहे! तुम्हारे पशु भी चारे के बिना बिलकुल दुबले हो चले है! तो चलो न इस बार 'मदेस' के 'फाँट' (मैदान) मे! वहाँ के जगलो मे 'प्रसस्त' चारा मिलता है!"

"मगर मदेस तो बहुत दूर है रूप दाई?"—हरिशकर ने कुछ हिचक जाहिर की।

और रूपबहादुर ने प्रोत्साहित किया—"अरे दूर कौन-सा है दाई? यही तो चार-पाँच दिन का 'बाटो' है! आखिर नोन के लिए हमे 'थाक-खोला'[१] पहुँचते चार-पाँच दिन लग हा जाते हैं! मगर इस बार हम थाक-खोला न जाकर बुटवल से ही देसी नोन खरीदेगे! लुग्गा-कपडा भी खरीदेगे! वही पास के जंगल मे गोठ बनायेगे! घिउ (घी) से जो कुछ निकलेगा उससे नोन, 'खुरसानी' (लाल मिर्च), 'बेसर' (हल्दी) और लुग्गा-कपडे का दाम तो निकल ही आयेगा! एक पथ

---

१. 'थाक-खोला'=नेपाल की 'थाकाली' जाति का मुख्य प्रदेश। थाकाली जाति का मुख्य पेशा व्यापार है। घरेलू शराब (जाँड-रक्सी) बनाकर रुपये कमाने मे बड़े कुशल हैं वे। किराती रक्त की विशेष शाखा की रमणीय सुन्दरता थाकाली स्त्रियों पर जैसे बरसती रहती है। इनका वह मुख्य प्रदेश नेपाल के प्रख्यात तीर्थ 'मुक्तिनारायण' के निकट है, काली गडकी की उपत्यका में। 'थाक-खोला' के बाद ही तिब्बती (भोट) लोगों का प्रदेश शुरू हो जाता है।

दो काज !"

हरिशकर को यह सलाह जॅच गई। जौ-गेहूँ की बुवाई का काम पहले ही पूरा हो चुका था। पशुओं की दुर्दशा देख उसकी माॅ को भो इस विचार से सहमत होना पड़ा। यद्यपि दूर-दरदाज के गोठों में स्त्रियों को साथ ले जाने का रिवाज नहीं-सा है, किन्तु सास के आग्रह और अनुरोध पर हेमा और कुसुमा भी साथ जाने को तैयार हो गई। अपने इकलौते पुत्र की सुख-सुविधा का ध्यान उस पुत्र-परायणा माँ के मन में हरदम मौजूद रहता। और हेमा तथा कुसुमा के लिए भी एक-दूसरी से अलग रहना कम कठिन न था। और चूॅकि घर को बिलकुल सूना छोड़ना न था, और खेती की निगरानी भा करनी थी, अतः उसकी माॅ ने घर पर ही रहने का निश्चय किया।

अब वह पुत्र की विदाई की तैयारा में लग पड़ी। दोनों पुत्र-वधुओं के साथ दिन-रात लगकर करीब एक महीने लायक मड़ुआ-मकई का आटा उसने पीसा। बाॅस की बड़ी-बड़ी फोंफियों मे मूली-मिर्च का अचार भर दिया। मूली, पिडालु (अरबी) और सरसों-राई के सूखे हुए पत्तों के गुन्द्रुक भी कपडे में अलग-अलग बाॅध दिये। हरिशंकर के लिए चावल-दाल तैयार करके बोरियों में भर दिया। दो-तीन तसले, एक ताॅबे का गगरा, दो थालियाॅ, छोटे-बडे दो-तीन कटोरे, और एक 'ताप्के' के अलावा भात चलाने के लिए पीतल की एक 'पन्यू' (चौड़ी कलछी) तथा दाल छौंकने के लिए 'डाडू' (ताॅबे की गोल कलछी) भी डोको में डाल दी। ठेक में नमक-मिर्च भर दिया। एक ठेकी में पीसी हुई 'बेसर' भी। और एक और ठेक में सरसों का तेल भी। जाड़े का मास होने के कारण ओढ़ने के लिए तीन रूई-भरी रजाइयाॅ और बिछाने के लिए भेड़ की ऊन का एक बड़ा मोटा कम्बल भी। हेमा और कुसुमा ने गुन्यू-चोलो को दूसरो जोड़ी भी सम्हाली, और हरिशकर ने भान्सा के निमित्त अपनी धोती कमरबन्द की तरह कमर से लपेट ली।

इस प्रकार अगहन मास के अन्तिम सप्ताह मे एक दिन रात के

अंतिम पहर सपरिवार अपने पुत्र को बिदा करते हुए माँ ने पुत्र-वधुओ को आदेश और उपदेश दिया—"ओ जेठी ! ओ कांछी ! साइला के सरीर का ख्याल जरूर से रखना ! 'मदेस' का पानी खराप होता है ! इसे घिउ-दूध और दही-मही प्रसस्त खिलाना ! यह खुद अपना ख्याल नहीं रखता ! और तुम दोनो जरा-जरा जॉड-रक्सी भी खाया करना ! पानी तब नही लगेगा ! सुना है बुटवल-बाजार मे प्रसस्त जॉड-रक्सी मिल जाती है ! समभी ? और कोई उधर से लौटे तो अपना कुसलछेम जरूर से भेजना ! जिस चीज की कमी पड जाय, कहला भेजना कि मै यहाँ से जल्दी भेज दूँ !"

बिदा के वक्त का दृश्य सहसा करुण हो चला। माँ कुछ दूर तक साथ आई थी। अँधेरा दूर हो चला था। पारी-पारी से पुत्र-सहित पुत्र-वधुओं को छाती से लगाकर, आशीर्वाद देकर विदा करते समय माँ का हृदय उच्छ्वसित हो आँखों मे उतर आया। वह रुलाई को दबा न सकी। हरिशंकर माँ के पैरो पर माथा रख झट मुँह छिपाकर अपना डोको अपनी पीठ पर लादते हुए अपने ढोरों के पीछे हो लिया, और हेमा और कुसुमा भी पारी-पारी से सास के पैरों पर माथा रख, रोती हुई अपना-अपना डोको अपनी पीठ पर लादे पति के पीछे-पीछे चल पड़ी। आँखे पोछते हुए उन दोनों ने कई बार मुडकर पीछे देखा। सास को एकटक अपनी ओर ही ताकते खडी देख उनका हृदय और भी विह्वल हो चला। दिल सास से बँध चला था, पर गन्तव्य दिशा की जंजीर जैसे पैरों को खींच रही थी। लेकिन काली के किनारे, पहाड की ऊँची खड़ी दीवार से सटी मानो सर्प की तरह रेंगती हुई पगडंडी के आवरण मे वे सास की आँखों से बहुत जल्द ओझल हो चलीं। लेकिन उनके हृदय के नेत्रों पर आवरण डालने की क्षमता उस पगडंडी में न थी।

× × ×

मधेस के घने जंगल में प्रविष्ट होने का हरिशंकर, हेमा और

कुसुमा के लिए प्रथम अनुभव था। कुछ देर के लिए तो उनका मन मारे भय के आतंकित भी हो उठा। लेकिन रूपबहादुर के दिलासे ने उन्हें ढाढस बँधाया। भाँति-भाँति के वृक्षों और लताओं से परिपूर्ण उस वन मे दिन में भी अँधेरे का भान होता। कहाँ पहाड़ी जंगलों मे छोटे-छोटे वृक्षों की विरलता, और कहाँ यह तराई का घनघोर जगल, और बडे-बडे वृक्षों की विराट् सघनता! और तिसपर बाघ-चीते आदि हिंस्र जन्तुओं का अभाव भी वहाँ न था। लेकिन हिरन जैसे भोले और सरल जन्तु भी कम न थे। बुटवल से कुछ मील नीचे 'तिनाव' नदी की दाँई बगल मे एक स्थान पर जंगल कुछ विरल-विरल था। यहाँ थारुओं का एक गाँव भी था। गाँव से कुछ दूर, जगल मे, पहाड़ी गोठालों के कई गोठ अब तक बन चुके थे। हरिशंकर और रूपबहादुर ने भी तिनाव की ओर जा-रहे एक जंगली नाले के किनारे अपने गोठ कायम करने का निश्चय किया। खुरपेटे से हँसिया निकालकर रूपबहादुर और हेमा के सहयोग से हरिशकर ने छोटे-छोटे वृक्षों की अनेक डालें काटीं। 'बनकस' (साबे) की घास ने रस्सियों का काम दिया। और देखते-ही-देखते गोठ की दो झोपड़ियाँ खड़ी हो गई। झोपड़ियों के सिर पर छोटी-छोटी अनेक पत्तेदार डालें डालकर छप्पर को और भी घना और मजबूत बना दिया गया।

नया घर खड़ा करने का नया उत्साह सबमें जाग उठा था। इस उत्साह में कुछ देर पहले की अरुचि और आतक उनके मन से मिट चुका था। कुसुमा नेवार की बेटी थी। चिउड़ा खाने की वह पिता के घर से ही खूब आदी थी। यह ख्याल करके ही उसकी सास ने उनके साथ कुछ चिउड़ा भी बाँध दिया था। भोजन बनाने से पहले अचार के साथ सबने नमक-मिर्च के साथ चिउड़े का जलपान किया। रूपबहादुर को मधेस का परदेसी तरीका मालूम था, क्योंकि वह कई वर्ष लाहुरे का जीवन व्यतीत कर चुका था। सो, मिट्टी के चूल्हे बनकर उनके सूखकर तैयार होने से पहले उसने धरती खोदकर दो-तीन काम-

चलाऊ चूल्हे तैयार कर दिये। और जगल मे सूखी लकड़ियों की कमी क्या? कई छोटे-बड़े सूखे कुदे लाकर झट उन्हें कुल्हाड़ी से चीर भी दिया।

कुसुमा रसोई की जगह साफ करने लग पडी। हेमा ने झोपड़ी का फरश साफ करके उसपर घास-पात डाल दिया। उसपर कबल फैला दिया। और फिर घर से लाई वस्तुओं को करीने से यथा-स्थान गोठ में रखने और सजाने लगी। हरिशंकर और रूपबहादुर ने नाले से पानी भरकर ला दिया। पास के एक गोठ से रूपबहादुर आग ले आया। कुसुमा आग सुलगाने लगी, और हेमा ने रसोई के लिए हरिशंकर की खातिर एक माना चावल और हिसाब से उड़द की दाल निकाली, और अपने दोनों के लिए मडुए का आटा।

हरिशंकर ने उसे मीठी फटकार जताई—"तुम बड़ी कंजूस हो जेठी! आज पहला दिन है! आज तो सबको दाल-भात ही खाना चाहिए! रखो उस कोदो के पीठो को भीतर! और आज रूप दाई भी हमारा ही पाहुना होगा! उसके लिए भी दाल-चावल निकाल दो!"

हरिशकर का आदेश और अनुरोध सबको मानना पड़ा। हेमा ने चार माना चावल चारो के लिए निकाल दिया। और उसी के अनुसार उड़द की दाल भी। लेकिन उन चारों का जात-भात अलग-अलग होने के कारण अलग-अलग चूल्हे मे सबने अलग-अलग दाल-भात बनाकर तैयार किया। भैंसे और गायें दुही गईं। अचार के साथ दाल-भात और गरम-गरम दूध में जरा-जरा गुड़ मिलाकर इस वन-भोज में उन्हें कम स्वाद न आया। यह थी जगल की उनकी सबसे पहली शानदार दावत!

लेकिन रात में गुड़-अचार के साथ जरा-जरा चिउडा फॉककर सबने निर्वाह कर लिया। लकड़ी के सूखे कुदों की एक तगड़ी धूनी लगाते हुए रूपबहादुर ने सबको उपदेश दिया—"इस वन मे यह धूनी गोठालों की रच्छा का बड़ा हथियार होता है हरि दाई, याद रखो सब

लोग ! धूनी कभी बुझने न पाये ! हम लोग जब-तब हाथ-पाँव भी सेकेंगे, चिलम-तमाकू भी पीयेंगे, और आग के डर के मारे बाघ और चीते हमारे पशुओं के पास नहीं फटकेंगे !''—कहकर वह एक बार गोठ के पास बाहर बँधे पशुओं की खूब सावधानी से गिनती भी कर आया। कई बार रात में भी जाग-जागकर वह पशुओं की गिनती कर लेना नहीं भूला।

पहली रात बीत गई। बीतते अगहन मास के जबर्दस्त कुहासे में भी भोर उस घने जंगल की दीवारों को जैसे लाँघते हुए अपनी अपूर्व छवि के साथ साकार हो ही गया। वे लोग घटा भर रात रहते ही जाग पडे थे। धूनी की आग तापते चिलम-तमाकू पी रहे थे। हरिशंकर, हेमा और कुसुमा ने तराई के जगल में हेमन्त के भोर की छवि आज जीवन में पहली बार देखी। लग रहा था जैसे वृक्षों की डालों से निरंतर धीमी-धीमी वर्षा हो रही हो ! बूँदें गिरने की 'टप-टप' की समरस अखंड आवाज में जैसे जगल का देवता कोई बाजा बजा रहा हो, अथवा कोई विशेष गीत गा रहा हो ! पर आकाश से वर्षा होती कतई प्रतीत न हो रही थी। गोठ का खुला आँगन जैसे कुहासे का छत्र ताने वर्षा की बूँदों को नीचे गिरने से रोक रहा हो ! किन्तु आँगन का धरातल फिर भी भीग चला था। आँगन में बिखरे ओस के कण धूनी की लपटों के प्रखर प्रकाश में मोतियों के कण-जैसे चमकते दिखाई दे जाते ! और ओस-कणों में नहाये और नहाते हुए वृक्षों के हरे-हरे पत्तों पर प्रतिबिम्बित अग्नि की प्रकाश-किरणें उन पत्तो पर झिलमिलाती मनमोहक छवि उभार-उभार देतीं !

भोर कुछ और साफ हुआ। हेमा और कुसुमा नाले के किनारे शौचादि से निबटकर वापस आकर धूनी की आग में ठिठुरे हाथों और पैरों को सेंकने लगीं। हेमा ने कहा—"मदेस का जाड़ा तो पहाड़ के जाडे से भी कड़ा है रूप दाई ! हाथ-पाँव ठिठुर गये !"

और रूपबहादुर ने जवाब दिया—"पहाड़ में हम बिलकुल बन्द घर मे सोते हैं बहिनी ! इसी से जाड़ा कम मालूम देता है ! मगर फिर

भी मदेस के वन में जाड़ा 'अलिगता' (कुछ) जास्ती जरूर पड़ता है! क्योंकि पेड़ों के पत्ते आसमान के ओसो को खाते रहते हैं न ?"

"अच्छाऽऽ!"—कुसुमा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखे फैलाकर आश्चर्य प्रकट किया—"ओस खाया करते हैं ये पत्ते ?"

"हाँ बहिनी!"—रूपबहादुर ने जवाब दिया—"खाना-पीना तो सबके लिए जरूरी होता है ? पेड़-पौधो मे भी तो परान है बहिनी ? नीचे से धरती का रस पीते हैं, और ऊपर से आसमान का!"

हरिशकर ने अब झट मुसकाते हुए प्रस्ताव किया—"रूप दाई ! आज हम लोग धरती का रस खायें कि आसमान का ?"

किसी ने मतलब नही समझा। पूछने पर हरिशकर ने मुसकाते हुए स्पष्ट किया—"भात आसमान का रस है ! क्योंकि ऊँचे अमीर लोग रोज भात खाते हैं ! और आसमान भी ऊँचा होता है ! और धरती का रस है कोदो-मकई की रोटी या 'ढिडोको डल्लो' ![1] क्योंकि इन्हे धरती के छोरे किसान लोग खाते हैं!"

हरिशंकर की इस विलक्षण व्याख्या पर सब-के-सब खूब हँसे। हँसी शान्त होने पर रूपबहादुर ने कहा—"तुम्हारा तो हरि दाई, रोज का नेम है सुबह भात खाना ! तुम तो आसमान का रस ही खाओ, और हम लोग धरती माता का रस खायेगे !"

हरिशंकर ने दृढ़ता से प्रतिवाद किया—"नही ! आज हम लोग मिलकर 'ढिड़ो को डल्लो' खाये रूप दाई !"

पर हेमा ने विरोध किया—"पहाड़ का खाना पहाड़ में ही रहने दो जी ! तुम तो दाल-भात खाओ, और हम कोदो की रोटी बना लेंगी !"

हरिशंकर ने फिर प्रतिवाद किया—"हँह ! पहाड़ से बाहर आकर

---

१. उबलते हुए पानी मे मकई या मड़ुआ का आटा डालकर हलुवा या गाढ़ी लप्सी जैसी बनी खाद्य-वस्तु को 'ढिंड़ो' कहते हैं। और उसके एक-एक ग्रास को डल्लो।

क्या हम पहाड़ को भूल जायँ ? पहाड़ी खाने को भूल जायँ ? 'ढिंड़ो-को डल्लो' मे वो स्वाद आता है कि···!"—कहकर उसने समर्थन में एक पहाडी कविता भी पढ़ दी—"ढिड़ोको डल्लो गुन्द्रुक को झोल, खुरसानी पोल हरि हरि बोल !"[1]

यह कविता सुनकर हेमा और कुसुमा खूब हँसीं। और रूपबहादुर ने भी हँसते हुए कुसुमा को लक्ष्य करके व्यग किया—"मगर मै तो 'भ्यातल' खाऊँगा, भ्यातल हरि दाई !"

और कुसुमा ने भी मुसकाते हुए व्यग किया—"मगर यहाँ कोई नेवार नही कि 'भ्यातल' का नाम सुनकर ही आपका सिर फोड़ने को तैयार हो पड़े रूप दाई ?"

और रूपबहादुर ने भी हँसते हुए व्यंग किया—"मगर नेवार न सही, नेवार की छोरी तो है ही यहाँ ? यहाँ 'ढुंगा' (पत्थर का टुकड़ा) न सही, जंगल की लकडी तो मौजूद है ही बहिनी ? एक उठाकर दे न मारो मेरे सिर पर !"

कुसुमा ने हँसकर जवाब दिया—"मगर ऐसा तो 'नेपाल' (काठमांडू उपत्यका) में होता है रूप दाई ! अगर सिर फुड़वाने की इच्छा हो तो जाइए, नेपाल में फुड़वाइए !"

हरिशकर को 'भ्यातल' की बात समझ में नहीं आई। उसने जिज्ञासाभरे स्वर में पूछा—"यह भ्यातल क्या होता है रूप दाई ?"

और रूपबहादुर ने मुसकाते हुए स्पष्ट किया—"इसका सही मतलब तो नेपाल में ही जाकर मालूम होता है हरि दाई ! मै नेपाल में भी जाकर कुछ दिन रह चुका हूँ ! एक नेवार[2] और एक पहाड़ी मे झगड़े

---

१. "ढिड़ो का डल्ला, और गुन्द्रुक का झोल, और लाल मिर्च को आग मे भूनकर (उसके साथ खाते हुए) हरि-हरि बोल !"

२. काठमाडू उपत्यका के मुख्य और मूल निवासी 'नेवार' कहे जाते हैं। और उपत्यका से बाहर—विशेषकर पश्चिमी नेपाल—के पहाड़ों

के लिए भ्यातल और ढिडों का नाम ले लेना ही काफी होता है! अगर कोई नेवार किसी पहाड़ी को 'ढिड़ोंको डल्लो' कह दे तो पहाडी उसका सिर फोडने को तैयार हो जायेगा! और किसी पहाड़ी ने किसी नेवार को 'भ्यातल' कह दिया तो वह भी! ये दोनों शब्द दोनों के लिए बडी बुरी गाली माने जाते हैं हरि दाई!"

हरिशकर को बड़ा अचरज हुआ। आश्चर्यभरे स्वर मे उसने पूछा —"पहले भ्यातल का मतलब तो समझाओ रूपदाई!"

और रूपबहादुर ने 'भ्यातल' का मतलब समझाते हुए कहा—"जैसे गरीब पहाड़ी किसानो का, खास खाना ढिडो होता है, उसी तरह गरीब नेवारी किसानों का जिन्हें 'ज्यापू' कहते हैं, 'भ्यातल'! चावल की खुद्दी (कनी) मे 'पिंडालू' (अरबी) के सूखे पत्ते और नोन-बेसर डालकर वे खिचडी-सी बना लेते हैं! अगर जुटा तो रत्ती भर सरसों के तेल या घिउ मे खुरसानी (लाल मिर्च) डालकर छौंक भी देते हैं! इसी को खूब मजे से खा लेते हैं! रोज दाल-भात तो वहाँ भी अमीर लोग ही खाते हैं हरि दाई!"

के निवासी 'पर्बते' यानी पहाड़ी। नेवारो की मातृभाषा और संस्कृति सभ्यता 'पर्बते' लोगो से भिन्न है। 'पर्बते' के योगरूढ़ अर्थ में मुख्यतः गोरखे लोग हैं। वर्तमान राजवश एव राणा-थापा लोग तथा उनके पडित-पुरोहित सैकड़ों वर्षों से काठमांडू उपत्यका में निवास करते हुए भी नेवारों के लिए 'पर्बते' हैं। पहाड़ी हैं। क्योंकि काठमांडू उपत्यका समतल-सी है। यद्यपि पश्चिमी नेपाल के अंचलों की मगर, गुरुङ, थाकाली आदि जातियो की मातृभाषाएँ और सस्कृति-सभ्यताएँ नेवारों की ही तरह अलग-अलग हैं, तिब्बत-बर्मी परिवार की, किन्तु नेवार उन्हें भी 'पर्बते' कहते हैं। और मुख्य पर्बते लोगों की मातृभाषा 'गोरखाली' है, आर्य-परिवार की। आज यही नेपाल की 'राष्ट्रभाषा' है। रक्ततः भी गोरखाली ब्राह्मण-ठकुरी लोग आर्य-परिवार के हैं।

और हरिशंकर इस बार नाराजीभरे स्वर में बोल उठा—"समझ में आ गया अब ! इसे हम गरीब किसानों का खाना मानकर ही हमारे पहाड के अमीर लोगों ने, और नेपाल के अमीर नेवार लोगों ने इसे गाली बना दिया है ! हरामी ! दूसरों की कमाई पर मोटे होने वालो ! तुम लोग हमारे इतना बढ़िया खाने को गाली मानो, और इसे गाली बनाओ !"—और फिर एकाएक हेमा से क्रोधभरे स्वर में—"देखो जी ! अब से तुम कभी मत मना करना मुझे 'ढिंडोंको डल्लो' खाने से ! बदमाश अमीरों ने इसे अगर गाली बना दिया है तो हम गरीब इसे गले का हार बनायेंगे ! समझीं ? अब रोज-रोज ढिंडो खायेंगे ! दाल-भात नहीं खायेंगे ! क्योंकि हरामी लोग इसे पसंद करते हैं ! इसकी परसंसा करते हैं !"

और हेमा भी तनिक ऊपर से नाराजी जाहिर करते हुए बोली—"तो क्या अमीर हरामी लोग ही दाल-भात पैदा करते हैं जो हम न खायें ? वाह जी ! फूटकर जवान हो गये, मगर मन से बचपना नहीं गया ! अकल नहीं आई ! हम गरीब लोग ही तो आखिर मकई भी पैदा करते हैं, कोदो भी, चाउर और दाल भी ? फिर अपनी पैदा की हुई चीज से परहेज रखने से बढकर मूरखताई और क्या होगी भला ? जरा इन्हें समझाइए न रूप दाई !"

और रूपबहादुर खूब जोर से हँसकर बोला—"हरि दाई ! मेरी जेठी बहिनी तुमसे जास्ती अकल रखती है, यह मैं मान गया ! ठीक तो कहती है बहिनी कि इससे बढ़कर मूरखताई और क्या होगी भला, कि हम अपनी पैदा की हुई चीज से भी परहेज रखें ? आपस में झगडने और झगड़वाने दो हरामी बेईमानों को ! हमारे वे भ्यातल खाने वाले गरीब भाई, और हम ढिंडोंको डल्लो खाने वाले गरीब भाई आपस में एक हैं ! हर जगह गरीबों की दुनिया एक होती है ! उसकी जात एक होती है ! उसका धरम-करम एक होता है ! मदेस के शहरों में रहकर, नेपाल के शहरो में भी रहकर, मेरा तो मन मान गया है कि—सब गरीब भाई-

भाई ! और सब अमीर भाई-भाई !'

हरिशकर का क्रोध बहुत जल्द शांत हो गया। लेकिन साथ ही रूपबहादुर ने मानो उसे एक नया मंत्र भी दिया—"सब गरीब भाई-भाई ! और सब अमीर भाई-भाई !" लेकिन अभी इस मत्र को अच्छी तरह समझने की क्षमता उसमे न थी। जिज्ञासा भी न थी। 'ढिडोंको डल्लो' मे मन उसका लग चुका था। पतिदेव की इच्छा के आगे झुककर हेमा एक बडे बरतन मे पानी उबालने लगी। दूसरे चूल्हे पर कुसुमा गुन्द्रुक का झोल बनाने लगी। गुन्द्रुक का झोल तरकारी होने के कारण उसमे छूतछात का बखेडा न था। अतः सबके लिए एक साथ ही बन रहा था। लेकिन ढिडो मे दाल-भात की ही तरह छूतछात का टटा था। अतः गुन्द्रुक का झोल तैयार हो जाने पर उसी जलते चूल्हे पर पारी-पारी से अपने-अपने ताप्के मे बड़े बरतन से उबला हुआ पानी ले-लेकर उसमे मकई का आटा डाल उन्होने ढिडो पकाना शुरू किया। फिर 'पन्यू' से चला-चलाकर उसे हलवा-जैसा बनाकर चूल्हे से अलग कर लिया। ताप्के की पेंदी मे सटे हुए ढिड़ो को तनिक और कडा बनाकर उसे 'पन्यू' से खरोंच-खरोचकर निकाल भो लिया। वह रोटी की पपडी-सी बन गई थी। कटोरी मे अलग-अलग गुन्द्रुक का झोल और भूने हुए लाल-लाल मिरचे रखकर वे खूब तृप्ति से खाने भी लगे।

हरिशंकर ने ढिंडो का एक डल्ला गुन्द्रुक के झोल में मिलाकर मुँह मे डाला। फिर मिर्च को दाँत से काटकर चबाते हुए और कड़वाहट के मारे 'सी-सी' करते और सिर खुजलाते हुए बोल पड़ा—"हह् ! मजा आ गया रूप दाई !—'ढिड़ोको डल्लो गुन्द्रुक को झोल, खुरसानी पोल हरि-हरि बोल !' "

हेमा और कुसुमा खाते-खाते ही खूब जोर से हँस पड़ीं। और रूपबहादुर ने मुसकाकर और मिर्च की कड़वाहट के मारे 'सी-सी' करते हुए हरिशकर का जैसे साथ दिया—"हरि हरि बोल ! जै हरि बोल !... इसमें वो तुम्हारा ही जै-जैकार है हरि दाई !"—इतना कहकर इस

बार एक हाथ उठाकर तनिक जोर से वह फिर बोला—"हरि-हरि बोल !!! जै हरि बोल !!!"

और इस बार सबके सम्मिलित अट्टहास से मानो जगल हिल उठा। उसके पेड-पौधे भी खूब जोर से हँस उठे। अट्टहास कर उठे।

(२१)

गोठ का जीवन अब हेमा और कुसुमा के लिए अरुचिकारक न था। क्योंकि उनका जीवन-सहचर उनके साथ था। लगभग डेढ़ मास से यह दुनिया ही जैसे उनकी अपनी मनभावन दुनिया बन गई थी। हाँ, जब-तब सास की याद उन्हें अवश्य सता देती। उसके अनुपम स्नेह और वात्सल्य को यादकर वे जब-तब रोया भी करतीं। लेकिन काम-काज और अन्य प्रसंग के सपर्क में वे सास को भूल भी जाती।

हेमा और कुसुमा इस समय नाले के किनारे बरतन माँज रही थीं। पहाड़ी नदी-नालों की भाँति उस नाले में आवेग न था। वह पहाड़ के पेट से निकलकर भी समतल भूमि मे मानो सारे जोश-खरोश को भूल चला था। जल में स्वच्छता अवश्य थी, पर आवेग-जन्य स्वास्थ्य और जीवन उसमें न था। लेकिन फिर भी जंगल के समस्त जीव-जन्तुओं के जीवन का मुख्य सहारा वह था ही। जगह-जगह उसमें पेड-पौधों के पड़े सड़े पत्ते भी मानो उसे जीवन का स्रोत बनने से रोक नहीं पा रहे थे।

उस नाले में बरतन पखारते हुए कुसुमा तनिक भावना-भरे स्वर में बोली—"दीदी ! रात सपने में आमाँज्यू को देखा ! पूछ रही थीं—'कांछी ! तुझे जेठी और साइला प्यार तो करते हैं ? तू उनके सरीर का ख्याल तो रखती है ?' "

"और तूने क्या जवाब दिया ?"—हेमा ने मुसकाते हुए पूछा—"कोई चुगली तो नहीं खाई आमाँज्यू से ?"

"चुगली तो ज़रूर खाई ! आमाँज्यू से बता दिया कि दीदी मुझे

इतना प्यार करती है कि तग आ गई हूँ !"—कुसुमा ने हँसते हुए जवाब दिया।

"और तंग आने पर लोग कही भाग जाते हैं ! कही भागने का विचार तो नही कर रही तू ?"

और कांछी ने भावनाभरे स्वर मे जवाब दिया—"भागकर अब कहाँ जाऊँगी दीदी ? क्या नरक मे ? तुम दोनो ने जादू कर दिया है, जादू दीदी ! मैने पिछले जनम मे जरूर कोई बहुत बड़ा पुन्न किया था ! बड़े भाग से किसी को ऐसी दीदी और ऐसी सास मिलती है !" —कहते-कहते उसके नेत्र छलछला आये। लेकिन झट उसने नाले का पानी अपने मुँह पर उलीचकर मानो उन अचानक उभरे आँसुओ को हेमा से छिपा लेने का प्रयत्न किया।

लेकिन हेमा से उसकी मनोदशा छिपी न रह सकी। उसके वे मीठे-मीठे स्नेहिल आँसू छिपे न रह सके। एक बार उसके जल-सिक्त चेहरे को प्यारभरे नेत्रो से निहारकर वह भी भावना-भरे स्वर में मुसकाते हुए बोली—"और बडे भाग से किसी को ऐसी बहिनी भी मिलती है बहिनी ! गीत मे गाते हैं न—'बसउँ एकइ डाली दुइ बनका न्याहुली !'[1] और आमॉज्यू भी एक दिन इसी पद को सुनाते हुए मुझसे बोली थीं—'मेरी जेठा और कांछी एक डाली पर बैठी हुई बन की दो न्याहुली हैं !' तो बहिनी ! अगर एक न्याहुली डाली से उड़कर कही भाग जाय, तो दूसरी क्या करेगी ? उसका तो बड़ा बुरा हाल हो जायगा ?"—कहते-कहते उसकी भी आँखे छलछला आई।

कुसुमा की आँखों में फिर आँसू आ गये। अब वह हेमा के पास आकर गले से लिपटकर अत्यन्त स्नेह-भरे गद्‌गद कठ से बोली—

---

१. न्याहुली एक बड़ी सुन्दर पहाड़ी चिड़िया होती है, बहुत कुछ मोर-जैसी। उसका स्वर उसके परम सुन्दर रूप के समान ही मीठा होता है। कुल्लू और टिहरी-गढ़वाल के पहाड़ों में इसे 'मुनाल' कहते हैं।

"दीदी ! मै तो दिन-रात भगवान से यही मनाती और मॉगती हूँ कि हम दोनों दीदी-बहिनी जनम-जनम एक ही डाली की न्याहुली बनकर पैदा हों, और सदा रहें भी एक ही साथ ! कभी एक-दूसरी से सपने में भी न बिछुडे !"—कहकर वह भावना के आवेग में हेमा के कधे पर सिर रखकर चुपके-चुपके रोने भी लगी।

इसी समय हरिशंकर वहॉ आ पहुँचा। उन दोनों को उस स्थिति में देख क्षण भर भौचक्का रहकर फिर नाराजी-भरे स्वर में बोला—"तुम दोनों यहॉ बैठी कौन-सा नाटक खेल रही हो भाई ? क्या मालूम नहीं कि झट खा-पीकर बुटवल बाजार जाना है आज ?"

और कुसुमा ने जब सहसा चौंककर हेमा के कन्धे से सिर हटाया तो अपनी अश्रु-तरल आँखें वह हरिशंकर से छिपाने का प्रयास करके भी छिपा न सकी।

हरिशकर आश्चर्य-भरे स्वर मे बोला—"यह रोती क्यों है भाई ? इसे हो क्या गया ?"

कुसुमा तनिक लज्जित होकर नाले मे पैठकर मुँह पखारने लगी। और हेमा ने कृत्रिम क्रोध का नाट्य करते हुए जवाब दिया—"औरतो का नाटक देखने मे तुम्हें खूब रस आता है ! इसी से झट दौड़े चले आये ! और रोये क्यों नहीं बेचारी ? आमॉज्यू ने उससे कहा था—'साइला के सरीर का ख्याल रखना काछी !' और ऐसे तुम हो बेईमान कि खाने-पीने की बात में उस बेचारी का ख्याल नहीं रखते ! दुबले हो चले हो ! कह रही थी कि अगर साइला दुबला ही रह गया तो मै आमॉज्यू को कौन-सा मुँह दिखाऊँगी दीदी ? इसीलिए रो रही थी !"

अपनी दीदी की चतुराई पर मुसकाती हुई कुसुमा नाले से निकल आई। और हरिशकर ने भी कृत्रिम क्रोध का नाट्य करते हुए कहा—"तुम लोगों का तिरिया-चरित्तर मै नहीं जानता ! खाता तो खूब हूँ ! मन न रहते हुए भी तुम लोग मुँह में जो कुछ ठूँस देती हो ठूँस लता ही हूँ ! फिर रोने की बात कैसे आ गई ?"

हेमा किसी प्रकार प्रसंग को टालना चाहती थी। मुसकाते हुए कुसुमा से बोली—"चल कांछी! तेरे मरद को दिन उगते ही भूख लग जाती है! गगरा मै उठा लेती हूॅ! तू बरतन-बासन लेती चल!"—कहकर वह उठ खड़ी हुई।

हरिशंकर लेकिन आश्चर्य से अवाक् रह गया। फिर उलहना-भरे स्वर मे बोला—"इसी से तो कहता हूॅ तिरिया-चरित्तर!"—सिर्फ इतना कहकर पानी से भरा एक बड़ा बरतन उसने भी उठा लिया। कुसुमा और हेमा के मना करने पर भी नही माना वह।

× × ×

'पाल्पा-तानसिङ' (तानसेन) की ओर उठने वाले पहाड की ठीक 'फेदी'[१] मे 'तिनाव' के दॉये तट पर बसे हुए बुटवल बाजार की छटा बॉये तट से कम मनोहर नहीं दीखती। मानो वहॉ गंगा और यमुना के किनारे बसे हुए काशी और मथुरा अपने स्वल्प लघु रूप मे मौजूद हो, और गंगा-यमुना भी मानो स्वल्प रूप मे ही तिनाव के रूप मे! मानो पहाड़ व तराई की सस्कृतियो की त्रिवेणी वहॉ बह रही हो! भारत व नेपाल की तराई एव पहाड़ की वणिक्-संस्कृति एकजुट हो मानो तराई और पहाड़ की किसानी सस्कृति को दबोचना चाह रही हो! उसके जीवन के सारतत्त्व को निचोडना चाह रही हो! भारत के नोन, कपड़ा और मसाला जैसे जादू के यत्र से पहाड के सारे घी को निचोड़कर बनियो को सजीव और समृद्ध बना रहे हों!

लेकिन बुटवल का महत्त्व केवल इसीलिए नहीं है। अपनी छाती पर सामतों के गर्व-गुम्फित इतिहास को अकित किये वह आज भी नेपाल के सामंतों और सामंती सस्कृति के अनुयायियों को कम गर्व

---

१. जहॉ पहाड़ की ऊॅचाई समाप्त होकर समतल-सी भूमि शुरू होती है, अथवा जहॉ से पहाड़ की ऊॅचाई आरंभ होती है उसे 'फेदी' कहते हैं।

अनुभव नहीं कराता। पाल्पा के राजा मुकुन्द सेन द्वारा निर्मित चार-पाँच सौ साल पुराना किला सामंती गौरव के रूप में वहाँ आज भी मौजूद है। और उसके ईंट-पत्थरों में नेपाली सैनिकों की असामान्य वीरता की गर्व-गुथी गाथा भी, जैसे चिनी हुई, नेपाल के इतिहास के पन्नो को गर्वान्वित किये हुए है। कौन नेपाली उस गर्व-गाथा को भुला सकेगा जब कुछ मुट्ठी भर नेपाली सैनिकों ने अंग्रेजों की विशाल वाहिनी के छक्के छुड़ाकर इस किले को 'जिताउ गढ़' के नाम से प्रख्यात कर दिया! अस्तु।

रूपबहादुर गोठ में ही रह गया। क्योंकि ढोरों की निगरानी के लिए किसी एक का वहाँ रहना अनिवार्य था। रूपबहादुर ने बाजार के रंग-ढंग के संबंध में हेमा और कुसुमा को समझा दिया। और कुसुमा तो थी ही कुशल बनिये की बेटी! और हरिशंकर अब तक संचित सारे घी को एक टीन में भरकर उसे डोको में रख पीठ पर लादकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ बुटवल बाजार की ओर चला। कुछ मधुर कलह भी हुआ। उसके बाद आपस में तै हुआ कि वे पारी-पारी से घी का डोको ढोते चलेंगे। और चूँकि हरिशंकर पुरुष था, इसलिए उसने अपनी पारी पहले तै की। रास्ता कुछ दूर तक धान के खेतों की पगडंडी और थारुओं के गाँव से गुजर रहा था। धान की फसल अब भी पूरी तरह कटी न थी। थारू नर-नारी जहाँ-तहाँ खेतों मे धान की फसल को काटने और बोझ बाँध-बाँधकर बटोरने में व्यस्त थे। थारू बच्चे अपनी हँसी और खुशी मे अपने चेहरों पर मंगोलपन के धीमे धूमिल सम्मिश्रण को खिलाते हुए, जहाँ-तहाँ कुदाल से धरती खोदते हुए 'धनचड़ी' (चूहा) के शिकार में मस्त और मशगूल थे। और कुछ लोग शिकार में पकडे चूहों को खेत में ही भून-भूनकर खाने मे। थारुओं के गाँव और घरों की बनावट लेकिन पहाड़ के गाँव-घरों से बिलकुल भिन्न थी। गाँव के घर अधिक विरल-विरल न थे। घरों की दीवाल मिट्टी या पत्थर की न होकर सरकंडे के टाट की थी। और

छप्पर चौकोनिया न होकर दो-कोनिया थे, लकड़ी के बड़े-बड़े खंभो और बल्लों पर आड़ा-तिरछा खड़े हुए। पशुओं के घर काफी बड़े और खुले हुए। जगह-जगह कुँए थे। और मगर-घरों की ही तरह उनके घर भी मुर्गे-मुर्गियो की चहल-पहल से गुंजार और गुलजार थे, सुअरो की 'चें-चें' से मुखरित और कल्लोलित।

गोठ में उनको आये लगभग डेढ़ मास हो चुका था, पर हरिशंकर अब तक बाजार मे कभी आया न था। रूपबहादुर ही बीच मे एक-दो बार आकर आवश्यक सौदा-सामान खरीद ले गया था। बाजार की सॅकरी और लंबी गंदी गलियों एव सट-सटकर बने मकानों की लबी कतारो के दृश्य उन तीनों के लिए कम अनोखे न थे। कुसुमा यद्यपि शहर मे पैदा हुई थी, पर अपने खुले शहर से इस शहर के अत्यत सघन एवं गंदे दृश्य उसे भी कम अनोखे न लगे। किंतु शहर के चारो ओर के दृश्य उन्हे खूब मनभावन लगे। उत्तर की ओर पहाड़, और शेष तीन ओर घने जगल मानो बाह्य आपत्तियों से नगर का बचाव कर रहे हों! और तिनाव अपने तेज, चचल, श्यामल और स्वच्छ प्रवाह मे नगर की समस्त गंदगी को ले-लेकर मानो जंगल को चीरते हुए दक्षिण की ओर दौडी जा रही हो!

घी के टीन से लदा डोको अब हेमा की पीठ पर था। शहर की तग गलियो से गुजरते हुए वे अब वहाँ पहुँचे जहाँ गरम होते घी की सुगंध से वातावरण खूब भारी था। हवा भी खूब गरम थी। पहाडियो के घी के टीन एक-एककर काँटे पर तौले जा रहे थे। और फिर उन्हे आग पर पिघला-पिघलाकर बडे कडाहों मे उँडेला जा रहा था। और बदले मे भारतीय रुपये पाकर वे पहाड़ी खुश हो एक-एक कर यों अलग होते जा रहे थे जैसे चिरसंचित तपस्या साकार हो उनके कर-तल पर थिरकने लग पड़ी हो!

रूपबहादुर ने हरिशंकर को सिखलाया था—"किसी भले पहाड़ी से घिउ का भाव पूछकर बेचना हरि दाई!"

और हरिशंकर के सामने एक भला पहाड़ी दउरा, सुरूवाल और गोल नेपाली टोपी पहने बिना बुलाये अपने-आप आ पहुँचा। आत्मीयता-भरे स्वर में वह बोला—"घिउ बेचना चाहते हो साथी? तो इधर आओ! एक-जैसे भाव के चकमे में मत आना! हर दुकान में भाव तो एक-जैसा ही बतायेंगे, मगर तुम्हें भोला-भाला समझकर तोल में गड़बड़ करेंगे! तुम्हें ठग लेंगे! ये 'मदिसे' साहू लोग बड़े ठग होते हैं, ठग, दाई! इधर आओ! मेरे साथ आओ! एक पहाड़ी दुकान में ले चलूँगा जहाँ तोल में गड़बड़ नहीं करते! किसी पहाड़ी को वे नहीं ठगते!"—कहते हुए वह उसे घी की एक नेवारी दुकान की ओर ले चला।

और वह मधेसिया साहूकार अपनी आँखों के सामने अपने गाहक को इस प्रकार छिनते देख अपने पहाड़ी नौकर पर उबल पड़ा—"देखो तो वह साला, गाहक को भगाये ले जा रहा है दुकान के सामने से! लेकिन तुम हो ऐसे नमकहराम कि बेवकूफ की तरह चुपचाप बैठे देख रहे हो! हरामखोर! तलब देता हूँ! खाना-खुराक देता हूँ! मगर मालिक के नुकसान का जरा भी ख्याल नहीं! तुम पहाड़ियों का विश्वास नहीं करना चाहिए! तुम लोग आपस में मिले होते हो! छँटे बदमाश हो तुम लोग!..."

मालिक की घुड़की और गाली चुपचाप बर्दाश्त करके वह पहाड़ी नौकर हरिशंकर की ओर—"ओ साथी!! ओ दाई!!!" कहते दौड़ पड़ा। पर हरिशंकर नहीं मुड़ा। प्रथम पहाड़ी की कड़ी पकड़ में वह पड़ चुका था। उसने उसे मुड़ने नहीं दिया।

स्वार्थ ही राजनीति का जनक होता है, हर क्षेत्र में। चाहे व्यापार का क्षेत्र हो, अथवा प्रभुता का। भाषा, देश, प्रदेश, धर्म, संस्कृति और जाति की भावनाएँ स्वार्थ-सिद्धि में प्रयुक्त की जाकर राजनीति का रूप ग्रहण करती हैं। नेपाल में उन दिनों शासकों के विरुद्ध कोई संगठित राजनीति जन्म न ले सकी थी। किन्तु इस प्रकार की बाजारू राजनीति

बाजारों में वहाँ चालू थी। आज भी चालू है। विशेषकर उन बाजारों मे जहाँ भारतीय और नेपाली बनियों के आपसी स्वार्थ टकराते हैं। यद्यपि पहाड़ी किसानों के लिए दोनों ही बनिये समान थे। एक साँप-नाथ]तो दूसरा नागनाथ! दोनो ही जगह एक ही माया-रानी का राज था। भाषा और वेश-भूषा की भिन्नता के बावजूद दोनों जगह की सस्कृति समान थी—किसानो की हड्डीतोड़ मेहनत की पैदावार को मिलकर निश्चित किये मनमाने बाजार-भाव पर लूट लेना, और अपनी दुकान की चीजें अपने ही भाव पर उन्हे बेचकर उनकी जेबें खाली कर लेना। अपनी पैदावार का मूल्य स्वय निश्चित करने का भी कोई अधिकार उन किसानों को न था।

बनियों द्वारा निश्चित की गई मन-मानी दर पर ही हरिशंकर को अपना घी का टीन खाली करना पडा। पहाड़ से दिनों का रास्ता चलकर आये हुए दूसरे लोग भी उसी भाव पर अपने टीन वहाँ खाली कर रहे थे। अतः हरिशंकर को बाजार-भाव के बारे मे संदेह न रहा। और फिर बाद मे नोन, कपड़ा, मसाला, गुड आदि के लिए मधेसी बनियो की दुकानों पर अपनी गाँठ भी उसे खाली करनी पडी। माँ के लिए, हेमा और कुसुमा के लिए काले रंग का गुन्यू और चोलो का कपड़ा खरीदा। घलेक के लिए कई गज छींट का भड़कीला कपड़ा भी। माँ के मुजेत्र के लिए काला तथा हेमा और कुसुमा के लिए लाल रंग का कपड़ा भी। और हेमा के आग्रह पर उसने अपने लिए एक अच्छी-खासी धोती के अतिरिक्त भोटो, मयलपोश और सुरुवाल का कपड़ा भी खरीदा। कुछ दाल-चावल भी खरीदा। इन सब चीजों में घर से लाये कुछ रुपयों के साथ घी का सारा दाम भी निकल गया। पहाडों में अब तक न-देखी मिठाइयों के दर्शन मात्र से ही उन्हें संतुष्ट होना पड़ा। केवल पाव भर जलेबी खरीद तीनों ने मिलकर भोग लगाकर मधेसी मिठाई के स्वाद की साध अपनी पूरी कर ली।

हरिशंकर ने स्वाद लेते-लेते कहा—"हमारा पहाड़ भी कोई मुलुक

है भला ! ये मदिसे लोग कितनी अच्छी-अच्छी चीज बनाते और खाते हैं ! दिल करता है मदेस में ही कहीं लाहुरे बन जाऊँ !"

और हेमा ने जवाब दिया—"मगर रूप दाई तो मदेस में लाहुरे रहकर भी आखिर फिर अपने पहाड़ में ही लौटा ? अपना मुलुक कैसा भी हो अच्छा होता है ! मदिसे गरीबों को थोड़े ही ऐसी 'जुल्फी' (जलेबी) खाने को मिलती होगी ?"

और तब कुसुमा भी बोली—"रूप दाई ने नहीं बताया कि गरीबों की दुनिया सब जगह एक ही होती है ? इसी बाजार के कुली गरीबों की दुरदसा नहीं देखते ?"

हरिशंकर मानो एकाएक निरुत्तर हो गया। फिर बोला—"अच्छा, इसमे से दो 'जुल्फी' रूप दाई के लिए भी ले चलेंगे !"

और हेमा ने सहमत होते हुए कहा—"उनके लिए दो 'सेल' भी खरीद लो ! सस्ती भी है ! और अपने पहाड की खास मिठाई तो सेल ही होती है न !"

"अच्छा जेठी !"—हरिशंकर ने उसे याद दिलाते हुए कहा—"वो जोगी, जो जंगल के रास्ते में बैठा है न, सुना है बड़ा सिद्ध महतमा है ! उसकी फूल-भभूती से सारी मन-कामना पूरी होती है ! उसकी भेंटी के लिए भी दो सेल खरीदते चलें ! क्यों ? जुल्फी तो अब जूठी हो गई ! नहीं तो इसमें से भी एक उसके लिए रख लेते !"

हेमा सहमत हो गई। खुश होकर बोली—"मैं आज जोगी से अपनी कांछी के लिए एक छोरा मागूँगी !"

और कुसुमा एकाएक लज्जा से लाल हो हेमा को एक मीठा धक्का देकर मुसकाते हुए बोली—"और मैं अपनी दीदी के लिए !"

हरिशंकर भी अब एकाएक सरस हो उठा। मुसकाते हुए मजाक-भरे स्वर में बोला—"और मैं, तुम दोनों के लिए एक-एक बंदर का बच्चा मागूँगा ! जोगी ने एक बंदर का बच्चा पाल भी रखा है ! दूसरा कहीं से ला देगा !"

हेमा लेकिन त्योरियाँ तरेरकर उसे हाथ का एक मीठा धक्का देते हुए बोली—"तो बंदर के ही बाप बनना चाहते हो तुम ? शरम नहीं आती, ऐसी कुलच्छन की बात मुँह से निकालते !"

और कुसुमा ने भी मजाक किया—"तो दीदी, हरज क्या है ? अब से हम इन्हें 'बंदर के बा' कहा करेंगे !"

"धत् !"—हरिशंकर तनिक लजाकर उस पितृत्व का प्रतिवाद कर फिर मजाकभरे स्वर में बोला—"और मैं कहा करूँगा तुम दोनों को 'बंदर की आमाँ' !"

हेमा लेकिन भौंहें टेढ़ी करके तर्जनी तानकर बोली—"ऐसी कुलच्छन की बात अगर मुँह से फिर निकाली तो'''!" और फिर मुसकाते हुए—"मेरी कांछी जैसी सुंदर बहिनी भला बदर की आमाँ बनेगी ?"

हरिशंकर ने इस सरस वार्तालाप को झट बंद करते दोनो को आदेश दिया—"चलो अब ! बेरा टल गया ! गोठ में पहुँचते रात हो जायगी ! रास्ता जंगल का है !"

हरिशंकर ने डोको झट पीठ पर लादा। वे चल पड़े। एक दुकान से खड़े-खड़े पाँच सेलें खरीदीं। और बाजार के सबसे बड़े मंदिर 'नारायण-थान' में जाकर भगवान का दर्शन किया। वहाँ से विदा हो बाजार से लगभग दो फर्लांग दूर जंगल मे अपनी धूनी पर बैठे योगी के पास पहुँचे।

योगी अवधूत नागा था। चार अंगुल के कौपीन के अलावा कोई परिधान न था उसका। और अंग-अंग धूनी की राख से नहाये हुए। और सिर पर राख से पटी हुई लम्बी जटा। लम्बी दाढ़ी-मूँछें भी राख से नहा-नहाकर भूरी बनी हुईं। निरन्तर गाँजा और चरस के धुएँ के संपर्क से मलिन। और आँखों में नशे की हरदम चमकती हुई भयावनी लाली। और उस योगी ने इस कारण भी लोगों को प्रभावित किया था कि उस कठोर ठंढ की रात में भी वह नंगे आकाश के नीचे केवल धूनी के सहारे नग-धड़ंग सोया करता था। कोई कुटिया उसने बनाई न थी।

योगी की धूनी पर भक्तों की भीड़ जमी थी। इनमें अधिकतर गाँजा-चरस में अटूट भक्ति रखने के कारण ही योगी के भी भक्त बने थे। नशे की तलबी होते ही वे योगी की धूनी पर पहुँच जाते। पहली चिलम के खत्म होने पर अब दूसरी चिलम की तैयारी थी। हरिशंकर, हेमा और कुसुमा योगी के पैरों पर माथा टेककर धूनी के एक किनारे श्रद्धा-भक्ति से बैठ चुके थे। योगी ने अपनी झोली से गाँजा और चरस की एक छोटी डली भी निकालकर एक भक्त के हाथ में थमा दी थी। भक्त ने गाँजा-चरस की खुश्की को मिटाने के ख्याल से पहले उसपर पानी का एक छींटा डालकर उसे तर कर दिया। फिर दोनों को मिलाकर लंबी पतली चिलम में उसे यत्न से डाल दिया। फिर उस पर चिमटे से धूनी की आग की एक छोटी चिनगारी रखकर मानो प्रसाद बना देने के विचार से ही पहले उसे बाबा के हाथ में थमा दिया।

बाबा ने चिलम की पेंदी में कपड़े की गीली साफी लगाई। फिर हाथ में उसे ठीक से थामकर अपने मोटे स्वर में खूब जोर भरकर एक मंत्र का पाठ किया—"आकाश मेरो झोपड़ी पाताल मेरो गाऽऽम! अलख पुरुख का बालक अवधूत मेरो नाऽऽम! जय शंकर कैलासवासी! काटो जनम-मरन को पाशी!"—कहकर चिलम को मुँह से लगा गाल को बार-बार फुलाते हुए उसने एकाएक इतने जोर की फूँक मारी कि एकाएक चिलम से कई इंच ऊपर आग की लपट उठ आई।

योगी ने अपने रक्तिम नेत्रों को तनिक सरस बनाकर एक बार हेमा और कुसुमा को अनुकम्पा से निहार हरिशंकर की ओर चिलम बढ़ाते हुए आग्रह किया—"ले भगत! कंकड़ का एक दम तो मार ले! मन-कामना पूरन होवेगी तेरी!"

और हरिशंकर को हिचकते देख दूसरे भक्तों ने टिटकारी भरी—"अरे, यह बाबा का परसाद है भाई! इनकार मत कर! मनकामना पूरन होवेगी तेरी!"

हरिशंकर ने योगी के क्रोध के डर से, और मनकामना पूरी होने के लोभ से चिलम ले ली। और बड़ी श्रद्धा से ज्योंही उस प्रसाद का एक दम लगाया कि उसका माथा चकराये बगैर न रहा। तमाकू के हलके नशे की आदत गाँजे-चरस के नशे के आकस्मिक तूफानी आवेग को बर्दाश्त न कर सकी। उससे सीधे बैठा अब रहा न गया। नशे की जबर्दस्त चपेट मे पड़कर वह ज्योंही अकस्मात् भूमि मे लेटने लगा कि हेमा ने घबड़ाकर उसका सिर अपनी गोद मे थाम लिया। कुसुमा भयभीत और बेचैन होकर कभी अपने पति को और कभी बाबा को निहारने लगी।

और बाबा ने जैसे पसीजकर दिलासा दिया—"डर मत आमाँ! शंकरजी का प्रसाद उसे लग गया! भला होवेगा! मनकामना पूरन होवेगी! अभी ठीक हो जायगा!"—कहकर उसने शीशी में से नींबू की खटाई का रस एक पत्ते में डालकर उसे देते हुए आदेश दिया—"चटा दे इसे! अभी ठीक हो जायगा!"

हेमा ने कुसुमा के हाथ से खटाई का वह पत्ता ले लिया। उसे हरिशंकर को धीरे-धीरे चटाना शुरू किया। और खटाई की जैसे चोट खाकर नशा अपनी स्वाभाविक गति से उतरने भी लगा। हेमा और कुसुमा की जान मे जैसे जान आने लगी। पन्द्रह-बीस मिनट बाद नशा उतर गया। हरिशंकर सीधे हो स्वस्थ भाव से बैठ गया। और बहुत जल्द बाबा की छाया से पिंड छुड़ाने के ख्याल से हेमा ने हरिशंकर से कहा—"चलो जी! पहुँचते रात हो जायगी!"

हरिशंकर झट तैयार हो गया। वे बाबा के तनिक निकट जा हाथ जोड़कर ही उससे विदा होना चाह रहे थे, पर बाबा ने झट अपने दोनों जुड़े पैर उसके आगे कर दिये ताकि भक्त बिना पैर छुए ही चल न निकले। हरिशंकर को उन पैरों पर माथा रखना पड़ा। बाबा ने धूनी से चुटकी भर भस्म लेकर उसके माथे पर टीका कर दिया। और चूँकि बाबा को मालूम हो चुका था कि वह उसी पास वाले जंगल का 'गोठाला'

है, अतः उसने अपनी खीसें निकालते हुए याचना भी कर ही दी—"भगत ! दही-मही में से बाबा का भाग मत भूलना !"

इसके बाद बाबा ने चुटकी भर भस्मी हेमा और कुसुमा को भी दी। दोनों ने उसे घलेक के छोर में बाँध लिया। फिर दोनों ने जुड़े हाथों से बाबा का अभिवादन भी किया—"जिउ गछू महाराज !" और फिर वे तीनों जने लंबे-लंबे डग भरते हुए अपने गोठ की ओर चल पड़े। सामान से भरा हुआ डोको अब हेमा की पीठ पर था। सूर्य अस्त होने में अब अधिक देर न थी, लेकिन रास्ते में कई दूसरे गोठाले भी उन्हें मिल गये। बोलते-बतियाते वे घंटे भर बाद आसानी से गोठ में पहुँच गये।

गोठ में पहुँचने पर जब हरिशंकर ने रूपबहादुर के हाथ जलेबी और सेल की सौगात पेश की तो हेमा ने रूपबहादुर से प्रश्न किया—"अच्छा रूप दाई ! आप तो मदेस के शहरों में रह चुके हैं ! बताइए कि मदेस के सब लोगों को 'जुल्फी' मिलती है खाने को ?"

"नहीं बहिनी !"—रूपबहादुर ने जवाब दिया—"सबको कहाँ से मिलेगी खाने को ! तुमको कैसे मिली यह तो बताओ ?"

"हमने तो खरीदी थी रूप दाई !"

"और खरीदी किस चीज से ?"

"पइसा से !"

"तो पइसा प्रसस्त रहा होगा तुम्हारे पास ?"

"प्रसस्त कहाँ रूप दाई ! बड़ी मुश्किल से थोड़ा बचाके जीभ के स्वाद की खातिर कुछ खरीद लिया ! सोचा, मदेस में आके मदेस की कोई अच्छी मिठाई तो चीखनी ही चाहिए !"

"बस, इसी तरह समझ लो बहिनी, कि जिसके पास प्रसस्त पइसा है, वह जुल्फी क्या जुल्फी से भी बढ़िया और कीमती मिठाई रोज-रोज खरीदकर खा सकता है ! खाता भी है ! और जिस गरीब के पास सूखी रोटी से भी पेट भरने का उपाय नहीं वह इसी तरह मुश्किल से कुछ

बचाकर या पेट काटकर कभी छठे-छमासे सस्ती मिठाई खाकर अपनी जीभ को समझा लेता है!"

"पहाड़ से मदेस में गरीब कम हैं रूप दाई?"—हेमा ने फिर प्रश्न किया।

"कम क्यों, ज्यादा ही होंगे बहिनी!"—रूपबहादुर ने जवाब दिया।

"तो पहाड़ अच्छा कि मदेस रूप दाई?"

"अगर पहाड़ अच्छा न होता तो मैं क्यों मदेस से पहाड़ में अब आया होता?"

"मगर पहाड़ के इतने लोग लाहुरे क्यों बनते हैं? और मदेस से इतना पइसा कैसे लाते हैं?"

"कमाकर बहिनी! हम गोरखाली लोग मदिसे गरीबों से अधिक मेहनती होते हैं! अधिक 'बलियो' (बलवान) होते हैं। वहाँ के अमीर लोग हमें जास्ती पसन्द करते हैं! बलियो समझकर दरबान, चौकीदार हमें बनाते हैं! और वहाँ की सरकार-बहादुर हमें बहादुर समझकर मरने-मारने के लिए अपनी फौज में भरती करती है! हम घर-परिवार से बिछुड़कर पेट काट-काटकर पइसा बचाते हैं! और जब कुछ बरिस बाद कुछ ले-लेवाकर लौटते हैं तो रास्ते में जगह-जगह जाँड-रक्सी में लुटाते हुए जो कुछ बच जाता है, वह गाँव के मुख्या-जिम्वाल की बदमाशी को भेंट कर देते हैं! कहावत नहीं जानतीं अपने पहाड़ की —'आयो लाहुरे बुट-पट्टि कसेरऽ, गयो लाहुरे खरानी घसेरऽ'?"—कहते-कहते वह हँस भी पड़ा। लेकिन इस हँसी में व्यथा के छिपे उसके स्वर छिपे न रह सके।

लेकिन हेमा तनिक मुसकाते हुए हरिशंकर की ओर अँगुली का इशारा करके व्यंगभरे स्वर में बोली—"आपके ये दाईज्यू भी रोज-रोज जुल्फी खाने के लोभ में लाहुरे बनना चाहते हैं! आज इन्हें जुल्फी का स्वाद इतना 'गुलियो' (मीठा) लगा कि बोले—'जेठी, मैं तो मदेस में

लाहुरे बनूँगा ! रोज-रोज जुल्फी खाऊँगा !"—कहकर वह तनिक हँस भी पड़ी।

रूपबहादुर ने अब गंभीर स्वर में हरिशंकर को समझाते हुए कहा—"हरि दाई ! मदेस में एक कहावत है—'दिल्ली का लड्डू जो खाये वो भी पछताये, जो न खाये वो भी पछताये !' दिल्ली में मोगलान का बादशाह रहता है ! बड़ी नामी जगह है ! इसीलिए वहाँ की मिठाई भी खूब नामी है ! मगर वहाँ का हलवाई कहीं स्वरग से तो नहीं आता ! वह भी वैसी ही मिठाई बनाता है जैसी दूसरे शहर के हलवाई ! मगर दिल्ली के लड्डू के लोभ में जब कोई बड़ी मुश्किल से दिल्ली पहुँचकर उस लड्डू का स्वाद भी वैसा ही पाता है जैसा कि अपने पास के शहर के लड्डू का, तो पछताये बिना नहीं रहता ! रूपबहादुर इतना मूरख नहीं कि वह दिल्लो का लड्डू छोड़कर अब अपने पहाड़ में बैठा रहता ! हर जगह गरीबों का एक-जैसा ही हाल है हरि दाई ! चाहे स्वरग में जाओ चाहे नरक में, गरीब हर जगह दुखी रहेगा ! अमीर हर जगह सुखी रहेगा !"

"तो रूप दाई !"—अब कुसुमा ने प्रश्न किया—"अगर हर जगह गरीब इतने जास्ती हैं तो वे आपस में एका क्यों नहीं रखते ? और फिर एक में मिलकर अमीरों के पंजे से छूटने का जतन क्यों नहीं करते ?"

"अकल हो तब न बहिनी ? और हर जगह सरकार है अमीरों की ! अड्डा-अदालत है अमीरों की ! पढ़ाई-लिखाई पर भी उन्हीं का कब्जा है ! इसलिए सारी अकल पर भी उन्हीं लोगों का कब्जा है ! हर जगह गरीबों को अमीरों ने तरह-तरह के जाल बुनकर इतना मजबूर और मूरख बना दिया है कि वे एक होने के बारे में सोच ही नहीं सकते ! और जो कुछ गरीब लोग ऐसा सोचते भी हैं तो दिन-रात पेट की चिंता और रोटी छिन जाने का डर उन्हें एक नहीं होने देता ! देखतीं नहीं अपने पहाड़ में, कि मुख्या-जिम्वाल लोग किस तरह गरीबों को आपस में फोड़े रहते हैं ? अपने जाल में फँसाकर किस तरह

लूटते और सताते हैं ?"

अब हरिशंकर ने एकाएक पेट की दुहाई दी—"मुझे तो बड़े जोर की भूख लगी है रूप दाई ! बातचीत बाद में होगी !...हाँ जेठी ! कोदो का तीन मोटा टिक्कड लगाके रख दो धूनी मे ! नोन, खुरसानी और मही के साथ खा लेगे !"

हेमा रूपबहादुर की बातो मे जैसे सबकी भूख भूल चुकी थी। पति के याद दिलाने पर झट उसने बोरी से तीन माना मड़ुआ का आटा निकाला। कुसुमा झट उसे गूँधने लगी। और हेमा ने कुसुमा के सहयोग से तैयार आटे के तीन बड़े टिक्कड़ ठोककर, उन्हे अलग-अलग शाल के पत्तो में लपेटकर, फिर पकने के लिए जलती धूनी की गरम-गरम राख के नीचे दबा दिया। रूपबहादुर से आटा लेकर उसके लिए भी उसी प्रकार एक बड़ा टिक्कड़ धूनी की राख मे दबा दिया।

पास के एक गोठ से अब बाँसुरी की मीठी-मीठी आवाज आने लगी थी। जंगल के पेड़-पौधो से टकराती और छन-छनकर आती हुई वह आवाज रजनी के अँधेरे में और भी मीठी और सुरीली लग रही थी। और मानो प्रकृति भी इस मीठे सुरीले राग मे अपना राग मिलाने के विचार से अपनी झिल्लियो को जगा देती ! और तब वे झिल्लियाँ मानो माँ के आदेश को अस्वीकार न करते हुए शहनाई के स्वर में तूती की आवाज की तरह अपने सम-रस स्वर को बाँसुरी के स्वर में मिलाकर गुंजाने लग जातीं।

हेमा ने रूपबहादुर से पूछा—"रूप दाई ! मदेस के लोग भी बाँसुरी बजाते हैं ? और इसी तरह बजाते हैं ?"

"क्यों नहीं बहिनी ?"—रूपबहादुर ने जवाब दिया—"मगर कोइली की बोली सब जगह एक-सी होते हुए भी अलग-अलग ठाँव में, अलग-अलग गाँव में, और अलग-अलग बेला में उसकी मिठास अलग-अलग होती है न ! कोइली मदेस की आम की बगिया में भी कूकती है, मगर पहाड़ की आम की बगिया में, और पेड़ों पर कूकते

वखत उसकी बोली में कुछ और ही मिठास होती है! इस जगल में, इस रात की बेला में, एक गोठाले के मुँह से बाँसुरी की बोली में से जो मिठास निकलती है वह और जगह कहाँ पाओगी बहिनी!"

अब हरिशंकर ने भी प्रश्न किया—"अच्छा, बताओ तो रूप दाई! वह गोठाला अभी बाँसुरी मे कौन-सा गीत गा रहा है?"

रूपबहादुर ने क्षण भर ध्यान से सुनकर जवाब दिया—"ए आमाँ न रोए तिमी, पेनसिन काटेर छाड्उँला!"

"धत् रूप दाई!"—हरिशंकर ने हँसते हुए प्रतिवाद किया—"वह गाने वाला क्या कोई लाहुरे है जो रोती हुई आमाँ को भरोसा देगा—'ए आमाँ, न रोओ! तुम्हारे लिए पेनसिन कटाकर छोड़ जाऊँगा?"

"लाहुरे न होते हुए भी कोई लाहुरे का गीत क्यों नहीं गा सकता हरि दाई? हम देवता न होते हुए भी देवी-देवता के गीत तो गाते ही हैं?"

हरिशंकर चुप रह गया। रूपबहादुर ने फिर कहा—"तुम लाहुरे बनना चाहते थे न हरि दाई? इस गीत से समझ लो, लाहुरे असल में क्या होता है? बेचारा पेट की खातिर अंगरेज की फौज मे भरती हो चुका है, या भरती होने जा रहा है! अपनी आमाँ का एक ही छोरा है वह! आमाँ अपने इकलौते छोरे के लड़ाई पर जाते बखत रोती है! और छोरा अपनी आमाँ को समझाता है, दिलासा देता है कि वह रोती क्यों है? छोरे के मर जाने पर भी गुजारे के लिए उसे अगरेज बहादुर से पेनसिन तो मिलेगा ही? फिर वह रोती क्यों है? ...हाय! इस गीत से यही तो समझा जायगा कि आमाँ के प्यार से आमाँ का पेट कहीं बड़ा है? और वह अपने और अपनी आमाँ के पेट के लिए ही मरने जा रहा है? अगर वह अभागा, सिरफ पेट के बजाय अपनी आमाँ के प्यार और अपने मुलुक के प्यार के लिए मरने जाता, कितना अच्छा होता हरि दाई!"—कहते-कहते उसके स्वर में कुछ

भारीपन आ गया।

और हेमा की आँखों में आँसू थे। पलेक में आँखे पोंछकर वह बोली—"अगर मेहनत-मशक्कत करके अपने घर मे ही दो रोटी मिल जाय तो कभी भी लाहुरे न बनना चाहिए रूप दाई! अपने घर-परिवार का प्यार तियागकर सिरफ पेट की खातिर, और सो भी परायों की खातिर दूर देस मे जान गँवाने का डड भगवान किसी को भी न दे!"—कहते-कहते पुनः उसका स्वर आर्द्र हो उठा।

हरिशकर को भूख सताये जा रही थी। बोला—"जेठी! रोटी तो अब पक गई होगी! और न भी पकी हो तो लाओ, मै कच्ची ही खाऊँगा आज! भूख बडे जोर की लगी है!"

और रूपबहादुर उसके उतावलेपन पर हँस पड़ा। बोला—"भूख से बढ़कर 'बलियो' देवता और कोई नही होता हरि दाई! भगवान भी नहीं! इनसान भगवान को भले ही भूल जाय, मगर भूख को नही भूल सकता! ससार के गरीब इसी भूख की खातिर दूसरो के लिए काम करते हैं! अपनी जान गँवाते हैं! और ससार के अमीर भी इसी की खातिर दूसरो की जान लेते हैं! गरीबो को सताते हैं! गरीबो को भूखा रखते हैं! लगता है जैसे सारी दुनिया ही भूख के सहारे टिकी हुई हो! एक-दूसरे को नोच-खसोटकर खाना और जिये जाना! और अपनी ही तरह की भुक्खड़ औलादो को पैदा करके खुद मर जाना! जनावर और आदमी मे कोई फरक दिखाई नही देता! फरक सिरफ इतना ही कि जगल का बलियो जनावर कमजोर जनावर को एक ही झपट्टे मे मारकर खा जाता है! मगर चालाक और बलियो आदमी, सीधे-सादे और कमजोर आदमी को भूख से मजबूर बनाकर, तड़पा-तड़पाकर, धीरे-धीरे ऐसे खाता है कि ऊपर से पता ही नही चलता कि आदमी आदमी को खा रहा है!"

हरिशंकर को भूख बड़े जोर की लग पड़ी थी। अतः रूपबहादुर की बात पर अधिक ध्यान न दे वह रोटियों की ओर बढ़ चला। घूनी

से रोटियाँ निकाली जा चुकी थीं। उन पकी-अधपकी रोटियों को प्रचंड लालच के लहजे में वे इस प्रकार खाने लग पड़े जैसे चिता से खींच-खींचकर निकाले मांस-खडों को भूखे सियार नोच-नोचकर बड़े चाव से खा रहे हों!

(२२)

दूसरे दिन रूपबहादुर भी अपना घी का टीन लादे दूसरे गोठालों के साथ बाजार को चल पड़ा। हेमा ने योगी के लिए ठेकी भर दही भी उसके हाथ भेज दिया। आज गोठ और पशुओं की निगरानी की जिम्मेदारी हरिशकर पर थी। सभी गोठालों ने अपने मुख्य पशु के गले में एक बड़ी-सी घंटी बाँध रखी थी, ताकि जगल में उनके भूलने पर ढूँढ़ने मे ज्यादा कठिनाई न हो। हरिशंकर के पशुओं के समूह का नेता भी गले की घंटी की आवाज से वन को गुँजाता और मुखरित करता हुआ अपने अनुयायियो के साथ चरने यों चल पडा जैसे दल का सरदार बिगुल बजा-बजाकर बीहड़ पथ मे अनुयायियों का पथ-निर्देश करता बढ़ रहा हो! जगह-जगह जगल मे टुन-टुन की आवाज यों उठ रही थी जैसे किसी बडे तीर्थ के विभिन्न मदिरों से घटे-घड़ियाल की आवाज आ रही हो! हरिशंकर स्वय जंगल मे घास काटने चला गया, और हेमा तथा कुसुमा बरतन-भाँडे माँजने नाले के किनारे पहुँचीं। बरतन-भाँडे माँजकर वे अपने को भी माँजने लगीं। जैसे स्वर्ग की दो परियाँ अपने अंगो को पखारती स्वयं उस नाले की शोभा बढ़ा रही हों!

हेमा अपने मुँह को पखारकर मुसकाते हुए कुसुमा से बोली—"सच बताना बहिनी! तूने कल जोगी से क्या माँगा?"

और कुसुमा ने भी मुसकाते हुए बेहिचक जवाब दिया—"अपनी दीदी के लिए एक खूब सुन्दर छोरा दीदी!" फिर एकाएक भावना-भरे स्वर मे—"दीदी! जिस दिन तुम अपने पेट का एक छोरा मुझे दोगी तो नानी के लिए मैं अपने सारे गहने बेचकर खूब अच्छे-अच्छे

गहने बनवाऊँगी ! उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाऊँगी ! और दिन-रात उसे इस तरह छाती से चिपकाये रहूँगी, कि वह मुझे 'सानीमाँ' न कहकर 'आमाँ' कहा करेगा ! समझीं ?"

"समझी !"—हेमा ने भी मुसकाते हुए जवाब दिया—"मगर मैं तो अब बुढ़िया हो चली बहिनी ! मुझे नहीं चाहिए बाल-बच्चा ! हाँ, अपनी बहिनी के छोरे को जरूर सिखाया करूँगी कि वह मुझे तो 'आमाँ' कहे और मेरी बहिनी को 'सानीमाँ' !"—कहकर तनिक जोर से वह हँस पड़ी ।

बाईस-तेईस की उम्र में पहुँचकर भी हेमा संतानवती न बन सकी थी । हेमा से कुसुमा दो-तीन साल छोटी थी । पारी-पारी से दो तरुण पुरुषों से समागम के बावजूद वह भी अब तक गर्भ धारण न कर सकी थी । शारीरिक गुण-धर्मों की क्रिया-प्रक्रिया का कोई विशेष रहस्य हो इसमें शायद ! लेकिन इतना तो स्पष्ट था कि हेमा और कुसुमा अब भी सन्तानहीन थीं । किन्तु सन्तान की उनकी इच्छा अवश्य प्रबल थी । पर वे दोनों एक-दूसरी पर अपनी इच्छा और लालसा को जैसे लुटा देना चाह रही थीं ।

स्वर्ग की उन दो परियों के मुख से उस जंगल में जैसे हृदय का स्वर्ग बोल रहा था । जैसे परस्पर प्रेम की दौड़ में एक, दूसरी को पछाड़ देना चाह रही थी। एक का सुख ही जैसे दूसरी का सुख बन चला था। जैसे गंगा और यमुना एक में मिलकर अभिन्न स्वर में बतिया रही हों ! जैसे विधाता ने स्वार्थ-कलुषित मानव-समाज के कुरूप चेहरे पर दो अनुपम सुन्दर फूल खिलाकर सौंदर्य अथवा समाज के साथ गहरा मजाक किया हो ! जैसे बनमानुस के गले में मणि-माला डाल दी गई हो !

हेमा की बात पर कुसुमा तनिक उलहनाभरे स्वर में हँसते हुए बोली—"धत् ! क्या बोल रही हो तुम भी दीदी ! कोई दूसरा अगर सुन ले, तो तुम्हें 'बुढ़िया छोरी' कहकर चिढ़ाये ! रूप दाई ने क्या नहीं कहा उस दिन कि कांछी से जेठी ही कम उमर की दीखती है ? कहे देती

हूँ, अगर तुमने फिर ऐसा कहा तो मैं तुम्हें 'बुढ़िया दीदी' कहकर चिढ़ाऊँगी, और जाकर आमॉज्यू से भी कह दूँगी ! समझीं ?"

"अच्छा, कर देना चुगली भाई !"—हेमा ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"मगर मैं तो..."

हेमा की बात मुँह में ही रह गई। हरिशंकर जंगल से घबड़ाया हुआ, दौड़ता हुआ-सा, वहाँ आ पहुँचा। और आते ही हाँफते हुए बोल उठा—"बाबइ ![1] ओ जेठी ! ओ कांछी ! जरा इधर तो आओ ! देखो तो ! यह क्या हो गया ?"—कहते हुए वह उलटे पाँव नाले के किनारे फिर मुड़ भी चला।

जैसे चलती रेलगाड़ी में दो सहयात्रियों का सरस वार्तालाप अचानक जोर का धक्का खाकर रुक गया हो ! जैसे 'गार्ड' के परेशान चेहरे और परेशान स्वर ने अस्पष्ट रूप से भयानक दुर्घटना की खबर उन्हें दे दी हो ! हरिशंकर सचित अस्पष्ट खबर देकर उलटे पाँव दौड़ता हुआ वापस भी चला गया। अवश्य कोई भयानक बुरी बात है यह सोचकर हेमा और कुसुमा भी झट हाथ-पाँव माँजना छोड़ घबड़ाई हुई अपने पति के पीछे-पीछे दौड़ चलीं। कुछ दूर आगे जाते ही एक झाड़ी मे पहुँचकर वहाँ का दृश्य देखते ही हेमा एकाएक चीख पड़ी—"अरी, ओ ये क्या ? ये तो अपनी कांछी बुहारी है बहिनी ! आमइ ![2]"—कहते काछी !! हुए उसने अपनी छाती भी पीट ली।

कुसुमा भी क्षण भर बाद ही घटना-स्थल पर जा पहुँची। उस दृश्य को देख वह तो अवाक् रह गई। सतरह-अठारह साल की एक अत्यंत सुन्दरी तरुणी खून से लथ-पथ वहाँ मृत-प्राय पड़ी थी। और एक सद्योजात शिशु उसकी बगल मे ही 'केहाँ-केहाँ' करके चीखता हुआ पड़ा था। और उस मृतप्राय तरुणी का एक हाथ उस शिशु को मानो

---

१. बाबइ = बाप रे !

२. आमइ = मइया री !

टटोलता हुआ तनिक-तनिक डोल भी रहा था। जैसे अपने हृदय के अभी-अभी निकले टुकड़े को बेहोशी की हालत में भी वह टटोल रही हो! खोज रही हो!

हेमा ने झट अपने खुरपेटे से हॅसिया निकालकर उस बच्चे की नाभि-नली काट दी। और ऑसूभरी ऑखो से उसने कुसुमा को विह्वल स्वर मे झट आदेश दिया—"तुम बच्चे को सम्हालो बहिनी!" और झट अपनी 'घलेक' और 'मुजेत्र' उतारकर उसे देती हुई—"इसे इसमे लपेटकर गोठ मे लिये चलो! मै बुहारी को उठाके लिये चलती हूॅ! अब भी परान बाकी है!"—कहकर उस मृत-प्राय तरुणी को खूब यत्न से अपनी गोद मे समेटकर वह खूब तेजी से गोठ की ओर चल पडी।

गोठ मे पहुॅचकर बडे यत्न से उसे बिछौने पर लिटाकर झट हरिशकर को आदेश देती वह बोली—"जाओ जी! दौड़कर गोठालो मे जाकर पूछो तो! शायद कोई दवा-दारू जानता हो! नही तो थारुओं के गॉव मे दौड़ जाओ! अगर वहॉ कोई बैद न मिले तो सीधे बाजार मे जाकर बोलो! वहॉ से कोई दवा लेते आओ! रूप दाई से मिलकर कहना! कोई दवा-दारू लेते आवे! और उस बाबा से भी फूल-भभूती लेते आना! आमइ! यह क्या हो गया बुहारी को!"—कहते हुए वह अत्यत बेचैन हो पडी।

हरिशकर घबड़ाकर गोठालों की ओर दौड पड़ा। लेकिन कुसुमा को झट एक तदबीर सूझ गई। हेमा से वह बोली—"दीदी! अपने पास थोड़ी 'रक्सी' तो बची है न! जरा एक घूॅट पिला दो बुहारी को! बाहुनी हुई तो क्या? दवा-दारू मे कोई दोस नहीं लगता! जरा होश तो आ जाय उसे!"

"तो लाओ न!"—हेमा अत्यंत व्याकुल होकर बोली।

और कुसुमा ने झट रक्सी की बोतल हेमा के हाथ मे थमा दी। लेकिन हेमा ने देखा कि उस तरुणी के दॉत पर-दॉत बैठ चुके हैं। हेमा

पुनः व्याकुल होकर बोल उठी—"इसके तो दाँत लगा है भाई! तुम जरा पानी के छींटे तो डालो इसके मुँह पर! और मैं इसकी नाक दबाती हूँ!"

कुसुमा ने वैसा ही किया। पत्तीदार डाली से हवा भी करने लगी। और कुछ क्षण बाद ही उस तरुणी में तनिक जीवन का संचार होता प्रतीत हुआ। साथ ही हेमा के प्राणों में भी जैसे प्राण लौट आये। और उस तरुणी के दाँत खुलते ही उसने झट उसके मुँह में रक्सी की कई बूँदें डाल दीं। रक्सी की गरमी ने जैसे एकाएक उसकी नसों मे दौड़कर सुप्त प्राणों को जगा दिया। कुछ क्षण बाद ही उसके नेत्र खुल गये। भीतर धँसी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में जैसे शून्य भरकर कुछ क्षण वह ताकती रही। उसकी स्मृति की समस्त रेखाएँ जैसे मिट चली हों! अपने बच्चे के साथ ही जैसे वह भी नये सिरे से ससार में आई हो! लेकिन कुछ क्षण बाद ही हृदय के धुँधले आकाश में स्मृति की बिजली जैसे एकाएक कौंद उठी। और उस बिजली के क्षणिक क्षीण आलोक मे वह हेमा को पहचान गई। और उस जगल मे पहुँचने की अपनी स्थिति भी स्मृति में उभर आई। अतिशय दर्दभरा अपना जीवन भी आँखों मे झट उभर आया।

उन दर्दभरी बड़ी-बड़ी आँखों से हेमा को पहचानकर अत्यंत क्षीण स्वर मे गद्गद कंठ से केवल इतना वह बोल सकी—"दीदी!"

"हाँ बहिनी!"—भावना-विह्वल स्वर में इतना कहकर हेमा एकाएक खूब जोर से रो-सी पड़ी।

लेकिन उस तरुणी की आँखें फिर बद न हो सकी। अचानक जैसे रो पड़ने के प्रयास में वे और भो फटकर बड़ी बन गई। बडे जोर की हिचकी उठने के साथ ही वे निकलकर जैसे बाहर आ गईं। क्षण भर पहले जीवन को उन आँखों में आसन जमाते देख मानो मृत्यु ने पीछे से एक जोर का धक्का देकर उसे निकाल बाहर कर दिया हो! क्षण भर पहले की उन दर्दभरी करुण आँखों पर अब एकाएक मृत्यु के

आरूढ़ होते ही बड़ी भीषण बीभत्सता छा गई। लेकिन फिर भी मृत्यु की बीभत्स छाया मे से करुणा भी झॉक ही रही थी! रक्सी की स्वल्प आहुति के सपर्क से तिनके की आग की तरह जैसे जीवन की जोत एकाएक भभककर फिर अचानक बुझ चली!

हेमा व्याकुल हो उठी। वह पुनः जैसे तिनके डाल-डालकर उस जोत को जलाने की कोशिश करने लगी। लेकिन रक्सी की अनेक बूँदे उसके मुँह मे डाली जाकर भी अदर प्रविष्ट न हो सकी। उसके पुनः लग-उठे दॉतो को छुड़ाने के प्रयास मे हेमा ने उसकी नाक फिर दबाई। कुसुमा ने फिर उसके मुँह पर जल के छींटे दिये, हवा की, लेकिन उस तरुणी के न फिर दॉत खुले, न ऑखे हिलीं। उन फटी ऑखों की राह जैसे जीवन की ज्योति सदा के लिए निकलकर केवल स्मृति की राख वहॉ छोड़ गई! हेमा और कुसुमा ने मृत्यु के इस बीभत्स भीषण रूप को जीवन मे शायद पहली बार देखा था। अतः वे सहसा उस रूप को पहचान न सकीं। किन्तु कुछ क्षण बाद जब उन्हें मृत्यु का निश्चित विश्वास हो गया तो अचानक फुफकार छोडकर वे रो पडी। उनके सम्मिलित करुण क्रन्दन से अब एकाएक गोठ और जगल के पेड़-पौधे भी हिल उठे। जैसे उस शोक से अचानक आहत हो वे भी ध्वनित और मुखरित होने लग पडे!

कुसुमा उस सद्योजात शिशु को गोद और कपड़े की गरमी मे खूब यत्न से छिपाये बिलख-बिलखकर रोने लगी। और हेमा उस अभागिन के शव से लिपटकर चीखने और चिल्लाने लग पडी। शोकावेग से जैसे पागल हो उस शव को सबोधित कर-करके वह बोलने लगी—"ओ-ो ो बहिनी! एक बार और तो मुझे दीदी कह! एक बार और तो अपनी ऑखों मे ऑसू भरकर मुझे देख! अपने बच्चे को देख!··· ओ-ो ो बहिनी! इस तरह क्यों रूठ गई तू-ऊ-ऊ? मैने कभी कोई कड़ा वचन तुझसे कहा नहीं! कभी कोई दुख पहुँचाया नहीं! तू क्यों रूठ गई? एक बार और मुझे दीदी कहकर तो बुला! एक बार फिर

आँखों में आँसू भरकर मुझे देख तो ले ! मै तेरी वही दीदी हूँ बहिनी ! ओ-ो ो मेरी बहिनी-ई-ई-ई··· !"

लेकिन बहिनी के मुँह से कोई जवाब न मिला। उसकी आँखों में आँसू न उभर सके। और तब हेमा मानो और भी पागल होकर फिर बोलने लगी—"हाय ! तेरे आँसू भी लूट लिये लुटेरे ने ? तेरी इज्जत लूट ली ! तेरी जिनगी लूट ली ! तेरा सब कुछ लूट लिया उस अधरमिये ने ! मगर एक बार तनी जी खोलकर अपने मुँह से सब कुछ बता तो बहिनी !" और फिर एकाएक वह अभिशापों की वर्षा भी करने लगी—"सतियानास होवे उस अधरमिये का जिसने तेरा ऐसा हाल किया ! सतियानास होवे उस पापी समाज का जिसमे तेरी-जैसी अबलाओं के लिए कोई जगह नहीं ! कोई ठॉव-ठौर नहीं ! आग लग जावे उस धरम मे जिसमें तेरी-जैसी दुखियाओं के लिए जरा भी दया-मया नहीं ! जरा भी दरद नहीं !···"

लेकिन अभिशापों की यह वर्षा भी उस जगल के पत्तों से टकराकर जैसे व्यर्थ बन गई। अब हेमा उस शव को छोड़कर पृथ्वी माता की गोद में लोट-लोटकर रोने लगी। वह मृत महिला समाज से तिरस्कृत और भगाई जाकर ही इस रूप में उस जंगल में पहुँची थी हेमा इसे बगैर कहे ही जान गई थी। वह मृत तरुणी आखिर उसी कुल की विधवा बहू थी जिस कुल की अब स्वय हेमा और कुसुमा वधू बनी थीं। क्या पता कि हेमा और कुसुमा को ढूँढ़ती-ढूँढ़ती ही वह अभागिन वहाँ पहुँची हो ? समाज द्वारा तिरस्कृत और सताये लोगो के प्रति हेमा के हृदय में यों भी स्वाभाविक सहानुभूति भरी रहती थी ! पर वह तो उसके अपने श्वसुर-कुल की एक सताई हुई विधवा अनाथ वधू थी ! और उसका वैसा दर्दभरा वह अन्त ! जैसे कोई परम वत्सला माँ अपनी कोख की सतान के उस परम करुण अन्त पर अत्यन्त आहत हो धरती में लोट-लोटकर रो रही हो !

और शव के पास बैठी कुसुमा भी उस बच्चे को गोद में सम्हाले,

जोर-जोर से हिचकियाँ लेकर रोने लगी थी। उनकी रुलाई की ध्वनि सुनकर पास के गोठ से एक गोठाला भी आया, लेकिन वह निर्वाक और निस्तब्ध होकर खड़े-खड़े इस अतर्कित करुण दृश्य को देखता रहा। उसकी समझ मे साफ कुछ न आ सका। वह कुछ पूछ भी न सका।

रूपबहादुर के साथ हरिशकर भी दो-तीन घटे बाद खाली-हाथ वापस आ गया। उसे न कोई दवा मिली, न कोई वैद्य मिला। वह दौड़ा हुआ बाजार मे पहुँचा, और रूपबहादुर को साथ लेकर दवा-दारू और वैद्य को ढूँढ़ने पर भी न पा सका। वे उलटे पॉव गोठ की ओर मुड़ चले। रास्ते में योगी की फूल-भभूती उन्होंने अवश्य ले ली, पर फूल-भभूती के सामर्थ्य से, और किसी दवा अथवा वैद्य की शक्ति की सीमा से मरीज काफी दूर निकल चुका था। उसके प्राणों के वापस लौटने की आशा मरीज की ही तरह मर-मिट चुकी थी।

हरिशंकर और रूपबहादुर को देखते ही हेमा का शोक कई गुना बढ़ गया। शोक की प्रचंड लहरों से अवश हो चिग्घाड़ मारकर वह रो पड़ी—"ओ-ो-ो अभागे! तुम कहाँ रह गये इतनी देर! जब बुहारी चली गई, तो अब आये हो लौटकर? बुहारी ने आँखे खोली थीं! जबान भी खोली थी! वह सिरफ मुझे एक बार 'दीदी' कहकर हमेशा के लिए चली गई!"—इतना कहकर वह फिर छाती-कपार पीटती भूमि मे लोट-लोटकर रोने लगी।

सभ्यता का सस्कार मनुष्य के गभीर शोक को भी संयम की कड़ी में बाँधकर अधिक उछलने नहीं देता। लेकिन ग्राम्य-समाज की सरलता अतिशय शोक से टकराकर उसी प्रकार उछलकर सीमाओं को पार करना चाहती है जैसे कि पहाड़ की नदियाँ चट्टानों के अवरोधो से टकराकर। वही सवेग आवाज! वही प्रचंड हृदयवेधी हुंकार! जैसे दुख के बधन से निकल भागने को विद्रोही बन्दी हृदय का सरल सवेग स्वर हो वह!

हरिशंकर भी अब बैठे-बैठे आँखों पर हाथ रखकर चुपचाप रोने लगा। सौतेले छोटे भाई की वह विधवा थी। यदि उसका हृदय कुल-गौरव के थोथे अहंकार से आविष्ट होता, तो बजाय रोने के घृणा और क्रोध के पर्दे में अपनी नाक छिपाने की वह भी कोशिश करता। लेकिन उसका हृदय भी मनुष्यता के उसी आवेग से आविष्ट था जिससे स्वयं हेमा और कुसुमा का। उन तीनों के हृदय जैसे समान भावनाओं के सूत्र में बँधे हुए थे। उस सूत्र के हिलते ही जैसे तीनों एक साथ हिलने लग जाते। सितार के तार की तरह किसी एक के हिलते और ध्वनित होते ही जैसे सारे-के-सारे हिलने और बजने लग जाते। हेमा रो रही थी, कुसुमा रो रही थी, फिर हरिशंकर का हृदय कैसे मूक, उदासीन बना रह जाता? और वह पराया रूपबहादुर भी तो रो रहा था!

हेमा अब एकाएक उठ खड़ी होकर रूपबहादुर को सम्बोधित करके बोलने लगी—"रूप दाई! मुझे सब कुछ मालूम था! माइली दीदी ने मायके जाने से पहले मुझे सब कुछ बता दिया था! मगर मैं इस अभागिन दुखिया का ख्याल करके ही चुप रह गई! मरद तो कुकरम करके भी बच जाता है, मगर सारा दोस औरत पर डाला जाता है! उसी की दुरदसा होती है! आप ही ने कहा था न रूप दाई—'सब गरीब भाइ-भाई!' मैं कहती हूँ—'दुनिया के सब दुखिया भाई-भाई! भाई-बहिनी!' हम गरीब हैं! दुखिया हैं! तो चलो न, हम सब दुखिया मिलकर अपनी इस दुखिया बहिनी के दुख का बदला चुकाएँ उस पापी मुख्या से! जयशंकर से! क्यों चुपचाप बैठकर रो रहे हो तुम लोग?"

और तब एकाएक क्रोध में पुनः उन्मत्त हो वह हरिशंकर के निकट जा पहुँची। और एकाएक उसके भोटो के भीतर से जनेऊ को खींचते हुए बोली वह—"तोड़कर निकाल फेंको इस पाप और पाखंड की निशानी को! 'तगा' पहनकर ऊँची जात का बनते हैं! 'तगाधारी' बनते हैं! जात-भात अलग रखते हैं! मगर देखो, एक तगाधारी उपाध्ये

बाहुन की करतूत ! निकाल फेंको इस पाप को निशानी को ! यह आदमी को अच्छा न बनाकर बिगाड़ता है ! कुकरम की सीख देता है ! पापी बनाता है ! एक आदमी को दूसरे आदमी से अलग करता है ! हम दुखिया हैं ! गरीब हैं ! हम सबकी जात-भात एक है ! धरम-करम एक है ! तोड फेंको इस भेद-भाव की निशानी को !"—कहते हुए उसने स्वय जनेऊ के उन धागो को अपने मजबूत हाथो से पकड़कर तोड़ दिया। और फिर उन्हे पति के भोटो के भीतर से खीचकर, तलहथियों से रगडकर, एक गोला-सा बनाकर, उसपर अतिशय घृणा से थूककर दूर फेंकते हुए कहा—"जा ! भाग हमारे बीच से ! भेद-भाव की निशानी ! पाखंड की निशानी ! बदमाशी की निशानी ! बेईमानी की निशानी !"

हरिशंकर ने जरा भी प्रतिवाद या प्रतिरोध न किया।

सूर्य अस्तोन्मुख हो चला था। गोठ के आँगन मे से उठकर उसकी किरणे वृक्षो के पत्तो पर लुढ़कती हुई जैसे उस सामूहिक शोक की सहभागिता को जता रही थीं। आँगन मे शोक का ज्वार भी अब क्रमशः मंद हो चला।

अब हेमा ने दाह-संस्कार की याद दिलाते हुए कहा—"तो अब बैठकर रोने से क्या होगा जी ? बेरा ढलने लगा ! इस दुखिया के 'ल्हास' (लाश) को फूँकने का उपाय तो करो अब !"

और यह आदेश पाते ही झट रूपबहादुर और हरिशंकर कुल्हाडे लेकर लकड़ी काटने लग पड़े। और हेमा आँसू-भरे नेत्रो से, ताजा-ताजा खरीदकर लाये अपने हिस्से के गुन्यू, चोलो; घलेक और मुजेत्र के कपडे से उस शव को सजाने लगी।

कुसुमा ने भी अश्रुभरे नेत्रों से भराये स्वर मे प्रार्थना की—"दीदी ! मेरे कपड़े भी बहिनी पर डाल दो न ! बड़ा दुख पाया जिनगी मे बहिनी ने ! स्वरग में बैठी वह देख तो लेगी कि हम मिलकर उसे प्यार करते हैं !"

वह आगे कुछ बोल न सकी। हेमा ने उसका अनुरोध मान लिया। और कुछ देर बाद उसी नाले के किनारे चिता की लपटों से जगल का कुछ भाग आलोकित हो उठा। जैसे उस विधवा की आहें चिता की आग से निकल-निकलकर पेड़-पौधों पर फैलती गई हों! उस के जीवन की आहभरी कहानी के कण उस चिता की लपटों से बिखर-बिखरकर जैसे हवा में फैल रहे हों—जैसे नेपाल की तरुण पीढ़ी को संबोधित और उद्बोधित करते हुए, नेपाल के परम क्रूर पाखडभरे सामन्ती ढाँचे को जबरदस्त चुनौती देते हुए!

× × ×

स्वर्गीय शिवशंकर पत के दो उपाध्याय या कुमाऊँनी ब्राह्मण पुत्र थे—जयशंकर और उमाशंकर। लेकिन दोनों सगे होते हुए भी उम्र के ख्याल से पिता-पुत्र जैसे थे। एक जैसे पतझड का पीला पत्ता हो, और दूसरा वसंत का नव पल्लव! भाइयों में जायदाद के बँटवारे के बाद दोनों उपाध्याय भाई साथ रहे। क्योंकि उमाशकर उस समय भी किशोरावस्था की सीमा को पार न कर सका था। पर विवाह उसका हो चुका था। जब वह वय के बारहवें वर्ष में ही था कि एक कुलीन, सुन्दरी, दस-वर्षी उपाध्याय-कन्या का पाणिग्रहण उसे करा दिया गया; "दशवर्षा भवेत् कन्या" इस शास्त्र-वचन के अनुसार! लेकिन दो वर्ष बाद ही भाग्य के विधाता ने पार्वती का सौभाग्य छीन लिया। जैसे किसी लुटेरे ने ऐसे व्यक्ति का धन छीन लिया जिसने न कभी उस धन का स्वयं भोग किया हो, और न उसके मूल्य और महत्त्व को लुटे जाने के समय तक महसूस किया हो!

लेकिन जब पार्वती के अगों में यौवन के शैतान ने प्रवेश करना आरभ कर दिया तब उसका लुटा धन कई-गुना मूल्य और महत्त्व के साथ उसके हृदय में उद्भूत हुआ। क्योंकि नष्ट या अप्राप्त वस्तु का कहीं अधिक मूल्य और महत्त्व अनुभव होता है प्राप्त वस्तु के समक्ष। कर्म-कांडी विद्वान् ब्राह्मण की कन्या होने के नाते पति की मृत्यु के बाद

भी पातिव्रत के माहात्म्य को वह खूब जानती और मानती थी। और इस माहात्म्य-बोध के रंग मे रँगकर नष्ट पति का मूल्य व महत्त्व और भी बढ़ता गया, जैसे आग मे तपे चमकीले स्वर्ण का! लेकिन नसों मे यौवन का शैतान भी उभरकर जब-तब उसे निषिद्ध फलों की ओर आकृष्ट कर ही देता। किन्तु अपनी उच्च जाति और कुल की मर्यादा का देवदूत उसे झट सावधान भी कर देता। शिराओं मे इच्छाओ की उभरी उग्र उष्णता जैसे देवदूत-निर्मित सरोवर मे नहाकर कुछ समय के लिए शान्त हो जाती।

पार्वती के वैधव्य के कुछ मास बाद ही उसकी सास भी मानो प्रिय कनिष्ठ पुत्र की वियोग-व्यथा बर्दाश्त न कर उसके पास चली गई। सास के संरक्षण से वंचित पार्वती अपने जेठ जयशंकर के सरक्षण मे ससुराल में रहने लगी और जब-तब मायके मे भी। जयशकर अपने स्वभाव के विपरीत अपनी इस विधवा भ्रातृ-वधू पर खूब सदय और उदार रहा करता। क्योंकि नेपाली कानून के अनुसार अपने मृत पति की सपत्ति की पूरी हकदार थी वह। इस कारण जयशंकर और भी सावधान रहा करता कि कहीं पार्वती उसके किसी व्यवहार से नाराज हो अपनी सपत्ति के साथ उससे पृथक् न हो जाय। अतः अपनी पूरी संपत्ति की रक्षा-भावना ही उस शैतान के हृदय मे भी उस विधवा के प्रति सामयिक सहृदयता और उदारता की सृष्टि किया करती। और पार्वती के माता-पिता कुल-गौरव के अहं-भाव एवं अपनी पुत्री को श्वसुर-गृह की प्रचुर संपत्ति की अधिकारिणी बनाये रखने के विचार से उसके मन को धार्मिक कृत्यों के रक्षा-कवच में बाँधकर यौवन के शैतान से उसकी रक्षा के प्रयास में सदा सन्नद्ध रहा करते।

लेकिन जब-जब पार्वती की शिराओं में आकांक्षा का शैतान उभर आता, वह अपने पातिव्रत के संबध में सोचने भी लग जाती। मानो शैतान ही उसके मन-मस्तिष्क मे प्रविष्ट हो चैतन्य भरा करता। इस सम्बन्ध में अपने पहाड़ी समाज की यह प्रथा उसके मनश्चक्षु में उभरने

पर जैसे उसकी उभरी चेतना उस प्रथा पर कस-कसकर व्यंग किया करती —"उपाध्याय की कोई विधवा चाहे तो किसी उपाध्याय की 'ल्याइता' बन सकती है ! और इस प्रकार वह 'पतिता' कही जाने से भी बची रह सकती है ! और उसके पेट से पैदा हुई संतान उपाध्याय न रहकर जइसी ब्राह्मण जाति की मानी जाती है !" फिर अपने सरल और भोले दिल से वह बार-बार यह प्रश्न किया करती—"यह कैसा अजीब रिवाज कि पातिव्रत के पालन की कड़ी मर्यादा भी ! और चाहने पर उसे तोड़ देने की यह खुली आजादी भी ! अगर पातिव्रत की मर्यादा को तोड़ना घोर पाप है, तो वह 'ल्याइता' बनी हुई उपाध्ये विधवा भी घोर पापिन ? और उस घोर पापिन को ल्याइता बनाने वाला उपाध्ये भी घोर पापी !" लेकिन वह अनेक उपाध्यायों के घर ऐसी पापिनों को ल्याइता बनकर रहते देख चुकी थी, और उन उपाध्यायों के आगे समाज की मर्यादा और सरकार के कानून को चुप रहते भी देख चुकी थी। वह बार-बार आश्चर्य-भरे दिल से सोचती और पूछा करती—"यह कैसी मर्यादा ? यह कैसा कानून ?" लेकिन कुछ समाधान न पाकर वह चुप रह जाती। किन्तु खुले दिल से किसी और से पूछने या प्रश्न करने का साहस वह न कर पाती। लज्जा और सकोच उसके साहस को दबा देते। पातिव्रत की मर्यादा पर दृढ़ रहने के अपने पूज्य विद्वान पिता के आदेश और उपदेश उसे मौन रहने पर, आकांक्षाओं को दबा देने पर मजबूर कर देते।

पार्वती के विद्वान पिता के परामर्श और अनुरोध पर मुखिया जयशकर उसके लिए समय-समय पर कथा-पुराण रखाता। उसके हाथ से दान-पुण्य करा देता। अधिकतर विद्वान पिता को ही अपनी पुत्री के धर्मयज्ञों का प्रधान पुरोहित बनना पड़ता। गत वर्ष जयशंकर ने गाँव से गुजरती पगडंडी पर पार्वती के हाथ से बड़ और पीपल के पेड़ लगवाकर एक पक्का चबूतरा भी बनवा दिया था। उन दोनों के विवाह-यज्ञ में उसने खुलकर खर्च भी किया था। इस प्रकार अपनी 'भाई-बुहारी' की

सहानुभूति, आदर और विश्वास वह जीत चुका था। इस यज्ञ के कुछ दिन बाद ही उसने 'मधु-त्रेणी'[१] में उसे वैशाख के पुण्य मास का 'कल्पवास' कराने का प्रबन्ध भी किया। और वह स्वयं अक्सर अपने गॉव से आकर कल्पवास मे निरत अपनी भ्रातृ-वधू की खोज-खबर लेता। कथा-श्रवण एव उस पावन संगम मे स्नान के लोभ से वह दो-चार दिन रुक भी जाता। निम्बार्क सम्प्रदाय के एक नेपाली वैष्णव आचार्य की कथा वहॉ चालू थी। श्रीमद्भागवत की रास-पंचाध्यायी की उसकी कथा तो इतनी सरस थी कि एक बार उसके लोभ से जयशंकर को वहॉ दिनो रुक जाना पडा।

पार्वती नियमपूर्वक प्रातः, मध्याह्न और सायं—त्रिकाल-स्नान किया करती। स्वय एक बार, दिन के अतिम पहर भोजन किया करती। पर अपने 'जेठाज्यू' के लिए वह दोनों शाम भोजन तैयार करती। नेपाली प्रथा के अनुसार सुबह-शाम दूर से ही दोनो हाथ जोड़कर पूज्य 'जेठाज्यू' को नमस्कार भी किया करती। क्योकि भ्रातृ-वधू और जेठ का किसी प्रकार भी शारीरिक संपर्क धर्म से निषिद्ध था, पातित्यकारक! नेपाली समाज मे घूॅघट आदि काढ़ने की पर्दे की प्रथा न होते हुए भी इस प्रकार के पर्दो की प्रथा अवश्य है।

पार्वती ने नियमानुसार आज मध्याह्न-पूर्व की कथा सुन लेने के बाद संगम पर मध्याह्न-स्नान किया। सीता-राम एवं शिव के मन्दिरों मे जाकर पूजा-अर्चा की। फिर अपने कमरे में आकर वह रसोई के काम में लग गई। अभी वह झुककर आॅच फूॅक रही थी। जयशंकर उस कमरे के एक कोने मे कंबल पर बैठा हुक्का गुड़-गुड़ा रहा था। पीठ

---

१. जहॉ 'मादी' (मधुमती) नदी काली गंडकी में आकर मिलती है। काली गंडकी में विभिन्न नदियों के सगम के स्थल ऐसी अनेक वेणियों के नाम से प्रख्यात हैं। जैसे—'रुद्र-वेणी', 'श्वेत-वेणी' आदि आदि।

की स्वच्छ साड़ी पर पार्वती के सद्यःसिक्त काले और खुले बाल लहरा रहे थे। नवयौवन का अरुणाभ मुख धुएँ के आघात से और भी लाल बन चला था। और रह-रहकर सद्यःप्रज्वलित अग्नि की ज्योति में उसके चेहरे की ज्योति और भी सजीव हो उठती। जैसे प्रकाश के सपर्क से रगीन स्वर्ण-प्रतिमा चमक-चमक रही हो! और कोने में बिछौने पर बैठे जयशकर को इस क्षण ऐसा लग रहा था जैसे यौवन का ताजा-ताजा गुलाब का फूल उस चूल्हे की आग से पिघल-पिघलकर अपने इत्र के सौरभ को उस कमरे में बिखेर रहा हो! वह हुक्का पीते-पीते ही पार्वती की पीठ पर लहराते उन काले बालों को देख रहा था। छिपी आँखों से उसके चेहरे की चमकती ज्योति को देख रहा था। अभी कल-परसों ही पार्वती ने ऋतु-स्नान किया था। मासिक-धर्म के प्रवाह की अवधि में पार्वती के लिए भी जयशंकर को ही चूल्हा जलाना पडा था। उस अवधि में पार्वती का चेहरा कुछ मुरझा भी चला था। लेकिन विकृत रक्तों के निकल जाने के बाद उसका चेहरा अब यों खिल उठा था ज्यों फुहार में धुला गुलाब का ताजा-ताजा खिला फूल! शिराओं में स्वच्छ रक्त के प्रवाह से नवयौवन के सौन्दर्य में नई दमक और चमक उभर आई थी।

जयशंकर मन-ही-मन गुलाब के उस ताजे फूल के सौरभ को, और उस नई दमक और चमक को महसूस कर रहा था, देख रहा था। और ज्यो-ज्यों उसे देखता और महसूस करता वह जा रहा था त्यों त्यों उसका मन उस चमकते गोरे चेहरे, और काले-काले बालों की ज्योति के जादू मे, और उस सौरभ-शराब के नशे में उलझता जा रहा था। आकर्षण का शैतान जैसे बडे वेग से उसे उस ओर खींचने लगा था।

अब वह हुक्का पीना छोड़कर एकाएक तकिये के सहारे बिछौने पर लेट गया। एकाएक दर्द की एक चीख उसके मुँह से निकल आई। पार्वती ने चौंककर पीछे देखा। और जयशंकर ने दर्द से कराहते स्वर में उसे आदेश दिया—"अभी 'भान्सा' बनाना छोड़ दो बुहारी! सिर

में बड़े जोर का दर्द है ! मै आज 'भात' नहीं खाऊँगा ! तुम अपने लिए बाद में बना लेना !"—इतना कहकर मारे दर्द के छटपटाते हुए वह बिछौने पर करवटें लेने लगा।

पार्वती एकाएक घबड़ा उठी। रसोई का काम झट छोड़कर, उठकर, अपनी आँखो मे बेचैनी का भाव-भरे बिछौने से कुछ दूर अपने जेठाज्यू के सामने वह खड़ी हो गई।

और जेठाज्यू ने कराहते हुए स्वर मे फिर आदेश दिया—"तेल को शीशी लाओ बुहारी ! तेल की शीशी ! शायद मालिश से आराम हो जाय !"

और पार्वती ने झट सरसों के तेल की शीशी उसके सामने लाकर रख दी।

जेठाज्यू ने पुनः कराहते स्वर मे आदेश दिया—"जरा अपने हाथ से मलो बुहारी ! अपने हाथ से ! आपत्-विपत् मे कोई दोष नहीं लगता ! फिर नहा-धोकर शुद्ध हो जायेंगे ! और देखो ! 'ढोका' (द्वार) बन्द कर दो, ताकि कोई दूसरा देख न ले ! कोई दूसरा आ न जाये ! फिर नहा-धो लेंगे ! शुद्ध हो जायेंगे !"

पार्वती ने अपने ज्येठाज्यू के आदेश का परिपालन किया। हिचकते और धड़कते दिल से अपने ज्येठाज्यू के सिरहाने वह बैठ गई। फिर अपने हाथ मे तेल डालकर उस तरुण व सुकोमल हाथ से उसके गंजे सिर की मालिश वह करने लगी।

जयशंकर कुछ देर आँखें मूँदे इस सरस व सुकोमल मालिश को खूब दिल की गहराई से महसूस करने लगा। और अपने सिर पर पार्वती की गरम-गरम साँसों की फुहारों को भी। शैतान जैसे दोनो के मन को एक साथ आन्दोलित किये जा रहा था। पार्वती की उन गरम-गरम साँसों में या तो सामाजिक मर्यादा को जीवन मे प्रथम बार तोड़ने की धड़कन थी, अथवा किसी अनुचित परिस्थिति में पड़ने की आशका का उत्कम्पन ! किन्तु स्वयं जयशंकर को ऐसा महसूस हो रहा था मानो उन

साँसो से कोई नशा निकल-निकलकर उसके मन को बड़े वेग से उत्तेजित किये जा रहा हो !

कुछ क्षण बाद परितृप्ति के नशे मे वह बोल उठा—"आह ! तुम्हारे हाथ में साक्षात् अमृत है बुहारी, अमृत ! भरोसा न था कि इस दर्द से इस बार बच सकूँगा ! सच कहता हूँ, तुमने मुझे आज जैसे जीवन-दान दिया ! तुम्हारे इस ऋण से कभी उऋण न हो सकूँगा बुहारी ! मेरे वचन पर विश्वास करो तुम !"

पार्वती अब आश्वस्त हुई। उसे सतोष हुआ कि उसकी मालिश व्यर्थ न गई। अपने परम दयालु जेठाज्यू के जान-लेवा दर्द को वह दूर कर सकी। संतोष की साँस ने जैसे कुछ क्षण पहले की आशका की साँसों को अचानक धीमी कर दिया।

अब जेठाज्यू ने फिर स्नेह-भरे स्वर मे आदेश दिया—"बुहारी ! सिर का दर्द तो बहुत कुछ दूर हो गया ! मगर वह दर्द अब नीचे उतर आया है ! पैरों मे ! जरा उसपर भी मालिश कर तो दो ! अपने हाथ के अमृत से उसे भी मिटा तो दो !"

पार्वती अब जेठाज्यू के पैताने मे आ गई। लेकिन पुनः एक अज्ञात आशका की धडकन उसके दिल मे उभर आई। पर जेठाज्यू के प्रति उसका हृदय कृतज्ञता से भरा हुआ था। अतः ऐसी दशा मे उसके किसी भी आदेश को अस्वीकार करना कम अनुचित न था। प्रथम स्पर्श से अचानक उत्पन्न धड़कन भी अब कुछ मन्द हो चली थी। दोनों हाथों में तेल डालकर पुनः मनोयोग से जेठाज्यू के पैरों की मालिश वह करने लगी। और जयशकर पुनः परितृप्ति के नशे मे बोलने लगा—"सचमुच तुम्हारे हाथ मे अमृत है बुहारी ! जहाँ-जहाँ तुम्हारा हाथ पड़ता है, दर्द के मिटते देर नहीं लगती !"......अच्छा बुहारी ! तुम राम-मन्दिर में 'आचारीजी' की कथा सुनने रोज जाती हो ! बताओ, कैसी कथा करता है वह ?"

"खूब सुन्दर ! खूब मीठी !"—पार्वती ने संतोष-भरे स्वर मे

जवाब दिया।

और जयशंकर ने भी प्रसन्नता-भरे स्वर में सहमति जताई—"हाँ ! मुझे भी ऐसा ही लगता है ! उसकी कथा से उठने को जी करता ही नहीं ! जब वह भगवान कृष्ण की लीला की कथा सुनाने लगता है, मुझे तो सारा ससार भूल जाता है ! अपना सारा काम-काज भूल जाता है ! इच्छा होने लगती है मैं भी पूरा 'कल्पवास' यही बिता दूँ ! कितना अमृत है उस कथा मे ! और उस कथावाचक के 'कहने के ढग मे ! और वही अमृत इस समय तुम्हारे हाथो मे भा मुझे अनुभव हो रहा है बुहारी !"

बुहारी के दिल की धडकन पुनः बढ़ चली। गोपियों के साथ भगवान कृष्ण की रास-लीला की याद ने जैसे बिजली की कौंद-सी उसकी नसो मे दौडा दी। लेकिन फिर भी वह चुपचाप मालिश करती रही। और जयशकर अब उदारता-भरे स्वर मे बोला उससे—"मैने अब सोचा है बुहारी, कि इन आचारीजी को अपने यहाँ भी ले जाऊँ ! और तुम्हारे हाथ से सकल्प कराकर तुम्हें उन्ही से अठारह पुराण सुनवाऊँ ? क्यों, क्या विचार है तुम्हारा ?"

पार्वती प्रसन्न होकर बोली—"जैसा विचार हो हजूर का !"

"हाँ ! विचार तो है ही ! एक बार जो शुभ सकल्प मन में उठ आया, उसे तुम्हारी खातिर पूरा तो करूँगा ही ! परवाह नहीं जितना भी खर्च पड जाय ! सारे इलाके के ब्राह्मणों को बुलाकर पुराण की ऐसी पूर्णाहुति कराऊँगा कि तुम्हारा जय-जयकार होकर रहेगा संसार मे !"

पार्वती भीतर से खिल उठी। प्रसन्नता की झलक ने उसके चेहरे को और भी सुन्दर बना दिया।

अब जयशंकर ने अपनी जाँघ को दबाते हुए तनिक कराहते स्वर में फिर कहा—"यहाँ बुहारी ! यहाँ ! अब दर्द यहाँ आ गया !'''लाज-संकोच न करो ! आपत्-विपत् के समय लाज-संकोच नहीं करते !"

लेकिन पार्वती संकुचित हो ही पड़ी। दिल की धड़कन सवेग हो ही उठी। परन्तु जेठाज्यू ने अभी-अभी कितनी बड़ी बकशीश का लालच दे दिया था उसे! अतः धड़कते दिल से ही वह आगे बढ़ने पर मजबूर हुई। ज्येठाज्यू की जाँघ पर वह धीरे-धीरे मालिश करने लगी। लेकिन कुछ क्षण बाद ही एकाएक अपने जेठाज्यू की भुजाओं के क्रूर मजबूत बंधन में वह इस प्रकार बंध और फँस गई जैसे बाघ के पंजों में कोई हिरनी! मुक्त होने का प्रयास करके भी वह मुक्त न हो सकी। मानो स्वयं निजी यौवन का छिपा शैतान अज्ञात रूप से उसे शिथिल करके उसके मुक्ति-प्रयास मे बाधा डाल रहा हो! लेकिन फिर भी वैधव्य की मर्यादा का देवदूत जैसे उसमें जोर भी भरने लगा। वह मुक्ति के लिए छटपटाने लगी। धीमे-धीमे स्वर मे प्रतिवाद भी करने लगी—"नहीं, ऐसा नहीं! नहीं, ऐसा नहीं जेठाज्यू! पाप लगेगा! दोष लगेगा!"

और जयशंकर ने कामुकता के आवेग में उसे और भी कसते हुए आश्वासन और चाटुकारिता से भरे कामविह्वल स्वर में कहा—"डरो मत! कुछ होगा नहीं! तुम व्यर्थ ही डरती हो! मैं तुम्हारा जीवन बरबाद होने न दूँगा! तुम्हें सुखी बनाऊँगा, सुखी! तुम्हारे सुख के लिए हर तरह का इंतजाम करूँगा! हर तरह का बलिदान करूँगा! तुम्हें किसी भी प्रकार की तकलीफ होने न दूँगा! विश्वास करो तुम! क्या आचारीजी ने कथा में नहीं बताया कि प्रत्येक पुरुष मे भगवान कृष्ण का अंश होता है, और प्रत्येक स्त्री मे भगवती राधा का? और अपनी आत्मा को राधा और कृष्ण में पूरे मन से अर्पित करके इहलौकिक लीला करने वाले नर-नारी अंत में मोक्ष के अधिकारी बनते हैं? तुम भगवती राधा में अपनी आत्मा अर्पित कर दो, और मै भगवान कृष्ण में अपनी आत्मा अर्पित कर रहा हूँ! फिर राधा-कृष्ण की इहलौकिक प्रेम-लीला में पाप कैसा? दोष कैसा? पाप नहीं लगेगा! धर्म होगा! मोक्ष मिलेगा! विश्वास करो तुम!"

और पार्वती ने भी जैसे आकांक्षा के छिपे शैतान से परिचालित हो अब तक के पातिव्रत और वैधव्य की सँजोई मर्यादा का, सयम का, अपने जेठ की कामुकता की वेदी पर इस अतर्कित रूप से अचानक बलिदान कर दिया ! लुटा दिया ! और जब सयम-मर्यादा की बॉध मे एक बार दरार पड़ ही गई, तो उसके चौडे होने मे अब कोई द्विधा-बाधा भी न रही। जयशकर वहॉ कई दिन रुक गया। और वह अपनी भ्रातृ-वधू से संपर्क-जन्य पाप के प्रायश्चित्त के लिए दूसरो को ऑख बचा-बचाकर प्रतिदिन छप्पर से पानी गिराकर उसके नीचे से गुजरने भी लगा।[1] और राधा-कृष्ण की आध्यात्मिक केलि-क्रीड़ा के नाम पर भ्रातृ-वधू के सतीत्व से वह हर रात खेलने भी लगा।

पार्वती भी नारी थी, हाड़-मांस की बनी हुई। अन्य नारियों की तरह उसमे भी नर-संपर्क की आकाक्षा थी। तिसपर नसो मे नवयौवन की दबाई हुई आग की सुलगती हुई गरमी ! जयशंकर के संपर्क से वह दबी हुई आग बड़े वेग से धधक चली। जयशंकर ने प्रथम बार तो बलात्कार किया था ; और पार्वती ने दो-तीन दिन इस बलात्कार को अनुभव भी किया ; प्रथम समागम और सभोग की पीड़ा को भी ; किन्तु उसके बाद वह स्वयं सरस हो चली। किसी तरुण से समागम-जन्य यौन-सुख का अनुभव उसे न था। अतः अधेड़ जयशकर से समागम का यौन-सुख उसे मूल्यवान प्रतीत होने लगा। और अब आचारीजी द्वारा कही जाने वाली रास-पचाध्यायी की रास-कथाएँ भी उसे अधिक मूल्यवान और मनभावन लगने लगी। मनु ऋषि का यह कथन जैसे अक्षरशः चरितार्थ हो चला कि—"सुरूप वा कुरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते !"[2]

---

१. नेपाली समाज की ऊँची जातियों मे छोटे भाई की पत्नी के शरीर से धोखे से भी सपर्क हो जाने के पाप के प्रायश्चित्त के निमित्त छप्पर से पानी गिरा या गिरवाकर उसके नीचे से 'जेठ' को गुजरना पड़ता है।

अर्थात् कोई सुन्दरी तरुणी नारी भी काम-वासना के आवेग में सुरूप, कुरूप अथवा युवा, अधेड़ और वृद्ध का विचार किये बिना किसी भी पुरुष से रमण कर लेती है !

इस प्रकार अपना कल्पवास पूरा करके पार्वती घर वापस आई। लेकिन कुछ दिन बाद ही जयशंकर ने पार्वती को पुनः 'मधु-वेणी' भेज दिया, सुदीर्घ तीर्थ वास के पूरे प्रबन्ध के साथ। आचारीजी को उसने नियमित कथावाचक के रूप में नियुक्त कर दिया। और अधेड़ उम्र की एक विधवा उपाध्ये बाहुनी को पाक-कर्म आदि के निमित्त पार्वती की सेवा में तैनात कर दिया। और वह स्वय हर सप्ताह मधु-वेणी जाकर एक-दो रात पार्वती के साथ बिता आने लगा। वह विधवा उपाध्ये बाहुनी दूती-कर्म में सुनिपुण थी। इस कारण ही जयशकर ने पार्वती की सेवा के लिए उसे नियुक्त किया था। 'गीतगोविन्द' की दूती की तरह वह भी कामोत्तेजक चाट-वचनों से राधा-कृष्ण की इस कलियुगी जोड़ी के प्रेम में रग भरा करती। और इस आध्यात्मिक केलि-क्रीडा को ससार के नेत्रों से छिपाये रखने मे सदा सन्नद्ध और सतर्क भी रहा करती।

नदी की बाढ़ के साथ रेतीली जमीन में भी पड़े पंक में बोया बीज अनायास बड़े वेग से उग आता है। जयशकर के वीर्य मे प्रकृति-दत्त प्रजनन-योग्यता थी। और पार्वती क्वाँरी धरती थी, स्वाभाविक उर्वरता से परिपूर्ण ! और तिसपर नवयौवन की सशक्त खाद से पटी हुई ! और तिसपर ऋतु-स्नाता ! अतः प्रथम समागम में ही वह गर्भवती बन चली। उसकी शिराओं मे गर्भाधान की प्रतिक्रिया आरंभ भी हो चली। जी मिचलाना आरम्भ हो गया। अग-अंग दर्द से जैसे टूटने लगे। सिर में चक्कर आने लगा। लेकिन उपाध्ये बाहुनी की ताकीद के कारण पार्वती किसी से भी चर्चा किये बिना सब कुछ चुप-चाप बर्दाश्त करती रही। और कुछ दिन बाद अन्दर गर्भ के आकार ग्रहण करते ही पार्वती स्वस्थ हो चली।

लेकिन उपाध्ये बाहुनी की चतुराई के कारण भोली पार्वती को फिर भी पता न चल सका कि वह गर्भवती बन चुकी है। जयशकर अपनी इस दूती के सहारे पैशाचिक कूटनीति का एक परम क्रूर खेल खेल रहा था। वह जान-बूझकर इस गर्भ को चुपके-चुपके बढ़ने देना चाह रहा था। और पार्वती के शरीर की बनावट भी कुछ ऐसी थी कि छह मास बाद कही अपने तनिक उभरे और उभरते पेट को देख-देख वह सशक हो चली। कार्तिक के पुण्य मास मे उसकी माँ भी तीर्थ-वास करने मधु-वेणी पहुँच गई थी। उसके कुशल नेत्रो से अपनी पुत्री का पाप छिपा न रह सका। और जयशकर तो पाँचवें मास के बाद से ही पार्वती के यौन-सपर्क से कुछ उदासीन रहने लगा। और छठे मास के बाद तो वह पक्का धार्मिक बन चला। जब कभी वह पार्वती की खोज-खबर लेने वहाँ आता, अपनी भ्रातृ-वधू की छाया तक से परहेज रखने का अभिनय किया करता। लेकिन उसके मन का पिशाच मन-ही-मन खूब खुश हुआ करता। हँसा करता। अपनी विशाल संपत्ति की आधी अधिकारिणी को कितनी आसानी से वह खत्म किये जा रहा है! और मुफ्त मे मजे लूट लिये सो अलग! गर्भ के पूरी तरह प्रकट होने पर वह चुटकी मलते पार्वती को 'पतिता' घोषित करके उसे घर से निकाल देगा! जात-पाँत से निकलवा देगा! और फिर उस विधवा की सारी सपत्ति अपने-आप उसके हाथ मे समा जायगी! और अभागी पार्वती या तो 'काली' मे डूब मरेगी, अथवा योगिनी बनकर कलंक-कलुषित मुखड़ा लिये दर-दर भीख माँगती फिरेगी!

माँ अपनी पुत्री के उभरे और उभरते पेट को देख-देख उसे अकेले मे फटकारती, गालियाँ सुनाती, छाती-कपार पीटती, पर वह कुटनी उपाध्ये विधवा जैसे पार्वती की रक्षा-कवच बनकर माँ के सामने उसके सतीत्व का बखान करती। उसके उभरे पेट को प्लीहा का रोग बता-बताकर उसकी माँ को शान्त करने का प्रयास करती। और पार्वती की भोली माँ भी उसकी बात पर अक्सर विश्वास कर कुछ शान्त हो

जाती। और दिखावे के लिए वह कुटनी विधवा प्लीहा के नकली घरेलू उपचार भी किया करती। और यह उपचार चलता रहा। और जयशंकर के आदेश-निर्देश पर पार्वती मधुवेणी में ही पड़ी रही। उसकी माँ भी कार्तिक का तीर्थ-वास पूरा करके अपनी पुत्री को उसके भाग्य पर ही छोड़ घर चली गई। लेकिन फिर भी वह खोज-खबर लेती रही। पार्वती का मायका वहाँ से चार-पाँच दिन पैदल के रास्ते पर था। अतः इस बीच केवल एक बार उसका बाप वहाँ आ सका। पर वह बेचारा भी विचित्र मनोदशा लिये घर वापस चला गया।

पार्वती का प्लीहा बढ़ता ही गया। और एक दिन जयशंकर के संकेत पर वह कुटनी विधवा पार्वती को अकेली मधुवेणी में छोड़ गाँव वापस आ गई। और जयशंकर के इशारे पर ही उसने झट खुले-आम प्रचार करना भी शुरू कर दिया—"छी, छी! कुत्ते को चाहे कितने भी जतन से रखो, मगर मैला वह जरूर से चाटेगा! और जवान औरत को चाहे कितना भी धरम-करम, नेम-व्रत में बाँध के रखो, मगर मरद वह जरूर से ढूँढेगी! उसके जेठ ने मुझे इसी खातिर उसके साथ लगा दिया कि उसका पाँव कहीं न फिसले! मगर पशु और जवान औरत का सुभाव एक-जैसा! चाहे कितनी भी होशियारी से पशु को खेत के किनारे से ले चलो, मगर हरियाली देख एक दो गरास वह जरूर से चर लेगा! मेरी और जेठ की वैसी कड़ी निगरानी के रहते भी जाने कहाँ से, किससे करा ले आई!......"

और जयशंकर ने उस कुटनी के भागकर गाँव पहुँचते ही अपनी एक कमारी की मारफत मधुवेणी में ही पार्वती को कहला भी भेजा—"अब वह इस घर की ओर कदम रखने की निर्लज्जता न दिखाये! या तो वह वहीं काली में डूब मरे, या कहीं और जगह चली जाय! अब उस पतिता के लिए इस घर में कोई जगह नहीं!"

पार्वती के हृदय पर जैसे वज्रपात हो गया! अब तक उसका मन जयशंकर के इस आश्वासन में उलझा हुआ था कि दो-चार दिन में

ही वह उसे काशी या अयोध्या ले जाकर किसी बड़े डाक्टर से उसका गर्भ गिरवाकर वहीं तीर्थ-वास के लिए खर्च बराबर भेजता रहेगा। लेकिन अब एकाएक ऐसा विश्वासघात! विश्वासघात का ऐसा वज्रपात! उसे लगा कि सिवा काली मे डूब मरने के अब कोई चारा नहीं उसके लिए! और उस कमारी का सदेशा सुनकर वह उसी क्षण काली में विसर्जित हो जाने को तैयार भी हो पडी।

लेकिन कमारी ने उसकी बाँह पकड़कर रोका उसे, और चुपके से समझाया भी—"बहिनी! सुनो मेरी एक बात! मगर किसी दूसरे से कहना मत! ऐसी मूरखताई मत करो! अगर मरना ही हो तो उस पापी मुख्या से बदला चुकाके मरो! बदला चुकाये बिना मर जाने से बढ़कर कोई पाप अब तुम्हारे लिए नहीं है! उसने तुम्हारा सतियानास कर दिया तो तुम भी उसका सतियानास कर दो! सारे समाज मे उसके इस पाप का भडाफोड़ करके उसको पतित साबित करके तब मरो! हम लोग पहले से ही इस पाप की बात को जानते थे! जेठी और माइली मालकिन भी जानती थीं! मगर सिरफ तुम्हारा खयाल करके चुप थीं! मुख्या ने तुम्हें तो अब पूरी तरह नंगी कर ही दिया! अब तुम्हारे पास लाज बची ही कहाँ जो उसे बचाने की खातिर डूब मरने की मूरखताई करने जा रही हो? तुम अब लाज-शरम का तनी भी खेयाल न करके मुख्या को पूरी तरह नंगा कर दो! उसे पतित बना दो! तुम्हारी जमीन-जादाद हथियाने की खातिर ही तुम्हारे साथ उसने ऐसा धोखा किया! अब तुम भी उसे पतित बनाकर उसको घर-दुआर और जात-पाँत से निकलवा दो! हिम्मत करो बहिनी! अब डरने से सिरफ मुख्या का ही भला करोगी तुम!"

पार्वती को यह सलाह बिलकुल जँच गई। उसने फिलहाल मरने का विचार त्याग दिया। कमारी उससे तत्काल विदा हो अकेली ही वापस चल पड़ी। और कुछ देर बाद पार्वती भी पूरे साहस और संकल्प के साथ रवाना हो पड़ी। ससुराल के गाँव में पहुँचते ही उसने लज्जा-

संकोच को तिलांजलि दे खुलेआम जयशंकर के पाप का भंडा-फोड़ करना शुरू कर दिया। और उस विधवा के पाप के प्रति घृणा के बावजूद पं० सोमशंकर को अपनी पत्नी के अनुरोध और उत्तेजना पर पार्वती के पक्ष मे मैदान में उतरना पड़ा। उसे अपने कमारों वाले घर में शरण भी देनी पड़ी। क्योंकि गर्भवती विधवा पार्वती अब उन लोगों के साथ रहने योग्य न रह गई थी। हरिशंकर की माँ पूरी तरह पार्वती के पक्ष में थी। वह बड़ी हमदर्दी के साथ उसके खाने-पीने का प्रबन्ध भी करती। और तब पार्वती को लगता कि ससार में मनुष्य भी निवास करते हैं। उसकी आँखों में आँसू आ जाते। रुलाई के आवेग से हृदय जैसे फूटने लग जाता।

पं० सोमशंकर के प्रयास से कई गाँवों की वहाँ पंचायत बैठी। और जयशंकर को अपनी रक्षा में कोई प्रबल सबूत या गवाह पेश करने का आदेश देकर अगली बैठक की तिथि निश्चित और घोषित कर दी गई। और जयशंकर प्रबल सबूत या गवाह की तलाश में मधुवेणी पहुँचा। मधु-वेणी के एक अधेड़ सन्यासी को अकेले में ले जाकर चुपके-चुपके बोला वह—"स्वामीजी ! यह क्या विरक्तों का जीवन बिता रहे हो तुम ! गृहस्थ बनो, गृहस्थ ! पहाड में कितने योगी-सन्यासी विरक्ति का चोला उतारकर अब गृहस्थ बनकर किस तरह जीवन का सुख लूट रहे हैं ! तुम्हारा दिल नहीं करता क्या ? तुम भी क्यों नहीं किसी योगिनी या विधवा-उधवा को लेकर गृहस्थ बन जाते ?"

"प्रभु !"—सन्यासी ने हाथ जोड दाँत निपोड़ते हुए अपनी दीनता जाहिर की—"अपना पेट तो भरता नहीं ! फिर किसी और को बसाकर क्यों बखेड़ा खडा किया जाय ?"

"अगर तुम्हारे पेट भरने का इन्तजाम मैं कर दूँ ? और एक खूब खूबसूरत तरुणी 'स्वास्नी' का इन्तजाम भी, तो ?"

स्वामी का झुर्रीभरा चेहरा एकाएक खिल उठा। जैसे ग्रीष्म से झुलसे हुए पौधे पर अचानक किसी ने घड़ा भर पानी डाल दिया हो !

जैसे हृदय की निराशा का हिम अचानक पिघल गया हो, और उसके नीचे दबी आशाकुसुम की कली अचानक खिल उठी हो ! लेकिन फिर भी उसे मुखिया की बातो पर सहसा विश्वास नही हुआ । शायद मुखिया मजाक कर रहा हो !

अपने झुर्रीभरे चेहरे को सन्देह की मुसकान से खिलाते हुए स्वामी ने दाँत चियारकर कहा—"प्रभु ! आप तो मजाक कर रहे हैं मुझसे !"

और मुखिया ने झट उसके कंधे पर हाथ रखकर शपथभरे दृढ स्वर मे आश्वासन दिया—"मजाक नहीं बाबा ! कसम खाता हूँ ! तीर्थ का स्थान है यह ! बिलकुल सच ! विश्वास करो तुम !"

संन्यासी अब विश्वासभरी आँखो से उसे देखने लगा । अचानक कितनी प्रसन्नता उमड आई उसकी धसी-धसी आँखो मे, और झुर्रीभरे चेहरे की रेखाओ मे ! जैसे अचानक उसकी उम्र दस-बीस साल कम हो गई हो !

और मुखिया ने चुपके-चुपके फिर कहा—"देखो बाबा ! तुम्हें कोई ज्यादा तरद्दुद करनी न पडेगी ! मेरे घर मे मेरी एक तरुणी 'भाई-बुहारी' है ! वही, जो यहाँ कल्पवास किया करती थी न ? मैंने तो बहुतेरा यत्न किया उसे बचाने के लिए ! इसीलिए उसे धर्म-कर्म मे लगाये रखा करता था ! मगर उसके पैर कही फिसल ही गये ! औरतो की जात ही तो ठहरी ! मगर मेरे कुल का नाम उसने डुबो ही दिया ! उस पापिन को तो एक छोड़ हजार मिलेंगे ! आखिर उसके पास रूप है ! जवानी है ! खसम को कमी उसे नहीं रहेगी ! कई 'जोगी' (साधु) अभी-अभी मुझसे उसकी माँग कर भी चुके हैं ! मगर मैंने तो बाबा, तुम्हारे शील-स्वभाव का ख्याल करके विचार किया कि तुम्हारे ही हाथ उसे सौप दूँ ! मैं तुम्हें पाँच 'माटा मोरी' जमीन दूँगा, और एक सौ रुपइयाँ नगद, और उस-जैसी स्वास्नी भी ! और इसके बदले में तुम्हें सिर्फ गाँव की पंचायत में इतना कह देना पडेगा कि—'यह गर्भ मेरा है !

कल्पवास करते समय वह मुझसे आ फँसी थी! सबकी नजर बचा-बचाकर रात को अक्सर मेरी झोपडी मे आ जाया करती थी!' बस! समझे बाबा?"

बाबा के मुँह में जोर का पानी आ गया। पार्वती को वह देख चुका था। उसे एकाएक ऐसा लगा जैसे अचानक कोई राजगद्दी उसे मिल गई हो, या मिलने जा रही हो! उसके हृदय का ऐसा हाल हो उठा जैसे किसी लूले-लँगडे के दिल में किसी देखी-परेखी अप्सरा की प्राप्ति की निश्चित आशा का प्रकाश जल उठा हो! वह झट तैयार होकर हाथ जोडकर बोला—"मै तो प्रभु के चरणों का सेवक हूँ! जैसा हुकुम बकसेंगे करूँगा हजूर!"

और मुखिया खूब प्रसन्न हो उसे साथ ले अपने गाँव की ओर चल पड़ा। वह अपनी घोड़ी को 'दुलकी' चाल चलाते हुए आगे-आगे बढ़ा जा रहा था, और उसके पीछे-पीछे सईस की तरह हाँफते हुए वह बाबा दौड रहा था। जैसे आशा की सुनहली जंजीर किसी शव को घसीटते लिये जा रही हो!

और अब मुखिया की खुशी का क्या ठिकाना? उस सन्यासी द्वारा उस पाप को स्वीकार कर लेने पर वह स्वय समाज की मर्यादा की मार से बेदाग बच जायगा! और सरकार का कानून भी उसका कुछ बिगाड़ न सकेगा! और सबसे बड़ी खुशी की बात यह कि उसकी बड़ी जायदाद की आधी हकदार उससे दूर हो जायगी! उस विधवा के बाप-भाई उसका उपयोग और उपभोग कभी न कर सकेंगे! पार्वती उस संन्यासी की 'ल्याइता' बन जाने पर कानून से जायदाद की हकदार न रह सकेगी! यह मुखिया की मामूली जीत न होगी! पार्वती के गर्भ के उभरने पर पहले से ही वह मन-ही-मन विजय की खुशी मना रहा था। पर पार्वती और सोमशंकर के सम्मिलित मोर्चे के समक्ष उस विजय के घोर पराजय मे परिणत होने की आशंका उसे हो चली थी। किन्तु अब सोमशकर का षड्यन्त्र सफल न हो सकेगा! एक ही पत्थर से जैसे दो-दो

चिड़ियों का शिकार ! और इस जीत की खुशी अभी से ही उसके चेहरे पर यों चमकने लगी थी ज्यों बादल से छाये आकाश में रह-रहकर दमकती हुई बिजली ! और आकाश भी अब बादलों से धीरे धीरे साफ हो चला ।

लेकिन जयशंकर अपने निश्चित परित्राण की खुशी में भी मन-ही-मन रह-रहकर तनिक संदिग्ध भी हो जाता । अभी-अभी स्वच्छ बने आकाश मे जैसे रह-रहकर बादल के उभरते खंड उसे दिखाई दे जाते । और तब वह घोड़ी की रास थामकर संन्यासी को समझाने और पक्का बनाने के प्रयास मे लग जाता । सन्यासी बार-बार शपथ खाकर अपनी पक्कैयत का सबूत पेश कर देता । तब एकाएक जयशंकर के मन से सन्देह-जन्य परेशानी मिटकर खुशी में बदल जाती । जयशंकर ने उसे जेब से दस रुपये बतौर नजराने के गाँजा-चरस के लिए पेशगी देकर उस सबूत की पक्कैयत को और भी जैसे पक्का बना लिया ।

गाँव के देव-स्थल मे पंचायत फिर बैठी। वादी-प्रतिवादी फिर हाजिर हुए । सरकारी अड्डे का कोई एक प्रतिनिधि भी शायद आ गया था । पार्वती के गर्भ ने उसे पहले ही 'पतिता' घोषित कर दिया था । लेकिन अब तो उसका मुख्य उद्देश्य था जयशंकर को भी 'पतित' घोषित करवा देना ! अतः अब वह निर्लज्ज भाव से वहाँ उपस्थित हो एक किनारे बैठी थी । और जब भरी पचायत में उस संन्यासी ने, जरा भय से तनिक काँपते हुए, जयशंकर द्वारा रटाये वाक्यो को दुहरा दिया, तो पार्वती के क्रोध की सीमा न रही । कुल-वधूत्व की छीनी हुई मर्यादा ने उग्र विद्रोह का रूप पहले ही धारण कर लिया था । और इस क्षण उस साधु की गवाही के फलस्वरूप शैतान जयशंकर बेदाग बचने जा रहा था, यह कितनी बड़ी पराजय थी पार्वती की ! कितनी भयानक मृत्यु ! और इस परम क्रूर पराजय और मृत्यु की भावना ही जैसे उसके हृदय में अचानक प्रलयकारी आग बन कर जल उठी । वह क्रोध में मानो एकाएक पागल हो, मन्दिर के आँगन में सूखते हुए ईंधन में से एक मोटा और मजबूत

चैला उठाकर उस संन्यासी पर टूट पड़ी—"पतित! अपने वेश का भी तुझे ख्याल नहीं! निर्लज्ज! बूढे! बदमाश!...मुझे अपनी स्वास्नी बनायेगा तू? है तेरा चेहरा मुझे स्वास्नी बनाने लायक? जरा दर्पण में अपना चेहरा तो देख! अपना मुँह तो निहार!" और मारे क्रोध के थर-थर काँपते हुए वह सन्यासी पर ताबड़तोड़ उस मजबूत चैले का यों प्रहार करने लगी ज्यों कोई बलवान औरत ओखली के धान पर कस-कसकर मूसल की चोटें देती जा रही हो!

पुलिस की मार खाकर खूब मजबूत आदमी भी पुलिस की मर्जी के मुताबिक झूठ-सच कहने को मजबूर बन जाता है। पर वह अधेड़ संन्यासी न शरीर से मजबूत था, न आत्मा से। वह पार्वती की मार खाकर, घबड़ाकर एकाएक बिलकुल सत्य बोलने को तैयार हो गया। अब वह दोनों हाथ जोड़कर मानो प्राणों की भीख माँगते हुए सच्ची गवाही देने लगा—"मुझे बचाओ भाइयो! मुझे बचाओ! मुख्या बाजे ने मुझसे झूठ बुलवाया! मुझे लोभ-लालच देकर झूठी बात के लिए बहका लिया! मैंने अभी जो कुछ कहा, सब झूठ, सब झूठ है पंचो! आप परमेश्वर हो पंचो! भगवान हो पचो!..."

लेकिन उस अतर्कित घटना से पचगण स्वयं अवाक् हो चुके थे! हक्का-बक्का भौंचक्का! सहसा किसी को बीच-बिचाव करने तक का न ख्याल आ सका, न हिम्मत हो सकी। और सन्यासी को सत्य बोलते देख पार्वती ने बगैर किसी बीच-बिचाव के ही उसे छोड़ दिया। लेकिन क्रोध उसका शांत न हो सका। बल्कि क्रोध के दुगुने वेग से अब वह उसी मजबूत चैले को थामे मानो चंडी बनकर पचायत में बैठे जयशकर पर भी अचानक टूट पड़ी। चैले का ताबड़-तोड़ प्रहार करते हुए बोलने भी लगी—"पतित! नीच! निर्लज्ज! अब याद कर अपने उन शब्दों को जिन्हें मेरी इज्जत बिगाड़ते समय तूने अपनी गन्दी जीभ से निकाला था! अब मैं तेरी उसी जीभ को काट लूँगी, सभी पचों के सामने! अब देख कि एक अबला को फुसलाकर उसका

सत्यानास करने का फल क्या होता है ?'"—कहकर जयशंकर को सम्हलने तक का मौका न देकर लहमे भर मे वह उसकी छाती पर सवार भी हो गई। और उसकी जीभ को काटने के प्रयास मे पहले उसकी नाक को भर कौर से उसने कसकर पकड़ भी लिया।

अचानक का आक्रमण था। और अचानक परम सबला बनी हुई उस अबला का आक्रमण, जिसका उसने सर्वनाश कर दिया था। मृत्यु से भी क्रूर दशा मे उसे डाल दिया था। जयशकर को तो काटो तो खून नही ! नाक मे तेज-तेज दाँतो के घुसते ही मारे भय और वेदना के वह चीख उठा। अपनी पूरी ताकत से उस चंडी की क्रूर पकड़ से मुक्त होने का प्रयास भी वह करने लगा। लेकिन पचो और दर्शको मे जयशंकर के पक्ष के भी काफी लोग थे। उनमे से कुछ ने उस चडी के हाथ और टाँग पकड़कर खीचते हुए जयशकर का उद्धार झट कर दिया। लेकिन जयशंकर की छाती से अलग होते समय उस चंडी के मुख मे जयशकर की नाक की कटी हुई नोक थी। इस दृश्य को देख कुछ लोग मन-ही-मन खुश हो रहे थे, और कुछ लोग आश्चर्यचकित। और कुछ लोग सहसा अबला से सबला बनी उस चडिका पर घृणित गालियो की बौछार भी करने लगे।

हरिशकर की माँ भी वहाँ आ पहुँची थी। साधु की दुर्दशा और उसकी सच्ची गवाही उसने सुन ली थी। वह जयशकर की छाती पर सवार पार्वती का पक्ष लेकर जोर-जोर से समर्थन करने लगी, उसे प्रोत्साहित करने लगी—"वाह ! अच्छा किया बुहारी तूने ! दे, दे मार पापी को ! ले ले जान इस अधरमिये की ! ऐं ! धन और धरम दोनों लूटता है सबका ! ऐं ! साइला इसका अपना भाई ! मगर उसे भी नहीं बकसा ! यह तो बाद मे कहीं माइला को पता लगा कि साइला पर चोरी का मुद्दा बिलकुल झूठ था ! इस अधरमिये ने मगर ठगकर तमस्सुक लिखा ही लिया ! और बाद मे अपने भाई को भी लूट ही लिया ! कगाल बना ही दिया ! और अब अपनी सगी भाई-बुहारी की इज्जत

भी लूट ली ! उसे पतित भी बना दिया ! और इस दुखिया की सारी जमीन-जायदाद भी हथिया ली ! काट ले नाक अधरमिये की ! काट ले बुहारी !···इस अभागिन को अधरमिये ने कहीं का न रखा ! जरा भी दया-मया नहीं इसके मन में ! जरा भी धरम और ईमान नहीं इस पापी मे ! तिसपर उपाध्ये बाहुन बनता है ! छी !·· मार दे बुहारी ! काट ले नाक इसकी ! काट ले जीभ इसकी !" इत्यादि-इत्यादि ।

और पार्वती की क्रूर पकड से जयशंकर का उद्धार होते ही सोमशंकर ने भरी सभा मे हाथ उठाकर ऐलान किया—"जयशकर पतित साबित हो गया पचो ! बिलकुल पतित ! पच परमेश्वर होता है पंचो !" फिर एकाएक हाथ जोड़कर—"परमेश्वर से अब न्याय की याचना है ! न्याय की पंचो !"

लेकिन पंचों ने एक मत से फैसला नहीं दिया। फैसला दिये बिना ही कई पच खिसक चले। किन्तु कुछ लोगों ने फैसला दे दिया—"दोनों ही पतित ! हम दोनों को ही जात-भात और हुक्का-पानी से अलग करते हैं !"

पचों का फैसला सुनकर हरिशंकर की माँ छाती पीटती फिर बोली—"यह तो इनसाफ नहीं हुआ पंचो ! उस अबला बेचारी का क्या दोस ? उसको तो पतित किया इस पापी ने ? उसको तो बिगाड़ा और बरबाद किया इस पतित कुकरमिये ने ? फिर बुहारी क्यों दोसी ? बुहारी क्यों पतित ?"

लेकिन पंचों ने उसकी बात पर ध्यान न दे प्रस्थान कर दिया। और जयशंकर अर्धमृत-सा बेहोश पड़ा हुआ, गमछे से नाक पर मानो पट्टी बाँधे हुए, सब कुछ सुनता रहा। पीड़ा से कराहता हुआ, कसकर पिटे कुत्ते की-सी आवाज में रोता रहा।

पचों की सभा इस प्रकार फैसला देकर शीघ्र ही बर्खास्त हो गई। और जयशकर के पक्ष के लोग उसके उपचार मे जुट पड़े। और कुछ देर बाद उसे सहारा देकर उसके घर की ओर ले चले।

हरिशकर की मॉ अब पार्वती के निकट जाकर बड़े प्यार से बोली—"बुहारी ! तू चल मेरे घर में ! पंचों ने तुझे पतित कह दिया ! मगर मै तुझे पतित नहीं मानती नानी ! भले ही ये बेईमान लोग हमें भी पतित कर दे, मगर मै अब परवाह नहीं करती ! मैं नही डरती इन बदमाशों से ! यह धरम-करम की बात सब झूठ ! सब बदमाशी ! चल तू मेरे घर मे ! मेरी जेठी और कांछी कभी तुझे पतित न कहेगी ! कभी तेरा अपमान-तिरसकार न करेंगी !"—कहते-कहते उस वृद्धा की ऑखों मे ऑसू भर आये ।

इस निश्छल स्नेह और सहानुभूति के ऑसू ने पार्वती के अपमानित और व्यथित हृदय को और भी विचलित कर दिया। वह 'घलेक' से ऑखे ढककर एकाएक जोर से रो पड़ी । रोते-रोते ही बोली—"आपके मन मे भगवान का सच्चा वास है कांछी आमॉज्यू ! अब इस अभागिन को उसके अपने भाग्य पर ही छोड़ दीजिए ! मेरा सत्यानास तो हो ही गया, मगर अब अपना सत्यानास आप न कीजिए ! आप-जैसे पवित्र लोगों को मै बदमाशों से, पापियो से पतित कहवाना नहीं चाहती ! छोड़ दीजिए मुझे अपने भाग्य पर ही !"—रोते-रोते कहती हुई ही वह सोमशकर के घर की ओर अपने निर्वासन के कमरे के उद्देश से चल पड़ी। हरिशकर की मॉ भी उसके साथ-साथ चली, मुखिया जयशंकर के उद्देश से अभिशापों की वर्षा करती हुई और पार्वती को सहानुभूति-भरे स्वर मे तरह-तरह से समझाती हुई ।

पार्वती को यो भी कुछ दिन से अन्न-जल से वितृष्णा हो चली थी, लेकिन आज रात तो उसका बिलकुल उपवास रहा। हरिशंकर की मॉ रोटियॉ लेकर उसके कमरे मे आई भी। लेकिन लाख मनाने के बावजूद वह कुछ खा न सकी। कुछ देर बाद हरिशकर की मॉ अपने घर वापस चली गई। एकान्त पाकर पार्वती का मन अब नाना तर्क-वितर्कों और संकल्प विकल्पों से उलझ गया ।

वह मारे क्रोध और व्यथा के मन-ही-मन बोलने लगी—"हाय रे

धर्म ! हाय रे समाज ! हाय री ऊँची जाति ! और हाय री अभागिन औरतों की जाति ! ... रे धर्म ! रे समाज ! तूने बड़ी कठिनाई से उस पतित को पतित कहा, और बिलकुल आसानी से मुझ अभागिन दुखिया को ! अगर मै आज साहस न दिखाती, तो तू उस झूठी गवाही के सहारे ही उस बिलकुल पतित को बिलकुल निर्दोष मानकर केवल एक अबला को ही तो अपने झूठे इन्साफ का शिकार बनाता ! मगर उस पतित को पतित कह देने के बाद भी एक अबला की दुर्दशा के बारे मे मन में दया-माया लाकर तनिक सोचा तो होता ! तेरे आज के इन्साफ से जयशंकर पतित बनकर भी ससार का सुख तो भोग सकेगा ही ? और एक तरह से अपनी जमीन-जायदाद का हकदार तो बना रह सकेगा ही ? अथवा उसके बाल-बच्चे ही तो हकदार होंगे ? अगर मै भी जीवित रहूँ तो मेरी तरह उसे दर-दर भीख माँगकर तो पेट भरना न पड़ेगा ? मगर इस अभागिन के लिए तूने क्या सोचा ? मैं तो धन और धर्म दोनों से गई ? पतिता बनकर अपने मृत पति की जायदाद के हक से भी गई ? कुल-परिवार से भी गई ? ऐं, मेरी यह दुर्दशा जानकर मारे शर्म के मेरे 'बुवा' भी यहाँ खोज-खबर लेने न आ सके ! आमाँ भी न आ सकीं ! ...और मेरे पति की जायदाद के हकदार बनेंगे अब उस पापी जयशकर के ही बाल-बच्चे ! और मैं, अब अपना काला मुँह लिये दर-दर की भिखारिन बनूँगी ! दर-दर भीख माँगकर अपना पेट पालूँगी ! जोगिनी-संन्यासिनी के वेश में अपने कलक को छिपाती फिरूँगी !"—यह सोचते ही वह क्रोध में अधीर हो अभिशापों की वर्षा भी करने लगी—"रे धर्म, सत्यानास हो तेरा ! रे समाज, सत्यानास हो तेरा ! अरी ऊँची जाति ! तेरा भी सत्यानास ! अरे अन्धे भगवान ! तेरा भी सत्यानास ! अरी अन्यायी सरकार ! तेरा भी सत्यानास !..."

पर अभिशापों की यह वर्षा धर्म, समाज और भगवान के हृदय की उत्तप्त मरुभूमि में जैसे खोकर व्यर्थ हो गई । विनष्ट हो गई । और सरकार तो सरकार ही ठहरी ! कुछ देर के लिए उसके हृदय में जैसे

शून्य का घनघोर अन्धकार छा गया। इस क्रूर परिस्थिति से परित्राण का कोई पथ उसे दिखाई न दे रहा था। जैसे अज्ञात भाव से जीना वह चाह रही थी, पर जीने का सम्मानपूर्ण कोई मार्ग सामने न था। कर्मकांडी विद्वान ब्राह्मण की पुत्री और सम्मानित कुल की वधू के लिए 'पतिता' बनकर जीने से बेहतर होगी मृत्यु! और यह सोचते ही अचानक मृत्यु की रोशनी उस अँधेरे पथ पर जैसे चमक उठी। काला मुँह लिये दर-दर की भिखारिन बनने से बेहतर उपाय अब आत्म-हत्या ही उसे दीखी। उस-जैसी अनेक अभागिनें इस उपाय के सहारे अपना त्राण कर चुकी थी। सदियो से करती आ रही थी। अब यही एक उपाय उसके मन के व्यथित आकाश मे मँडराने लगा। आत्म-हत्या की दर्दभरी भयानक भट्टी मे प्रवेश का साहस और संकल्प अब वह करने लगी।

'जो जन्म लेता है, मरता है' प्रकृति के इस अकाट्य नियम को जानती हुई भी पार्वती क्या स्वेच्छा से मरने जा रही थी? नहीं! हर प्राणी की तरह जीवन की दुर्दम्य लालसा उसमे भी छिपी हुई थी। शहीद स्वेच्छा से मरकर गौरव के शिखर पर पहुँचते हैं। किन्तु पार्वती की मृत्यु क्या उसे गौरव के शिखर पर पहुँचा सकेगी? कदापि नही! बल्कि मरने के बाद उसकी कलंक-गाथा कहीं अधिक आजादी से प्रचारित की जायगी। लेकिन फिर भी मरना उसे होगा ही! आँखों के सामने का कलक पीठ-पीछे के कलंक से कही ज्यादा कड़वा होता है! जीवन भर उस कलंक के कडवेपन को सुनने और महसूस करने के लिए ही क्या वह जीवित रहेगी? नहीं! मरना उसे होगा ही! मर जाना उसे चाहिए ही!

लेकिन फिर भी उसके व्यथा-कुंठित हृदय में रह-रहकर जीवन और मृत्यु की भावना के बीच सघर्ष छिड़ ही जाता। कभी जीवन की भावना प्रबल हो जाती, और कभी मृत्यु की। और इस उभय-भावना के द्वन्द्व से जैसे थककर उसका मन अतीत जीवन के अनेक चित्रों से उलझकर

मानो राहत पाने का प्रयास करने लगा। बचपन से लेकर जवानी तक के अनेक रंगीन चित्र चलचित्र की तरह उसके हृदय-पट पर उभरने और गुजरने लगे। आह! विवाह के समारोह से लेकर उसकी समाप्ति तक के चित्र कितने रंगीन, कितने मोहक महसूस होने लगे उसे! जीवन से सदा के लिए विदा लेते समय जीवन के वे चित्र कितने मूल्यवान हो उठे उसकी आँखों में अचानक! हाँ, विदा के वक्त ही बिलगाव का महत्त्व महसूस होता है।

आह, वैवाहिक जीवन का सुख वह न भोग सकी! किन्तु उस जीवन के आरम्भिक समारोहों में कितनी मीठी-मीठी आशाएँ छिपी हुई थीं उसके लिए! वह निरी बालिका थी तो क्या, लेकिन गुड्डे-गुड्डियों का खेल रचाने में बालिकाएँ आखिर अपने उसी भावी जीवन की मीठी आशाओं से ही तो अनजाने तरंगित हुआ करती हैं! पार्वती के विवाह की बात पक्की हो चुकी थी। सबसे पहले 'जनइ-सुपारी' नामक रस्म अदा की गई थी। दही के भरे ठेक, गन्ने और मिठाइयों के साथ जनेउ-सुपारी लेकर उसकी ससुराल से एक ब्राह्मण आया था। इसके बाद दूल्हे के घर में 'पत्र-लाठनु' नामक रस्म पूरी की गई होगी! घर के पुरोहित ने विवाह के मास, पक्ष, तिथि, दिन और लग्न कागज के दो टुकड़ों में लिखकर उनमें अक्षत और सिंदूर भरकर पचामृत और पचपल्लव से उनकी पूजा की होगी! और उन्हीं में से सयत्न-बँधे एक पत्र को लाकर पुरोहित ने पार्वती के पिता को दिया था! आह, बालिका पार्वती के दिल में कैसी मीठी-मीठी धड़कन पैदा हो चली थी उस पत्र को अपने मायके में पहुँचा हुआ जानकर!

उसके बाद 'जन्ती-जाने' (बरात) की मुख्य रस्म उपस्थित हुई। और जब बरात उसके गाँव की सीमा के देव-स्थल में पहुँची तो किस प्रकार बाजे-गाजे की आवाज से अपने पिता के घर में बैठी पार्वती का दिल धड़कने लग पड़ा था! बरात उस देव-स्थल में रुकी

रही, और वर-पक्ष की ओर से 'बड़ाई गनु' की रस्म पूरा करने के निमित्त दही, मछली और राई के साग के साथ चार व्यक्तियो का एक समूह, जिसे 'भतखराउ' कहते हैं, कन्या के दरवाजे पर भेजा गया था। और उन संदेशवाहक 'भतखराउ' लोगो के साथ कन्या-पक्ष के लोगों ने विविध कूट-प्रश्नो को पूछ-पूछकर कितना मनोरंजन किया था! और फिर दरवाजे पर बरात के पहुँचने पर बरातियो के साथ कितने प्रकार के अजीब मखौल किये गये थे! मटर-केराव के दाने नीचे बिखेरकर उनपर आसन लगाकर, अथवा आसन के नीचे जहरीली काँटेदार 'बिच्छू-घास' बिछाकर, अथवा चिलम मे मिर्च भरकर, या हुक्के की नली बंद करके! और किसी-किसी बराती के गले मे 'खसी' की अँतड़ियो की माला पहनाकर उन्हें किस प्रकार तंग और परेशान किया गया था!

हाँ, ये सारे चित्र पार्वती के मन मे उभरते गये। गुजरते गये। और फिर उसके जीवन की इस क्रूर करुणापूर्ण घड़ी में भी इन्हीं चित्रों से जुड़ा हुआ एक बीभत्स अश्लील रस्म का चित्र भी उभर ही आया जिसे 'रतेली' कहा जाता है। उसके ऐन विवाह की रात को उसकी ससुराल की महिलाओं ने उस 'रतेली' को मनाया होगा! अपने मायके की एक 'रतेली' को वह स्वयं अपनी आँखो देख चुकी थी। सिवा स्त्रियो के किसी पुरुष का 'रतेली' में प्रवेश परम निषिद्ध था। क्योंकि बन्द कमरे में खसी के खूब मिर्चदार चटकदार मांस खा-खाकर परम उन्मत्त हो-होकर स्त्रियाँ आपस में अश्लील मज़ाक किया करती हैं। आपस मे ही स्त्री-पुरुष और पति-पत्नी बनकर दाम्पत्य-जीवन का उन्मुक्त अभिनय किया करती हैं ताकि वर-वधू का दाम्पत्य-जीवन भी उसी प्रकार सरस बन सके! इस क्षण भी पार्वती की शिराएँ सिहर उठीं जब उसे 'रतेली' का एक परम अश्लील गीत याद आ गया—"कॉसको बटुको रनकऽ! बेउलाको…"

उसके जीवन की वर्तमान क्रूर परिस्थिति ने जैसे झट उसकी स्मृति को चाबुक मार दिया। हाय, रतेली के उस क्रीड़ा-समारोह के बावजूद

उसके दाम्पत्य-जीवन के नव-उपवन को फूलने-फलने से पहले ही दुर्भाग्य की आँधी ने उखाड़कर उजाड़ बना दिया! पार्वती रोने लगी, और रोती-रोती ही विवाह के बाद के अपने एक अन्य रुदन को यादकर इस क्षण भी उसी प्रकार सिसकियाँ ले-लेकर रोने लगी जैसे कि उस समय वह रोई थी। लेकिन उस समय उस रुलाई में भी माधुर्य छिपा हुआ था—श्वशुर-गृह में प्रविष्ट हो दाम्पत्य-जीवन का सुख भोगने की आशा का माधुर्य! किन्तु इस क्षण उसी रुलाई की स्मृति की रुलाई में निराशा की क्रूर कटुता के स्वर मुखरित हो रहे थे! उस आशा की चिता पर निराशा की धधकती आग में आज वह स्वयं जल मरने जा रही थी!

पार्वती जब प्रथम बार मायके से ससुराल को विदा हो रही थी तो मायके की महिलाएँ 'मागल' के उस करुणापूर्ण गीत को गा-गाकर खूब रोई थीं और उस गीत का ठीक से भाव न समझते हुए भी बालिका पार्वती उन्हें रोते देखकर और उनसे बिछुड़ने की पीड़ा से व्यथित होकर रोई थी। लेकिन इस क्षण 'मागल' का वह गीत अपने पूरे अर्थ-तात्पर्य के साथ उसके व्यथा-विचलित हृदय के तारों में ध्वनित होने लग पड़ा—

"परेबाको फूलऽ तऽ हाँसको डिम्बा,
आजदेखि लायउ बाबा पराईका जिम्बा!
तलऽ बाटऽ हवा आयो रुखऽ हल्लाइ-हल्लाइ,
सातऽ डाँड़ा कटाइ बाबा दियउ कल्लाई-कलाई!"

हाय, कितना सकरुण उपालंभ है पितृ-गृह से विदा हो रही पुत्री का अपने पिता के प्रति इस गीत में—"बाबा! तुमने आज से अपने कबूतर और हंस के अंडे को पराये के जिम्मे लगा दिया! नीचे से उठी हवा हृदय-वृक्ष को बार-बार हिला रही है! सात पहाड़ पार तुमने किसके जिम्मे लगा दिया मुझे!"

पार्वती रो रही थी। हाय, कुछ घड़ी बाद ही इस ससार और संसार की समस्त स्मृतियों से वह सदा के लिए छिन्न होने जा रही है! एक कलंक-लांछिता पतिता के रूप मे! लेकिन यदि वह पति की चिता पर ही जला दी गई होती तो आज यह दशा तो उसे देखनी न पड़ती! जिन दिनों वह विधवा बनी थी 'सती-दाह' की प्रथा वहाँ मोजूद थी![1] लेकिन पार्वती की माँ अपनी एकमात्र बालिका पुत्री को चिता मे डालने को तैयार न हो सकी। प्रथा की रूढ़िजन्य कट्टरता भी अब शिथिल पडने लग पडी थी। सती-दाह की वेदी पर जीवित जलने और जलाने की कई क्रूर घटनाएँ अपनी आँखों देख-चुकी और कानो भी सुन-चुकी होने के कारण शायद उस प्रथा की पवित्रता पर उसका विश्वास भी शिथिल पड़ चुका था।

अपनी माँ के मुख से सुनी सती-दाह की कई कहानियाँ इस क्षण उसकी स्मृति मे उभर उठीं—(१) एक थी अंधी बुढ़िया जो पति से परित्यक्त हो अपने मायके मे दिन गुजार रही थी। पति मर गया। और पति की चिता पर उस अंधी बुढ़िया का जल मरना भी धर्म की दृष्टि मे आवश्यक समझा गया। लेकिन ससुराल से उसका मायका पाँच-छह दिन के पैदल रास्ते पर था। पति की लाश तेल मे डाल दी गई ताकि उस बुढ़िया के पहुँचने तक वह सड़ न सके। सत्तर-बहत्तर की उम्र की यह बुढ़िया पीठ पर ढोकर लाई गई। अपेक्षाकृत कम उम्र की उसकी सौत पति के घर में ही थी। पति के शव के साथ चिता पर अगल-बगल उन दोनों को लिटा दिया गया। और उन दोनों के गले पर लकडी का एक कुंदा डालकर दबाये रखा गया ताकि चिता की आग धधकने पर घबड़ाकर वे चिता से भाग खड़ी न हो सके। और उन दोनों के कानों

---

१. नेपाल के प्रथम राणा-शासक 'जगबहादुर' के समय से ही सती-दाह की प्रथा को बंद करने की बात चल पड़ी थी, लेकिन कानूनन उसे बद किया गया २८ जून, १६२० को।

में शोरा और गंधक भी डाल दिया गया ताकि आग लगते ही उनके मस्तक जल्द फट जायँ !

(२) इसी प्रकार की एक दूसरी करुण कहानी भी वह सुन चुकी थी। उसके अपने गाँव में ही एक अधेड़ 'सुब्बा' की मृत्यु हुई थी। उसकी तीन पत्नियाँ थीं—अधेड, जवान और नौजवान। उनमें से एक, कई दिनों के रास्ते पर अपने मायके में थी। सुब्बा की लाश तेल में डाल दी गई। और घर में मौजूद उन दोनों पत्नियों को भी अपनी सौत के पहुँचने तक सती बनने की प्रतीक्षा में उपवास किये रहना पड़ा। इस बीच केवल हुक्का मात्र पीकर वे किसी प्रकार अपने प्राणों को थामे हुए थी। फिर पति के शव की अरथी के साथ वे तीनों हुक्का गुड़गुड़ाती श्मशान-भूमि की ओर चलीं। सती होने के समय आँखों में आँसू आना भी धर्म से निषिद्ध था! लेकिन एक की आँखों में जीने के मोह अथवा मरने के भय ने अचानक आँसू ला ही दिये! उसके वे आँसू अन्य लोगों से छिपाये न छिप सके। फलतः वह 'सती' न हो सकी। सरेआम कुलटा, पतिता आदि विशेषणों से लांछित की जाकर समाज से बहिष्कृत कर दी गई!

(३) तीसरी कहानी स्वयं पार्वती के अपने कुल की थी—उसके पितामह की एक बहन पति के मरने पर चिता पर जल मरने के भय से भागकर ससुराल से मायके चली आई! पर मायके वालों ने तिरस्कार-भरे शब्दों से स्वागत किया—"कुलटे! ओ कुल-कलंकिनि! हमारे कुल और हमारे पुरखों के मुँह में कालिख पोतकर तू भाग आई जान बचाकर! छी! तूने उभय-कुल का सत्यानास कर दिया! उभय-कुल के सात पुरखों को नरकगामी बना दिया!" और तब ससुराल वाले भी दल बाँधकर उसे गिरफ्तार करने आ ही धमके! वह रोई-पीटी भी, पर उसके गिरते आँसू शायद निषिद्ध माने न जा सके! लेकिन कहते हैं कि चिता पर जलाई जाती-जाती वह शाप भी देती गई—"मेरे मायके के कुल की कोई भी कन्या मेरे पति-कुल में ब्याही न जाय!

ब्याही जाने पर तत्काल विधवा बन जाय! मेरे पति का कुल गरीबी का दुख भोगे!"

इन कहानियो की याद आते ही पार्वती के मन में अचानक विद्रोह का देवता जैसे जाग उठा। जैसे युग-युग का सताया नारीत्व अचानक उसके हृदय में दहाड उठा। कुछ देर पहले का दैन्य जाने कहाँ विलीन हो चला। और अब उसका अपना जीवन उसकी नजरो मे अचानक मूल्यवान बन उठा। नहीं नहीं! वह मरेगी नहीं! इस प्रकार आत्म-हत्या द्वारा तो कदापि नहीं! क्या इस प्रकार मरकर वह कलंक से मुक्त हो सकेगी? क्या समाज के क्रूर कंठों को अवरुद्ध कर सकेगी? नहीं! वह जीवित रहेगी! और जीवित रहकर समाज से बदला लेने का प्रयास करेगी! नारियाँ सताई जाती आ रही हैं अपनी दुर्बलता के कारण! अज्ञान के कारण! कुछ घंटे पहले की ही तो घटना है! पार्वती ने भरी सभा में अचानक अपने साहस और शौर्य का सहारा लेकर दो पतित पुरुषों को पराजित कर ही दिया! नीचा दिखा ही दिया! उनमे एक था भला गरीब भिखमंगा, लेकिन जिस जयशंकर के डर से सारा इलाका थर-थर काँपा करता है, अबला पार्वती ने अचानक सबला बनकर उसी की नाक तक काट ली! क्या इस कठोर दंड का चिह्न वह जीवन भर मिटा सकेगा? कभी नही!

पार्वती के मन में अब उस 'कमारी' अबला के प्रति एकाएक कृतज्ञता और श्रद्धा का भाव उमड आया जिसने उसे प्रथम-प्रथम विद्रोह का मत्र प्रदान किया था। और वही विद्रोह-भाव उसके मन में अब पुनः जैसे सक्रिय हो उठा। उसका रग-रग विद्रोह से, और जीने की आकांक्षा से, और उस पतित क्रूर समाज के प्रति प्रतिशोध की भावना से तरंगित हो उठा। विद्रोह के प्रखर देवता ने हृदय को

प्रतिशोध का सबल साधन उसे प्रतीत हुआ।

अब वह आशाभरे दिल मे सोचने लगी—"नहीं, मैं मरूँगी नहीं! मैं अवश्य जीऊँगी, इस गर्भ को जिलाने के लिए! अपने बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा करने के लिए! बड़ा बनाने के लिए! अगर इसमें उस पापी का पापभरा खून है, तो मेरा भी पवित्र खून है! मेरा खून कहीं अधिक है इसमें, क्योंकि नौ मास से मेरा खून पी-पीकर वह बढ़ रहा है! और जन्म के बाद भी मेरी ही छाती का खून पी-पीकर पल-पुसकर वह बड़ा होगा! गंगा के जल में बहुत सारे गंदे जल मिलकर भी यदि उसकी पवित्रता को नष्ट नहीं कर पाते, तो मेरे खून में उस पापी के खून की एक बूँद मिलकर भी क्यों इसे अपवित्र बना सकेगी? मेरे पेट से पैदा हुआ बच्चा भी पवित्र होगा! गंगाजल की ही तरह पवित्र! चाहे छोरा हो या छोरी, मैं उसे प्यार से पालूँगी! उसे दिन-रात पढ़ाया करूँगी—'अपनी दुखिया आमाँ का बदला लेना नानी! मुझ-जैसी मेरी अनेक अभागिन बहनों के दुख का बदला लेना बेटा! उस धर्म से बदला लेना नानी, जिसकी आड में समाज के बदमाश खेला करते हैं! उस समाज से बदला लेना नानी, जो दया-धर्म के बजाय पाखंड के सहारे चला करता है! उस सरकार से बदला लेना नानी, जिसके सारे आईन और कानून समाज के बदमाशों का साथ देते हैं! समाज में बेईमानी को बढ़ाते हैं! और उस भगवान से बदला लेना नानी, जो दीन-दुखियों के बजाय बदमाशों की रक्षा करता है! बदमाशों को सुख पहुँचाता है!"

पार्वती का अचानक जैसे काया-पलट हो गया। अचानक प्रखर आत्म-बोध हो गया। विद्रोह की धधक-उठी अग्नि में उसके मन-मस्तिष्क पर जमे अन्ध संस्कार का अज्ञान, और अज्ञानजन्य दौर्बल्य, और किंकर्तव्य की विमूढ़ता का पर्दा जैसे क्षणों में जलकर भस्म बन गया। परिस्थितियों के भयानक द्वन्द्व के भीतर से ही अपने-आप उस अपढ़ अबला नारी के मानस क्षितिज पर जैसे सत्य का सूर्योदय हो गया।

उसके विद्वान पिता ने उसे बचपन में कुछ संस्कृत पढ़ा दी थी। और वैधव्य के बाद कथा-पुराणो के श्रवण से भी वह बहुत कुछ शिक्षित हो चुकी थी। लेकिन अब तक की प्राप्त समस्त शिक्षा उन्हीं रूढ़ियो की परिपोषक थी जिनके क्रूर पंजो का शिकार बनकर वह कराह रही थी। किन्तु परिस्थितियो की पाठशाला मे जबरन धकेली जाकर उसने अपने ग्रहणशील हृदय और मस्तिष्क से कुछ क्षणों मे ही जैसे अभिलषित सत्य का साक्षात्कार कर लिया।

अब उसने आँखो मे वात्सल्य और विश्वास भरकर अपने गर्भ को निहारा! मन-ही-मन उस गर्भस्थ शिशु को निहारा! और फिर मन-ही-मन अपने निवास का ठौर भी वह ढूँढ़ने लगी। ऐसा ठौर जहाँ कलंक की गाथा उसका पीछा न कर सके, जहाँ अपने शिशु को सुविधा-पूर्वक पाल-पोसकर वह बड़ा बना सके। पढ़ा-लिखा सके। और ऐसा ठौर उसे 'काशी' ही दिखाई दिया जहाँ अपने पिता के साथ वह कुछ दिन रह आई थी, और पिछले साल ही वहाँ ग्रहण-स्नान भी कर आई थी। यद्यपि 'पतिता' बनाई जाकर पति की जायदाद से वह वंचित की जा चुकी थी, लेकिन उसके निजी गहने पास मे मौजूद थे। कुछ समय के निर्वाह के लिए पर्याप्त। इस निश्चय के फलस्वरूप उस रात को ही, अर्ध-रात्रि की निस्तब्धता में वह काशी के रास्ते पर चुपचाप चल पड़ी। पर उस अभागिन को नियति के भावी क्रूर नाट्य का कुछ पता न था। जैसे कोई कथाकार मन-ही-मन कथा का सबल 'कथानक' बनाकर उसे लिखने में प्रवृत्त होते ही चल बसा हो! जैसे 'मंगल-सूत्र' की रचना में प्रवृत्त होते ही 'प्रेमचन्द' चल बसे!

(२३)

हरिशंकर के पास पैसे न थे। घर से साथ लाये पैसों के साथ घी के पैसे भी सौदे में स्वाहा हो चुके थे। और उस सौदे का अधिकांश चिता की भेंट भी हो चुका था। लेकिन पार्वती का श्राद्ध-कर्म तो होना

ही चाहिए ! हेमा के मन में सामाजिक रीत-रिवाजों के प्रति अब बहुत कुछ विद्रोह-भाव के होते हुए भी वह मृत पार्वती को श्राद्ध-वंचित रखने को तैयार न थी। अपने मृत आत्मीय जनों के प्रति स्नेह-भावना के सस्मरण के प्रतीक रूप मे ही श्राद्ध-प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ होगा। हेमा भी अपनी उस दिवगत अभागी आत्मीया के प्रति अपनी स्नेहभावना की संस्मृति के इस धार्मिक कर्म को संपन्न करना चाह रही थी। पर कर्ज-उधार भी उस जगल मे, उस अपरिचित स्थान में मिलने की गुंजायश न थी। लेकिन हेमा के पास उसके बाप के दिये हुए गहने मौजूद थे। कुछ घर पर छोड़ आई थी, और कुछ अब भी उसके अंगों की शोभा बढ़ा रहे थे। पार्वती के गहने अवश्य मौजूद थे, लेकिन हेमा ने उनमें से किसी भी गहने को श्राद्ध-कर्म में खरचना ठीक न समझा। वह उन गहनों को उस दुखिया के पुत्र के लिए सुरक्षित रखने का सकल्प कर चुकी थी। हरिशंकर और कुसुमा भी इस सकल्प से सहमत हो चुके थे।

अपने कानों से सोने की 'चारपाटी' निकालकर हरिशंकर और रूपबहादुर की ओर बढ़ाते हुए व्यथा-भरे स्वर में वह बोली—"मेरी दुखिया बहिनी का सराध (श्राद्ध) तो बाकी न रहना चाहिए रूप दाई! लो, इसे बाजार मे बेचकर चीज-बस्त खरीद ले आओ! गियारही और बारही के दिन कुछ दान-पुन्न कर देंगे और भोज-भात भी कर देगे! स्वरग में बैठी मेरी बहिनी क्या सोचेगी भला? वह दुखिया थी! उसकी दुखिया दीदी भला कैसे अपनी दुखिया बहिनी का सराध किये बिना रह जायगी?"—कहते-कहते उसका गला भर आया। आँखों में आँसू भर आये।

'बलेक' में आँसू पोंछकर वह फिर गद्गद कठ से बोली—"आज-कल रात में बहिनी को ही देखा करती हूँ! रोती है! खूब रोती है! और रो-रोकर कहती है—'मेरे छोरे को पाप का छोरा मानकर कहीं फेंक न देना दीदी! उसे तुम्हें सौंप चुकी हूँ! उसे पाल-पोसकर,

बड़ा बनाकर अपनी दुखिया आमाँ की सारी कथा कह सुनाना! उसे यह सीख जरूर देना कि समाज और समाज के पापी लोगों से अपनी आमाँ का बदला वह जरूर चुकाये! ऐसे लोगों पर वह तनिक भी दया न दिखाये! ऐसे पतित पापी समाज से वह बदला लेना कभी न भूले!"—कहकर अपनी गोद में टुकुर-टुकुर ताकते उस शिशु के निर्दोष मुखड़े को चूमकर उसे छाती से चिपकाते हुए वात्सल्य-भरे स्वर में बोली वह—"भला इस अनमोल रतन को मैं पाप का समझकर फेंक दूँगी! बहिनी ने अपनी दीदी को शायद नहीं समझा!" और फिर उसे छाती से हटाकर उसके मुँह को वात्सल्य-भरी आँखों से निहारते हुए, फिर औरों को भी उसका मुँह दिखाते हुए बोली वह—"क्यों? बिलकुल अपनी आमाँ पर पड़ा है न? कहते हैं कि आमाँ के मुँह पर पड़ा हुआ छोरा बड़ा भागवानी होता है!...नानी! तुझे मैं फेकूँगी नहीं! तुझे पाल-पोसकर, बड़ा बनाकर, तेरी दुखिया आमाँ की सारी कथा तुझसे कह सुनाऊँगी! समाज के पापियों से अपनी आमाँ का बदला लेने के लिए तुझे मैं जिलाऊँगी मेरे लाल!"

जैसे पार्वती की आत्मा हेमा में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुकी हो! जिस प्रकार संसार के विभिन्न कोनों में रहते हुए भी समान मस्तिष्क और समान हृदय के लोग एक ढंग से सोचा और महसूस किया करते हैं उसी प्रकार पार्वती का मन जैसे हेमा के अवचेतन मन में मिलकर उसके स्वप्न में उन्हीं संकल्पों को दुहराया करता जो मृत्यु से पूर्व उस मन में बद्धमूल हो चुके थे।

अपनी धर्ममाता की बातें सुनकर वह शिशु भी तनिक बिहँस पड़ा। अभी एक सप्ताह की ही उसकी उम्र थी। हँसने-बिहँसने के सामर्थ्य-बोध से रिक्त। किन्तु उस असाधारण परिस्थिति में उत्पन्न उस शिशु में जन्म से ही असाधारणता के चिह्न दिखाई देने लगे थे। जन्म से ही वह गाय-बकरी का दूध पेट भर पीने लगा था। और इन अल्प दिनों के भीतर ही उसके हाथ-पैरों में भी जीवन की किरणें जैसे

तरंगित हो-होकर उछलने लग पड़ी थीं।

हेमा उसकी उस निर्दोष मुसकान पर जैसे लुट चली। झट उसका मुखड़ा चूमकर कुसुमा से बोली—"देख तो बहिनी! अपने नानी को तो देख! किस तरह मुसकरा रहा है!"

कुसुमा झट पास आ गई। कुसुमा की गोद में उसे सौंपते हुए हेमा अत्यत दुलारभरे स्वर में उस शिशु से बोली—"जा नानी! अपनी कांछी आमॉ की गोद में मुसकरा! वही तेरी असली आमाँ है नानी!"

और कुसुमा हुलसकर उस शिशु को अपनी गोद में लेकर उसका मुँह चूमते हुए बोली—"जेठी आमॉ ही तेरी असली आमाँ है नानी! मगर पालूँगी मैं तुझे!" और फिर एकाएक प्रसन्नता-भरे स्वर में वह हेमा से बोली—"दीदी! नानी अब खूब दूध पीने लगा है!"

और हेमा तनिक मीठे फटकारभरे स्वर में बोली—"ऐसा नहीं बोलते बहिनी! अपने छोरे की खुराक पर आमाँ की नजर लगना ठीक नहीं होता!"

और कुसुमा एकाएक सहमकर बोल उठी—"मगर ज्यास्ती अभी कहाँ पीता है! मैं तो चाहती हूँ कि नानी कम-से-कम दो-तीन बकरियों का दूध पी जाय!"

"कुछ दिन घिउ जमा करके एक अच्छी दुधार बकरो खरीदूँगी नानी के लिए! कितनी कठिनाई से यहॉ बकरी का दूध मिल पाता है! जब-तब गाय का ही पिलाना पड़ता है!"

"कितना अच्छा होता अगर अपनी घर की बकरियॉ भी हम साथ ले आये होते दीदी!"—कुसुमा ने कहा।

"अरी, किसे पता था कि वह दुखिया इस जंगल में आकर हमें एक बच्चा दे जायगी!" फिर वह एकाएक रूपबहादुर से बोली—"तो जाओ न तुम दोनों बाजार रूप दाई! अब तीन ही दिन तो बाकी रह गये सराध के!"

और तब बीच में ही कुसुमा बोली—"दीदी! मेरे कॉटे को ही

क्यो नही दे देती बाजार के लिए ?" और झट रूपबहादुर के आगे से उस सोने की 'चारपाटी' को उठाकर वह बोली—"यह चारपाटी तुम्हारे कान मे कितनी भली दीखती है दीदी !"

"और वह कॉटा तेरे जूड़े मे कितना भला दीखता है बहिनी !"—हेमा ने तनिक नाराजी-सी जाहिर करते उसके हाथ से चारपाटी को लेकर रूपबहादुर के आगे उसे फिर रख दिया ।

कुसुमा लेकिन झट झोपड़ी के भीतर जाकर अपनी सयत्न-रक्षित गठरी मे से सोने का कॉटा ले आकर रूपबहादुर के आगे रखकर बोली—"रूप दाई ! दीदी की चारपाटी रहने दीजिए !"—कहकर उसने फिर चारपाटी उठा ली ।

और हेमा उसे झिड़कते हुए फिर बोली—"तू कितनी नादान है कांछी !"

और हरिशकर ने मानो पच बनकर फैसला दिया—"रहने दो कांछी उस चारपाटी को भी ! दोनों को बेचेंगे ! बेचारी दुखिया का सराध तनिक बढ़िया से हो जायगा ! और जो कुछ बचेगा उससे नानी के लिए एक बढ़िया दुधार बकरी कीनेंगे !"

झगड़ा झट मिट गया । हेमा भी सहमत हो चली, कुसुमा भी ।

× × ×

श्राद्ध सम्पन्न हो गया । साथ ही उनके मन का शोक और विक्षोभ भी क्रमशः कम होने लगा । लेकिन हेमा प्रति दिन पार्वती की चिता-भूमि के पास जाती । कुछ देर वहॉ बैठकर रो आती । हृदय हलका कर आती । और उन सबमे जात-पॉत और चूल्हे-चौके का टटा तो उसी दिन से मिट चला जिस दिन हेमा ने हरिशंकर का जनेउ तोड़-कर फेंक दिया । समाज की निर्दय बलि-वेदी पर एक अबला की बलि ने मानो उनकी ऑखें जैसे अचानक खोल दीं । मानो उनकी अपनी ऑखो के आगे ही जात-पॉत और ऊॅच-नीच का सारा पाखंडमय महल उस अबला को बलिवेदी पर गिरकर एकाएक चकनाचूर हो गया ।

धूलिसात् हो गया । अब वे बगैर किसी हिचक के, बिना द्विधा-बाधा के कच्ची रसोई भी एक साथ पकाते, और एक साथ बैठकर खाते। समाज की सारी मान्यताएँ वहाँ शिथिल और निःशक्त हो चलीं । क्योंकि मान्यताएँ सबल और सशक्त बनती हैं मानी जाने से । किंतु दृढ़ विद्रोह की चट्टानों से टकराकर उस विद्रोही के समक्ष उनके ध्वस्त होते देर नहीं लगती । उस विद्रोह का नेतृत्व हेमा ने किया था। और उस दुर्घटना ने सबकी आँखें फोड़कर बेहिचक हेमा का साथ देने को उन्हें प्रेरित किया था।

हरिशकर के लिए अभी वापस अपने गाँव जाना समव न था। क्योंकि नये सिरे से फिर उसे कपड़ा-लत्ता खरीदना था। साल भर के लायक नमक भी खरीदकर साथ ले जाना था। उनके दाम के लायक घी सचित होने में अभी काफी देर थी। और घर पर किसानी का काम भी अभी जोर का न था। अतः उसने कुछ मास और रहने का निश्चय किया । लेकिन रूपबहादुर का एक बार घर जाना जरूरी था। अपने ढोरों को हरिशंकर की निगरानी में रखकर स्वय वह घर जाने को तैयार हुआ । वह वापसी के समय हरिशकर के लिए घर से कुछ खाना-दाना भी लेता आयेगा। और हरिशकर ने कुछ नमक और माँ के लिए रखे कपड़े उसे देकर विदा कर दिया।

× × ×

हेमा आज धूप में बैठी अपनी जुड़ी-फैली जाँघों पर उस शिशु को लिटाये तेल-उबटन से उसकी मालिश कर रही थी। हरिशंकर सवेरे का खाना खाकर जगल में जा चुका था। पशु भी जा चुके थे। और कुसुमा बर्तन-भाँडा माँजकर वापस आ उसके पास बैठकर घलेक में हाथ-मुँह पोंछ रही थी।

हाथ-मुँह पोंछ लेने के बाद उस बच्चे की ओर एक बार स्नेहभरी आँखों से देखकर वह बोली—"दीदी ! मैंने उस जोगी से मन-ही-मन तुम्हारे लिए एक छोरा माँगा था ! मेरी मनकामना पूरी हो गई ! अपने

पेट का न सही, मगर ऐसा सुंदर एक नानी तो तुम्हे मिल ही गया दीदी ! देखो, कितनी मीठी मुसकान मुसकाता है पाजी ! दिल करता है कि हमेशा इसे छाती से चिपकाये रखूँ !"

हेमा मालिश करना बद कर चुकी थी। उस शिशु को नये गरम कपड़े पहनाकर अपनी जॉघ के पालने पर फिर उत्तान लिटा चुकी थी। अपनी जॉघ पर हाथ-पैरो को तनिक उछालते और दतहीन ओठो को तनिक फैला-फैलाकर मुसकराते उस शिशु को संबोधित करते अपने स्वर एवं भौहों पर प्यार का बल देकर वह बोली—"नानी !! तेरी कांछी आमॉ क्या कहती है, सुन तो जरा ? एक बार और जरा मुसका तो, मुसका तो दे मे-ॅ-ॅ-रे ला-ा-ा-ल ! अपनी काछी आमॉ को एक बार फिर अपनी मीठी हॅसी हॅसकर दिखा तो दे नानी !"

और नानी अपनी मॉ के वात्सल्य-कुचित चेहरे को देखते ही मुसकरा पड़ा।

अब हेमा कुसुमा से स्नेहभरे स्वर मे बोली—"तेरी तो मनकामना पूरी हो गई बहिनी ! मगर मेरी मनकामना तो पूरी होगी तब जब तेरे पेट से ऐसा ही एक सुंदर नानी मै पाऊँगी !···क्यों बहिनी ? उस नानी का नाम तो मै 'लछुमन' रखूँगी ! और इस नानी का नाम अगर 'राम' रख दूँ तो कैसा रहे ? राम-लछुमन की जोड़ी कितनी सुंदर रहेगी बहिनी !"

"मगर दीदी !"—कुसुमा ने तनिक लजाकर जवाब दिया—"इस नानी के लिए मेरे मन में एक और ही नाम आ गया है ! बताऊँ तुम्हें ?"

"बता !"

"यह इस 'बन' में हमें मिला और बन में ही पैदा हुआ ! इसलिए इसका नाम 'बनबहादुर' रखो, या 'बनराज़' ! मुझे तो 'राम' इस नाम से यही नाम कहीं अच्छा लगता है दीदी !"

"तो यही रख लो !"—हेमा उसके समर्थन में मुसकाते हुए

प्रसन्नताभरे स्वर में बोली—"मगर नाम चुनने में तू किसी पंडित-पुरोहित से कम नहीं! अच्छा तो है! बन में ही पैदा हुआ, और बन मे ही हमे मिला भी! इसके नाम के साथ इन बन की याद जुड़ी रहेगी! अच्छा रहेगा!"

कुसुमा ने प्रश्न किया—"बनबहादुर और बनराज इन दोनों में तुम्हे कौन-सा नाम पसद है दीदी?"

"दोनों ही पसंद हैं! दोनों ही नाम अच्छे हैं! मगर अपने पहाड़ मे 'बहादुर' वाले नाम ही ज्यादा हैं!"

लेकिन कुसुमा एकाएक कुछ और बात याद करके बोली—"मगर यह तो बाहुन का छोरा है न? बाहुन के नाम में 'बहादुर' कहीं नहीं होता! तो 'बनराज' ही रहे तो क्या हरज दीदी?"

हेमा अब एकाएक चिढ़कर बोली—"छी, बहिनी! अब भी तेरा मन जात-पॉत के झमेले से अलग नहीं हुआ? यह बाहुन कैसा? और बाहुन का छोरा कैसा? उस बाप-बने बाहुन का अगर बस चले तो इसे जीता भी न छोड़े! जाने गरभ में ही मार डालने का कितना जतन किया होगा उस बदमाश पापी ने! फिर यह बाहुन कैसा, और बाहुन का छोरा कैसा?"

और कुसुमा एकाएक क्षमा-प्रार्थना करते बोली—"नहीं दीदी! मुझसे भूल हो गई! तुम बिलकुल सच कहती हो! माफ कर दो मुझे!"

हेमा प्यारभरे स्वर में बोली—"बच्चे की जात होती है सिरफ 'बच्चा'! कोई भी उसे खुले दिल से मिला ले, खुले दिल से अपना ले! फिर उसे मिलते और अपना बनते देर नहीं लगती! वह आदमी की बनाई जात-पॉत को नहीं मानता! आदमी के बनाये धरम को नहीं मानता! आदमी के बनाये करम को नहीं मानता! इसीलिए बच्चा होता है बादशाह का भी बादशाह! भगवान का भी भगवान! वह सबसे बड़ा है! सबसे सुद्ध! सबसे पवित्तर! सबसे प्यारा! क्योंकि वह बच्चा है! और

उसकी जात सिरफ 'बच्चा' है बहिनी! मगर खैर! 'बनराज' इस नाम पर बाहुनों की बपौती नहीं है! इस छोरे के धरम के बाप (हरिशंकर) का नाम भी बहादुर वाला नहीं है! बात तेरी ही रहेगी! इसका नाम 'बनराज' ही रहेगा!" फिर एकाएक अपनी गोद मे उछलते और मुसकाते शिशु से वह बोली—"नानी-ी-ी! अब से तेरा नाम 'बनराज' रहेगा! तेरी कांछी आमॉ का चुना हुआ नाम है यह! समझा? और मै तुझे 'बने' कहकर पुकारा करूँगी! समझा? ओ मेरे बने-ऽ-ऽ-ऽ! एक बार और तो हँस दे नानी-ी-ी!"

और बने सचमुच अपनी माँ की ममता से सिकोड़ी भौहो, और प्यार से फैली आँखों, और वात्सल्य से विकसित ओठों को देखकर एकाएक अपने दतहीन मुखडे को फैलाकर बिहँस पड़ा। हँस पड़ा। साथ मे हेमा भी हँसी। कुसुमा भी।

हेमा झट उसके मुखडे को चूमकर उस शिशु की बड़ी-बड़ी आँखों में देखती हुई प्यारभरा मजाक करते हुए फिर बोली—"हँसता है पाजी! अभी से? अभी तो महीना भी पूरा नही हुआ? बडा छट्टू है तू! बड़ा पाजी! तुझे अब से 'पाजी बाजे' कहकर पुकारूँगी! समझा?"

और बने फिर हँस पडा। और इस नये नामकरण पर कुसुमा भी खूब हँसी। हँसी से जैसे लोट-पोट होती हुई बोली—"तुम भी नाम चुनने मे किसी पंडित बाजे से कम नहीं हो दीदी! अच्छा नाम चुना तुमने—'पाजी बाजे!' तो तुम इसे 'बने' कहकर पुकारना, और मै पुकारूँगी 'पाजी बाजे' कहकर!"

"अच्छा हुआ!"—हेमा झट सहमत हो मुसकाते हुए बोली—"दोनों दीदी-बहिनी मे एक-एक नाम तो बँट गया! और आज संझा को बने के 'बा' से भी कहूँगी—'हम दोनों ने अपने-अपने लिए एक-एक नाम चुन लिया! और अब तुम भी अपने लिए कोई एक नाम चुन लो!' और तब अलग-अलग नाम से अपने नानी को हम बुलायेंगे! पुकारेंगे! खूब चिढ़ायेंगे!...क्यों नानी? ठीक है न?"—कहते हुए

उसने पुनः उस शिशु का मुखड़ा चूम लिया। और उसे गोद से उठाकर कुसुमा की ओर बढ़ाते हुए—"अब जा पाजी बाजे, अपनी काछी आमाँ की गोद मे!"

और उसकी काछी आमाँ हुलसकर अपनी गोद मे उसे थामकर उसकी आँखों में देखते हुए जोर से बोली—"पाजी बाजे-`-`-`!"

हेमा जोर से हँसी। और वन के पेड़-पौधों ने भी मानो कुसुमा का साथ पूर दिया—"पाजी बाजे-`-`-`!"

और हेमा भी उस शिशु के मुँह के निकट मुँह ले जाकर इस बार खूब जोर से बोली—"बने-`-`-`!"

और मानो स्वय वनदेवी ने जैसे हेमा के स्वर-में-स्वर मिलाकर अपनी गोद मे उत्पन्न उस शिशु के प्यार-विह्वल नये नाम को पूरे जोर से दुहरा दिया—"बने-`-`-`!"

और बने फिर बिहँस पड़ा! हँस पड़ा!

(२४)

प्रतिवर्ष राजा हरिबहादुर शाह के निवास के तीन निश्चित स्थान थे। वैशाख से वर्षा-ऋतु की समाप्ति तक अपनी निज की राजधानी मे; और उसके बाद पौष अथवा माघ तक अपने 'पाँच सरकार' और 'तीन सरकार' की राजधानी काठमाडू मे, और उसके बाद चैत तक तराई की अपनी बड़ी जमीनदारी में। यह जमीनदारी उसकी स्वर्गीय माता को नेपाल के प्रधान मन्त्री अपने राणा-पिता से दहेज मे मिली थी। जमीनदारी मे कई गाँव थे, हजारों बीघे खेत, और जगल का एक काफी बड़ा क्षेत्र भी। राजा हरिबहादुर शाह अपने नियम के अनुसार इस साल भी कुछ दिनों से अपनी इसी जमीनदारी में पहुँचा था।

माघ अब समाप्त होने जा रहा था। धान की तैयार फसल को काटने, बटोरने और उसे पीट-कुचलकर घरों में भरने का काम भी समाप्त हो चुका था। रैयतों के खलिहान अब खाली हो चुके थे। और

धान के बिखरे बोझों से सार अंश निकालकर उनकी सिट्ठियाँ अब पुआल की बड़ी-बडी टालो के रूप में खलिहान के एक किनारे उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। राजा हरिबहादुर की 'सीर' की खेती की पुआल भी उसके निज के खलिहान में संचित और सघटित हो आकाश से बातें कर रही थी। जैसे नदियो का जल समुद्र मे एकत्र हो-होकर उसे समृद्ध बना चुका हो! बना रहा हो!

वसत की अगवानी मे मानो पहले से ही प्रसन्न हो आम के हरे-भरे बागो और बगियो मे अब बौरो की मुसकान भी उभरने लगी थी। और उन बौरो के जादू मे बँधे हुए भौरे भी मानो पहले से ही वसंत की अगवानी के गीत गुनगुनाने लग पड़े थे। और कोयलें भी अपने सरस-सुमधुर पचम में जैसे प्रेम-मत्र की रट लगा-लगाकर वसंत का आह्वान करने लगी थीं। और सरसो के खेतों मे पीले-पीले पुष्पो की पटी फैली छटा बहुत कुछ यो प्रतीत हो रही थी जैसे प्रकृति ने वसत के स्वागत-समारोह मे वासन्ती रग की चादरें जगह-जगह पहले से ही फैला दी हों!

राजा के कारिन्दे थारू असामियो से बटाई का धान वसूलने और उसे धनसार मे एकत्र करवाने मे मशगूल थे, और स्वयं राजा शिकार के मनोरजन मे। प्रथम विश्व-युद्ध मे अग्रेजो की भारतीय सेना में एक नेपाली टुकड़ी के 'कप्तान' पद पर वह रह चुका था। शिकार का उसे खूब शौक था। लेकिन उसका यह शौक तराई के जंगलों मे ही पूरा हो पाता। क्योंकि पहाड़ो मे घने घोर जगल न थे। शिकार के पशुओ का बाहुल्य न था। काठमांडू भी उसका यह शौक पूरा करने मे समर्थ न था, क्योंकि वहाँ दूसरे लोगो का राज होने के अलावा जंगल भी घने और घनघोर न थे। अतः जमीनदारी के अपने हाथी पर सवार हो, कारतूस की पेटी और बदूक से लैस, अपने अनुचरों के साथ उसी घने घोर जगल मे खूब आजादी से शिकार खेलने वह आया था जहाँ हरिशकर और अन्य गाठाले कई महीनों से गोठ डाले पड़े थे।

सुबह का समय था। हेमा और कुसुमा हरिशंकर के लिए दाल-

भात और अपने दोनों के लिए मडुए की कुछ रोटियाँ और ढिंड़ो बना रही थीं। हरिशंकर के आग्रह और अनुरोध पर वे दाल-भात का यत्किंचित् प्रसाद भी पा लेतीं, लेकिन उनका अपना प्रिय भोजन ढिंड़ो के डल्ले ही थे अथवा मडुए की रोटियाँ। हरिशकर भी उन डल्लों और रोटियों मे शामिल हो जाता।

हरिशंकर इस समय अपने ढोरों के लिए 'बनकस' की रस्सी बँट रहा था। और झोपडी के दरवाजे पर एक मोटी चादर को दोनों छोरों से बॉधकर 'पालना'-जैसा बनाकर उसमें 'बने' को डाल दिया गया था। और बने उसके भीतर अपने हाथ-पैरों को उछालता हुआ मुसकरा रहा था, खेल रहा था। और बीच-बीच में अचानक रोकर अपनी यत्किंचित् असुविधा का संदेशा भी वह पेश कर देता। और कुसुमा झट रसोई से उठकर वहाँ आ जाती। हलके हाथ से उस पालने को हिलाती हुई कुछ देर अपने बने की आँखों में निहारती, मुँह बनाकर गरदन हिला-हिलाकर उसे दुलारती, पुचकारती, और 'पाजी बाजे' कह-कहकर चिढ़ाती भी। जवाब में बने सिर्फ अपने दंतहीन मुखड़े को खोलकर मुसका देता, और कुसुमा निहाल हो जाती। इस मुसकान पर मानो लुट जाती।

अब एकाएक कुछ दूर जंगल में बंदूक के गरज-उठने की आवाज आई—"गड़-गड़-गड़ाक्! गड़ाक्! गडाक्...!"

बने भयभीत होकर पालने के किले के भीतर भी चीख उठा। हेमा और कुसुमा सहसा चौंककर चौकन्नी हो उठीं। और हरिशकर भी कुछ क्षण रस्सी बँटना छोडकर उस आवाज के उत्पत्ति-स्थल की दिशा और दूरी को अपने मन के पैमाने से जैसे नापने और आँकने में लग पड़ा।

कुसुमा ने झट बने को पालने से बाहर करके अपनी गोद में भर लिया। और हेमा ने ढिंड़ो के ताप्के में 'पन्यू' चलाना छोड़ हरिशंकर से प्रश्न किया—"यह क्या है बने के बा? यह कहाँ से कैसी आवाज आ रही है?"

हरिशकर ने जवाब दिया—"यह शिकार की गोली की आवाज है बने की आमाँ ! सुना है, अपना वही हरामी राजा हरिबहादुर यहाँ शिकार खेलने आया है !"

"किसका शिकार, बने के बा ?"

"मृग का ! मृग के माँसू मे बड़ा स्वाद होता है न !"

हेमा तनिक करुणा से पसीजकर बोली—"अहा, बने के बा ! कितना भोला-भाला और सुदर पशु है मृग ! मगर पापी लोग अपने स्वाद की खातिर किसी की भी जान नही बकसते !"

इतने मे फिर गोली दगने की आवाज दहाड़ उठी—"गड़-गड-गड़ाक् ! गडाक् ! गड़ाक्···!"

जगल का कोना-कोना काँप उठा। और मारे करुणा व पीड़ा के हेमा का हृदय भी। वे गोलियाँ जैसे स्वयं उसके सीने मे आ लगी हों !

वह फिर बोली—"अहा ! पापी ने फिर किसी की छाती को गोली से छेद दिया ! अहा, कितनी सुदर और भोली-भोली आँखे होती हैं मृगो की ! इस बखत मारे डर के उन आँखों का क्या हाल होगा ! और यह गोली अगर किसी बच्चे मृग की छाती मे लगी हो तो उसकी आमाँ का क्या हाल होगा ? उसकी उन काली-काली बडी-बड़ी आँखो मे कितनी बेकली, कितना दरद भर आया होगा, बने के बा ?"—कहते-कहते वह स्वयं व्याकुल हो पडी। स्वयं उसकी आँखो में मानो व्यापक मातृत्व का दर्द उभर आया। आँसू भर आये।

"अरी, रो क्यों पडी बने की आमाँ ?"—हरिशकर ने डाँटा उसे—"दिल कडा करो, कडा ! जब ये पापी खुद आदमी होकर भी अपने स्वार्थ की खातिर आदमियों तक का खून करने से नहीं चूकते, तो मृग तो आखिर पशु है ! मारे दरद के कलपती हुई आदमो की जबान भी, उसके आँसू भी, जब इनमे दया-दरद नही पैदा कर पाते, तो एक मृग की न-समझी जाने वाली बोली और उसकी भोली-भालो आँखो के आँसू भला कैसे इनमें दया पैदा करेंगे ? दरद पैदा करेंगे ?···देखो, उधर

ताप्के मे ढिडो तुम्हारा जल गया !"

हेमा ने ताप्के मे जलते हुए ढिड़ो को झट चूल्हे से अलग कर दिया। खाने की रुचि मानो एकाएक मिट गई।

कुछ क्षण बाद फिर अनेक गोलियों के दगने की आवाजें एक साथ आने लगीं। वही गड़गड़ाहट ! वही हृदयवेधी प्रकम्पन !

हरिशकर ने कहा—"इस बार ब्याधे की शायद बन आई ! मृगो का एक भागता झुंड ही शायद हाथ आ गया ! उन्हीं पर शायद गोलियों की बौछार अभी हो रही है !"

"और बहुतेरे बच्चे भी होंगे उस झुंड में ?"—हेमा ने दर्द-भरे दिल से फिर प्रश्न किया।

"होंगे ही !"—हरिशकर ने निर्भीक जवाब दिया—"उनकी आमाँ भी होंगी, और अपनी-अपनी आमाँ के साथ बच्चे भी !"

"हाय निरदई ! हाय भगवान !"—केवल इतना कहकर हेमा चुप हो गई। दाल को छौंककर अब हरिशकर को उसने भोजन पर बुलाया—"आओ ! भात खा लो बने के बा ! मगर आज तुम बन में मत जाओ, और न पशुओं को जाने दो ! यहीं आस-पास से घास-पात काटकर खिला देंगे !"

हेमा का आशय जानकर हरिशकर भी सहमत हो गया। अब वह भोजन करने बैठ गया। भोजन कर ही रहा था कि दो रोबीले मर्द उसके सामने आकर खडे हो गये। उनमें एक अधेड़ था और एक करीब सोलह साल का किशोर। किन्तु अधेड की अपेक्षा उस किशोर के चेहरे पर रोब की आग कहीं अधिक जलती दिखाई दे रही थी। दोनो उनके जाने-पहचाने थे। हरिशंकर ने ऊपरी आदर से कुसुमा को अदर से कबल लाकर बाहर बिछाने का आदेश दिया।

फिर उन दोनों से बैठने का आग्रह करते हुए बोला—"आओ ! बैठो दाई ! हुक्का-चिलम पियो ! कहाँ से आये अभी ?"

किंतु स्वागत-सत्कार के उन शब्दों का रंचमात्र भी प्रभाव उनपर

नहीं पड़ा। उन शब्दों को अहंकार के मद में जैसे ठुकराते हुए अधेड़ व्यक्ति ने रूखे स्वर में जवाब दिया—"अभी बैठेंगे नहीं भाई! काम की तलबी है! प्रभु का 'ज्युनार' तैयार हो रहा है!"

"अच्छा! तुम्हारी मर्जी!"—हरिशंकर भी उपेक्षाभरे स्वर मे जवाब देकर भोजन मे लग गया।

लेकिन उसकी यह उपेक्षा उन दोनो को बर्दाश्त न हो सकी। जैसे हरिशंकर उन दोनो के मद-दर्पित मुँह पर चुपके से चपत मारकर खूब इतमीनान से फिर अपने काम में लग गया हो! पर यह हलकी चपत भी जैसे खूब चोट कर गई। उस अधेड ने इस बार खूब कड़े रोबभरे स्वर में प्रश्न किया—"तुझे मालूम नही कि कल-परसों से हजूर राजा साहेब की सवारी आई हुई है इस जगल में?"

और हरिशंकर ने खाते-खाते ही फिर उपेक्षा-भरे स्वर में जवाब दिया—"हाँ, मालूम तो है दाई! जैसे औरों को मालूम हुआ वैसे मुझे भी हो गया!"

इस जवाब ने जैसे जोर का थप्पड़ मारा। वह अधेड़ और भी चिढ़कर इस बार मुँह बनाते हुए बोला—"मुझे भी मालूम हो गया! रस्सी जल गई, मगर ऐंठन अब भी बाकी है! तुझे क्या मालूम नहीं कि तू राजा साहेब का रैयत भी है, और उन्ही की जमीनदारी के जगल मे अभी महीनों से यह गोठ भी डाले हुए पड़ा है?"

"हॉ! मालूम है! मगर मालूम होने से ही क्या?"—हरिशंकर ने फिर खूब इतमीनान से उपेक्षाभरे स्वर में जवाब दिया।

और वह अधेड़ राजपुरुष चोट-खाये हिंस्र जन्तु की तरह दहाड उठा—"मालूम होने से ही क्या?...ऐंठकर बोलता है जॉटा! जब मालूम है तो प्रभु के दरबार मे हाजिरी दी क्यों नही? यहॉ के दूसरे गोठाले प्रभु के रैयत न होते हुए भी कल-परसों से ही हाजिरी देते आ रहे हैं! दूध-दही-घिउ का नजराना भी पेश करते आ रहे हैं! मगर तू है कि खास रैयत होते हुए भी अब तक अपनी शकल भी नहीं दिखाई!

और अब ऐंठकर बोल रहा है !"

हरिशंकर के अस्वाभाविक सयम ने अब उसका साथ छोड़ दिया। वह झट थाली छोड़कर उठ खड़ा हुआ। एक-दो कुल्ले करके वह उन दोनो के सामने खड़े होकर फिर भी तनिक संयम के साथ व्यग-भरे स्वर में बोला—"ऐंठकर तो तुम ही बोल रहे हो दाई ! और मैंने अगर खुद वहाँ जाकर अपनी शकल नहीं दिखाई तो तुम किरपा करके खुद शकल देखने और दिखाने तो आ ही गये यहाँ ? मगर दूध-दही-घिउ तो मेरे पास नहीं है अभी ! नजराना पेश कैसे करूँ ?"

"मगरनी का छोरा जॉटा !"—अब तक चुप उस किशोर ने अचानक क्रोध से थर-थर काँपते स्वर में उसे गाली दी—"यह तेरे बाप का जंगल है जॉटा ? भाग यहाँ से !" और फिर अपने सहचर को कड़कते स्वर में आदेश देते हुए—"लगा दो इस गोठ में आग जयबहादुर ! ताकते क्या हो ? फूँक दो आग ! और ले चलो पकडकर इस बदमाश को दरबार में ! जैसे इसके बाप का जगल हो यह ! ऐंठकर बोलता है जॉटा ! छठी का दूध याद करा देंगे बदमाश को आज ! पकडो ! गिरफ्तार करो !"

जैसे शृगाल ने सिंह को चुनौती दे दी हो ! हरिशंकर के स्वाभिमान का सिंह जैसे अचानक उछलकर दहाड़ उठा। उसके इस आदेश के कार्यान्वित होने से पहले ही हरिशंकर लपककर उस किशोर के मुँह पर खूब कसकर एक चपत लगाते हुए, क्रोध में थर-थर काँपते हुए बोला—"गाय का माँसू खाने वाली की औलाद ! 'भोटेनी' (भोटियानी) के पेट से पैदा होकर राजा का छोरा बनने चला है जॉटा ! राजकुमार बनने चला है बदमाश ! हरामी ! मुँह सम्हालकर बोलना भी नहीं आता !" फिर एकाएक उसकी गरदन पकड़ते हुए—"गोठ में आग फुँकवायेगा तो उसी में तुझे फेंक नहीं दूँगा पहले !" फिर उसे धकेलते हुए— "जा, भाग जा यहाँ से ! यह तेरे बाप का जगल नहीं ! सबके बाप भगवान ने बनाया है इसे ! वह मेरा भी बाप है ! तेरा भी !

और तेरे बाप का भी बाप ! समझा ?"

एक प्रचंड नवयुवक के आक्रमण के वेग को एक कोमल किशोर राजकुमार भला कैसे सम्हाल सकता था ! प्रभुता का दर्प स्वय के सहारे के बजाय दूसरो के सहारे उछला करता है। इस कठोर चपत एवं अतर्कित-असभावित दर्प की सक्रिय हुकार ने राजकुमार को ही जैसे छठी का दूध याद करा दिया। उसकी आँखे चौंधिया गईं। मार खाकर और धकेले जाकर वह छिटककर यो भूमि पर जा गिरा जैसे ढेले की एक चोट से ही आम का टिकोरा डाल से गिर पड़ा हो ! लेकिन अपने राजकुमार की यह दुर्दशा देख जयबहादुर ने झट म्यान से खुकुरी निकाल ली। और ज्योंही वह हरिशकर पर झपटने चला कि हेमा ने लहमे भर मे वायु-वेग से लपककर जयबहादुर को इतने जोर का धक्का दे मारा कि खुकुरी लिये ही वह मुँह के बल दो-तीन गज आगे जा गिरा। और हेमा ने उसी वेग से झपटकर उसके हाथ से वह खुकुरी भी छीन ली। और अपनी तथा अपने सेवक की यह दुर्दशा देख राजकुमार मारे भय के जैसे सिर पर पॉव रखकर भाग निकला। उसने अपने सिपाही की भी खोज-खबर अथवा उसे साथ लेने की परवाह न की।

घटना बिलकुल नाटकीय ढग से घट चली। उभय पक्ष मे किसी ने भी ऐसा सोचा न था। हरिशंकर का स्वभाव किसी कार्य को कर डालने से पूर्व उसके भावी परिणाम को सोचने का कभी था नही। अपने सीधे सरल हृदय मे अचानक-उठे क्रोध के नशे मे वह सब कुछ करने को सदा तैयार रहा करता था। और राजकुमार एवं जयबहादुर ने भी वही किया जैसा कि सामन्ती अहकार एव उसके आश्रय ने उन्हे सिखाया था। लेकिन एक गरीब गोठाले से ऐसो गुस्ताखी की उमीद उन्हें स्वप्न में भी न थी। अचानक जैसे सिर पर बिजली आ गिरी हो ! और उस बिजली की चोट और आतंक से अत्यन्त डरकर राजकुमार तो बेतहाशा भाग चला, पर जयबहादुर अब अकेला पड़ गया।

हेमा ने उसकी कलाई कसकर पकड़ ली थी। हरिशंकर निर्विवाद उससे शरीर से तगड़ा था, पर जब हेमा ने भी अपने तगड़ेपन का सबूत पेश कर ही दिया तो जयबहादुर की सिट्टी-पिट्टी गुम हुए बगैर न रही। खुकुरी का बल भी उससे अब छिन चुका था। उसे लगा कि कहीं अपनी खुकुरी के हवाले वह आप ही न हो जाय! अब ठकुराई का थोथा अहंकार और उसकी थोथी वीरता कायम न रह सकी। अधेड़ उम्र ने जवानी का बल भी उससे छीन लिया था। और अब दो प्रचंड नर-नारी की सम्मिलित जवानी पूरे बल-दर्प के साथ चुनौती देती उसके सामने खड़ी थी। और परायों के टुकड़ों पर जीवित रहने वालों में दृढ़ आत्मबल का यों भी अभाव रहता है। अतः अपने प्राणों पर संकट को साकार उपस्थित देख नमकहलाली का उसका ईमान भी कायम न रह सका। उस संकट की आग में जैसे सब कुछ जलकर भस्म हो गया। अब रह गई उसके पास एकमात्र उसकी दीनता।

एकाएक अपना जनेउ अपने एक हाथ में लपेटकर गिड़गिड़ाते स्वर मे वह हेमा से प्राणों की भीख माँगते हुए बोला—"मुझे माफ कर दो बहिनी! क्या करूँ? गरीब हूँ! राजा का नमक खाता हूँ! शिकार पर जाने से पहले हुकुम दे गया था बेईमान! इसी से ऐसी भूल हो गई मुझसे! मेरे बाल-बच्चों का ख्याल करके मुझपर तो दया करो बहिनी!"

हेमा की उदारता अथवा करुणा के लिए केवल अंतिम वाक्य ही पर्याप्त था। जयबहादुर को मुक्त करते हुए घृणा-भरे स्वर में वह बोली—"जाओ यहाँ से! दूसरों के कुत्ते बनकर क्यो गरीबों की इज्जत उतारने आते हो तुम लोग? मगर खुकुरी तुम्हें नहीं दूँगी!" और फिर आँगन में पड़े दो बड़े कुल्हाड़ों की ओर अँगुली का इशारा करते हुए चुनौतीभरे स्वर में—"और राजा के हुकुम पर अगर फिर इधर पैर बढ़ाया तुमने तो इस बार कुल्हाड़े की मार से तुम्हारी बोटी-बोटी कर डालूँगी! समझे? सीधे चले जाओ अपने बाल-बच्चों के पास!"

यह चुनौती व्यर्थ न गई। जयबहादुर ऊपर से बहादुर होते हुए भी भीतर से कम कायर न था। राजा की नौकरी और खुकुरी के बल पर दहाड़ने वाला नकली शेर! उसे हरिशंकर का स्वभाव भी मालूम था। इस चुनौती को बिलकुल सत्य मानकर वह घबडा गया।

घबड़ाये स्वर मे वह बोला—"मुझे भूख लगी है बहिनी! कोई रोटी-राटी बची हो तो दे दो मुझे! मैं इधर से ही भाग जाता हूँ मदेस की ओर! राजा जॉटा जाय जहन्नुम में! घर पर भागकर बाल-बच्चो के पास अगर गया भी तो राजा तो जीता नहीं छोडेगा बहिनी? अब 'मदेस' मे ही जाकर 'लाहुरे' बन जाऊँगा! रास्ते के लिए एक-दो रोटी दे दो अब!"

जयबहादुर ने सचमुच 'लाहुरे' बनने का संकल्प कर लिया अथवा वह हेमा के हृदय मे करुणा जगाकर उसे चकमा देकर उसकी पकड़ से किसी तरह छूट जाना चाह रहा था भगवान जाने! किन्तु सिहनी जैसे बच्चों को देखते ही हिंस्रत्व भूल जाती है उसी प्रकार जयबहादुर के बाल-बच्चो की बात सुनकर हेमा भी अचानक हिंस्रत्व भूलकर पिघल चली। उसने अपने हिस्से की मडुए की दो रोटियाँ उसे दे दीं। उन रोटियों को अपने गमछे में लपेटकर जयबहादुर झट वहाँ से भाग निकला। उसके भाग निकलते ही हेमा के मन में जयबहादुर के बाल-बच्चो के कल्पित चेहरे पुनः उभर आये। और उनके साथ ही अपने 'बने' का चेहरा भी। लेकिन बने उस समय अपनी कांछी आमाँ की गोद मे तनिक डरा हुआ बैठा था। क्योकि कुछ क्षण पहले की घटी घटना से उस शिशु का मन भी जैसे अछूता न रह सका था।

हेमा ने अब कुसुमा की गोद से उसे ले लिया। उस शिशु का चेहरा देखते ही कुछ क्षण पहले की निर्भीकता उसकी पूरी तरह कायम न रह सकी। धीरे-धीरे दुर्बलता ने हृदय में प्रवेश करना शुरू किया। लेकिन इस दौर्बल्य मे स्वयं जीने के मोह की कायरता न थी, बल्कि वह शिशु ही मानो जीने की लालसा लिये हुए अपनी माँ के हृदय मे

दौर्बल्य बनकर प्रविष्ट हो गया। उस शिशु का भय-विचलित चेहरा देखते ही उसका हृदय मानो व्याकुल होकर मन-ही-मन उससे बोल उठा—"तेरे न रहने पर इस अनाथ शिशु का क्या होगा हेमा? उसकी दुखिया आमाँ तेरे हाथ ही तो मरते वक्त तुझे 'दीदी' कहकर उसे सौंप गई है?"

अपने हृदय की इस आवाज को सुनते ही वह विचलित हो बने को छाती से चिपकाते हुए दौर्बल्य-भरे स्वर में हरिशंकर से बोली—"बने के बा! यह काम मगर अच्छा नहीं हुआ! मैं भी अनजाने में 'रिस' (क्रोध) कर बैठी! राजा-रजवाड़ से दुश्मनी मोल लेना अकलमंदी तो नहीं?"

हरिशंकर ने उसके हृदय के भाव को मानो भाँपते हुए दृढ़ स्वर में जवाब दिया—"जो किया अच्छा ही किया बने की आमाँ! हरिशंकर कुछ करके कभी पछताया नहीं! और जीने के मोह में कभी मौत से घबड़ाया नहीं! बने की आमाँ, तुम दोनों इसी बखत बने को लेकर चली जाओ पहाड़ में! मैं खूब जानता हूँ कि क्या होने जा रहा है यहाँ! तुम लोगों का यहाँ रहना बिलकुल ठीक न होगा! चली जाओ तुम दोनों घर! मगर हरिशकर को अब यहाँ से कोई नहीं हटा सकता!" फिर एकाएक आँखों से जैसे क्रोधभरे प्रचंड संकल्प की चिनगारियाँ बरसाते हुए, तर्जनी तानते हुए—"हरामी जाँटा धमकी दे गया कि 'यह जंगल तेरे बाप का नहीं कि यहाँ गोठ डाले बैठा रहे!' मगर मैं इसे साबित कर दिखाऊँगा जेठी, कि यह जंगल मेरे बाप का है! और इस जंगल की धरती मेरी 'आमाँ' है!" और तब अचानक उठ खड़े होकर, आँगन में पड़े बडे कुल्हाड़े को उठाकर आकाश में तानकर, मानो आँखों से पुनः रक्त की वर्षा करते कडकते स्वर में परशुराम के प्रचड लहजे में वह बोला—"मैं यह देखना चाहता हूँ बने की आमाँ, कि कौन माई का लाल अपनी आमाँ की गोद से मुझे अलग फेंकने की हिम्मत करता है! और कौन हरामी

राजा-रजवाड़ मेरे बाप की इस जायदाद से मुझे भगाता है, मुझे अलग करता है! या तो उस भगाने वाले को खतम करके मटियामेट कर दूँगा! या खुद अपनी आमाँ की प्यारी गोद मे लोटकर उसकी मिट्टी मे मिल जाऊँगा! मैने जो कुछ किया है ठीक किया है! अब तुम दोनो बने को लेकर पहाड़ मे चली जाओ बने की आमाँ!"

विधाता ने हरिशंकर को सामान्य धातु से बनाया न था। जीवन और मृत्यु के बीच कोई विभाजक रेखा जैसे उसकी नजरो मे न थी। अनपढ़-गँवार होते हुए भी उसके सरल स्वच्छ हृदय ने मानो इस परम सत्य को पहचान लिया था—"मृत्यु जीवन का ही एक दूसरा रूप है!' और मृत्यु शरीर के विनाश मे नही, भय मे निवास करती है! भय को जीते बिना न कोई मृत्यु को जीत सकता है, न जीवन को!"

हेमा और कुसुमा भी सामान्य धातु की बनी न थी। तभी तो वे 'सौतिया-डाह' की स्वाभाविक आग मे जलती रहने के बजाय परस्पर प्यार की पवित्र शीतल सरिता मे नहाया करतीं! और इसी कारण एक अनाथ शिशु के लिए उनके हृदय मे अपूर्व वात्सल्य की लहरियाँ खेला करती! और इस कारण ही पौराणिक युग की महासतियो की तरह अपने पति से उनका एकान्त तादाम्य भी स्थापित हो चुका था!

हरिशकर के दृढ-संकल्पभरे वे शब्द मानो स्वय हेमा और कुसुमा के हृदय के शब्द हो! और उनके हृदय के वे शब्द जैसे उनकी निष्ठा को चुनौती भो दे रहे हों! जब उनका पति मृत्यु को चुनौती देने को इस सदर्प निर्भीक भाव से तैयार बैठा है तो क्या हेमा मृत्यु से डरकर भाग चले अपने गाँव की ओर? छी! एक सती की आत्मा का इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता है? सतियाँ कभी पति की चिता पर स्वेच्छा से क्यो जला करती थी? और उसी एकान्त निष्ठा की नैसर्गिक अपवाद-रूप क्रिया के गर्भ से प्रतिक्रिया के रूप में बाद में सती-दाह की बाध्यता-मूलक हृदयहीन व्यापक प्रथा का जन्म भी हुआ होगा! पर इस क्षण हेमा के लिए वीरतामूलक एकनिष्ठ सतीत्व की

परीक्षा को घड़ी आ पहुँची थी। हेमा-जैसी नारी के लिए इस परीक्षा से पीछे पग हटाना उसके नारीत्व को सामान्य चुनौती न थी।

हेमा के हृदय से दौर्बल्य के समस्त कीटाणु इस सतीत्व-बोध की अग्नि में जैसे पलमात्र में विनष्ट हो चले। लेकिन अपने प्रति अपने पति के यत्किंचित् अविश्वास को भाँपकर वह क्रुद्ध भी हो पड़ी। अपने प्रिय धर्म-शिशु 'बने' के प्रति उभरी और सँजोई हुई सारी ममता को जैसे सहसा ठुकराते हुए भौंहें तरेरकर बोली वह—"छी! क्या बोलते हो तुम भी बने के बा! मैं तुम्हें अकेला छोड़कर चली जाऊँ यहाँ से गाँव की ओर? छी! क्या समझ रखा है तुमने भी!" और तब एकाएक वह कुसुमा से बोली—"बहिनी! क्या विचार है तेरा? बने को लेकर तू जायेगी आमॉज्यू के पास?"

और तब कुसुमा की आँखों में एकाएक आँसू भर आये। उच्छ्वास-विह्वल स्वर में बोली वह—"दीदी! यह क्या कहती हो तुम? जब जियेंगे, सब साथ जियेंगे! मरेंगे, सब साथ मरेंगे! और जहाँ रहेंगे, सब साथ रहेंगे! इस लोक में भी, परलोक में भी! बने के लिए तो भगवान..."

इससे आगे वह कुछ बोल न सकी। हेमा की गोद से बने को झट लेकर वह झोपड़ी के भीतर चली गई।

(२५)

राजकुमार चद्रबहादुर हरिशकर की चपत खाकर मारे भय के भागता हुआ सीधे अपने शाही डेरे में पहुँचा। जैसे शेर की चपत खा-कर कोई सियार भागकर अपनी माँद में आ घुसा हो! शाही डेरा क्या था, जंगल के किनारे घास-फूस की एक बड़ी-सी मड़ई थी। स्वय राजा के लिए थारुओं के यहाँ से एक खाट आ गई थी, और बाकी लोग नंगी पुआल पर अथवा पुआल पर दरी या कबल डालकर सोते थे। और मड़ई के एक कोने में उस समय भी रसोई पक रही थी, जहाँ उपाध्ये

रसोइया बाहुन धोती मात्र पहने उकड़ूँ होकर बैठा था। वह गोठ से दूध-दही के आने की उत्कठित और निश्चित प्रतीक्षा में था। और हरिशंकर को गिरफ्तारी की दयनीय दशा मे वहाँ उपस्थित किये जाने के दृश्य-दर्शन की आकांक्षा भी उसकी कम प्रबल न थी। लेकिन राजकुमार के सूखे और काँपते चेहरे को देख उसे कम आश्चर्य न हुआ। किन्तु फिर भी उसकी आशा अभी मिटी नही। क्योंकि जयबहादुर अभी लौटा न था। और दूध-दही की कमी रहेगी ही क्यों, जबकि थारुओ का गाँव भी वहाँ मौजूद था, और अनेक अन्य गोठाले भी मौजूद थे? और शायद उस गोठाले हरिशंकर को जयबहादुर ही पकडे लिये आ रहा हो!

मगर बाहुन ने राजकुमार के सूखे और भय-कम्पित चेहरे का ख्याल करके प्रश्न किया—"क्या हो गया प्रभु? जयबहादुर कहाँ रह गया? वह हजूर के साथ आया क्यों नही?"

और राजकुमार ने बेधड़क जवाब दे दिया—"वह मर गया! 'करनास' गाँव के हरिशकर खत्री ने उसे मार डाला!"

डेरे मे अभी रसोइये और एक दूसरे नौकर के सिवा तीसरा कोई न था। महावत के अतिरिक्त दो नौकर स्वयं राजा के साथ हाथी पर जंगल मे थे, क्योकि मारे हुए शिकार के संग्रह के लिए उनका राजा के साथ होना जरूरी था। और साथ ही अंग-रक्षक का काम भी वे दे रहे थे। जयबहादुर अभी राजकुमार का अगरक्षक था। लेकिन मुख्य अंग तो डरकर डेरे मे भाग आया, और रक्षक अपनी रक्षा मे किसी और ही राह पर चल दिया। लेकिन राजकुमार के मुख से जयबहादुर की मृत्यु की खबर ने मानो बम के धड़ाके का काम किया। राजकुमार तो पहले से ही डरा हुआ था, और शेष वे दोनों भी इस धड़ाके से सन्न रह गये! दग रह गये! भय और आश्चर्य से विमूढ़! कभी ऐसी घटना उनके देखते-देखते घटी न थी कि किसी रैयत ने राजा के सिपाही को राजकुमार के सामने ही मार डाला हो! और राजकुमार स्वयं अपनी जान बचाकर भय से काँपता हुआ भाग आया हो!

राजकुमार ने उनके भय और आतंक में और भी वृद्धि करते हुए फिर कहा—" 'भान्सा' अब छोड़ दो बाहुन ! चलो मेरे साथ थारू-गाँव मे ! कुछ थारुओं को बुला ले आयें यहाँ ! नहीं तो हरिशंकर यहाँ भी आ जायेगा ! उसकी 'स्वास्नी' बड़ी बदमाश है ! उसी ने जयबहादुर को मार डाला ! 'बुवा' भी अभी नहीं हैं यहाँ ! चलो थारू गाँव में !"

और बाहुन भी झट भान्सा से निकलकर जल्दी-जल्दी में अपनी बिखरी शिखा को दुरुस्त करते हुए बोला—"चलिए प्रभु ! गोविन्द-बहादुर तब तक यहाँ की रखवाली करेगा !"

पर गोविन्दबहादुर को बाहुन का यह प्रस्ताव रुचा नहीं। उसके हृदय पर भी भय का भूत सवार हो चुका था। लेकिन भय-भाव को छिपाते कूटनीतिक लहजे में बोला वह—"प्रभु अकेले कैसे जायेंगे भला ? मै उनके साथ जाऊँगा !"

"मै जो जा रहा हूँ साथ ?"—बाहुन ने जवाब दिया।

"बाहुन का साथ रहना, न रहना एक-जैसा ! बाहुन बाजे, तुम यहीं रहो !"

बाहुन बाजे को भी यह प्रस्ताव रुचा नहीं। बोला—"बनते हो ठकुरी, मगर डरते हो अकेले यहाँ रहने से ! अच्छा कहा तुमने ! खुद तो जान बचाकर थारू गाँव मे भागोगे प्रभु के साथ ! और मुझे अकेला यहाँ बलि का बकरा बनाओगे ! मै भी साथ चलूँगा प्रभु के ! जरूर चलूँगा ! नहीं तो ब्रह्महत्या का पाप लगेगा तुम्हें !"

और राजकुमार ने जैसे फैसला देते हुए तनिक फटकारभरे स्वर में कहा—"तो चल गोविन्दे तू भी ! बाहुन भी साथ जायगा ! हम जान बचाके भाग थोडे ही रहे हैं ! थारुओं को बुलाने जा रहे हैं ! तुम लोग बड़े कायर हो ! नमकहराम !"

फटकार खाकर भी गोविन्दबहादुर को जैसे शर्म न आई। उनके साथ हो ही गया। लेकिन कुछ कदम आगे बढ़ते ही उन्होंने जयबहादुर

को दूसरे रास्ते से भागते हुए डेरे की ओर आते देखा।

बाहुन झट बोल पड़ा—"वो देखिए प्रभु! जयबहादुर तो आ गया? मरा कहाँ?"

तीनो खडे हो गये। लगा जैसे स्वय उनकी जान उनके पास वापस आ रही हो! और जयबहादुर के निकट आते ही राजकुमार ने झट पूछा उससे—"तो तुम जिंदा आ गये जये? तुम्हारी खुकुरी कहाँ है?"

और जयबहादुर ने हाँफते हुए ही जवाब दिया—"खुकुरी तो उसकी बदमाश स्वास्नी ने छीन ली हजूर! और कहती थी—'अगर फिर पैर बढाया इस तरफ तो कुल्हाडे से सब की बोटी-बोटी उडा दूँगी!'"

तब बाहुन के मुख से एकाएक भय-भरा और आश्चर्य-मिश्रित यह गोरखाली वाक्य निकल पड़ा—"कस्तो बदमाश स्वास्नी मान्छे प्रभु!"[1]

और राजकुमार जयबहादुर के सदेशे से और भी भयभीत होकर बोला—"चलो, थारुओ को बुला ले आये! सब बदमाश इकट्ठा हो गये हैं एक साथ!"

भय-चकित आँखो से अगल-बगल ताकते सब-के-सब थारू-गाँव की ओर चल पडे।

× × ×

राजा हरिबहादुर शिकार पर से डेढ़-दो बजे दिन को लौट आया। छोटे-बड़े नौ मृग उसने मारे थे। हाथी के हौदे से अगल-बगल लटकते उन मृत मृगों की फटी-फटी आँखें यों प्रतीत हो रही थीं जैसे वे अब भी भयाच्छन्न हो करुणा की भीख माँग रही हो! जैसे पौधों की जड़ें कट जाने के बावजूद उनमे लगे फूल अब मुरझाकर लटक रहे हों!

लेकिन उन मृत मृगों को देखते ही डेरे के लोगो में करुणा और हमदर्दी के बजाय उल्लास छा गया। देखते ही राजकुमार, बाहुन और

---

१. "कैसी बदमाश औरत है प्रभु!"

सिपाहियों के मुँह में पानी आ गया। और तीन थारुओं की उपस्थिति ने यद्यपि भय का भाव उनसे दूर कर दिया था, पर अब स्वय राजा की सशस्त्र उपस्थिति ने रहा-सहा भय का भाव भी मिटा दिया। जैसे गृह-पति की उपस्थिति का सबल संरक्षण घर के भयभीत सदस्यों को निश्चिन्त बना देता है।

हाथी से उतरकर राजा ने आसन ग्रहण किया। बाहुन ने हुक्का भरकर आगे पेश किया। और राजकुमार ने नमक-मिर्च लगाकर हरिशकर के विरुद्ध अभियोग पेश कर दिया। जैसे बच्चे कहीं मार खाकर, पिता के उपस्थित होते ही रुलाई का नमक-मिर्च लगाकर प्रतिद्वन्द्वी के विरुद्ध अभियोग पेश करते हैं। अभियोग पेश करते-करते राजकुमार स्वय रोने भी लगा था।

लेकिन उस आख्यान को सुनते ही राजा का पारा गरम हो चला। सवेरे केवल दूध पीकर शिकार पर वह गया था। भूख की गरमी भी थी। और तिसपर यह परम अपमान की गरमी! लेकिन पिता अपने अपमानित निःसहाय बच्चे को सान्त्वना देने के बजाय उसके प्रति क्रोध और घृणा की लहरों से जैसे घूर्णित हो उठा। जैसे स्वय उस बच्चे ने उसके मुँह पर कालिख पोतकर उसका घोर अपमान कर दिया हो! और उसकी तलवार गँवाकर वह सिपाही जयबहादुर जैसे खुद उसकी इज्जत को धूल में मिला आया हो!

हुक्के को एक ओर पटककर मानो क्रोध में पागल होकर वह बोल उठा—"धिक्कार हींजड़ो! एक अदना गोठाले से डरकर भाग आये तुम लोग? तुम लोग ठकुरी हो? ठकुरी के छोरे हो? छी! अपनी जाति की इज्जत भी तो रखी होती कम-से-कम! नमकहरामो! हींजड़ो! मार डालते या वहीं मर जाते! यह काला मुँह तो मुझे न दिखाते!...जय-बहादुर! तुझसे एक औरत ने खुकुरी छीन ली? छी! और तू यहाँ जिन्दा लौट आया? जानता नहीं तू? वह खुकुरी तुझ हींजड़े की या तुझ-जैसे हींजड़े को पैदा करने वाले तेरे हींजड़े बाप की नहीं, राजा हरिबहादुर

शाह की इज्जत है ? तूने अपनी ठकुरी जाति की इज्जत गँवाई ! अपनी ठकुरीनी आमाँ के दूध की इज्जत धूल मे मिलाई ! और फिर मेरी इज्जत गँवाकर तू जिंदा लौट आया मुझे अपना काला मुँह दिखाने ? छी, हीजडे ! छी, नमकहराम !"

और फिर एकाएक भय और लज्जा से मुँह लटकाये राजकुमार पर बरसते हुए बोला वह—"तू मेरा छोरा नही है ! आज से तुझे मैं अपना छोरा नही मानता । तू 'भोटेनी' का छोरा है ! और तेरी आमाँ ने किसी और से कुकर्म कराकर ही तेरे-जैसे हीजड़े को जन्म दिया होगा ! अगर तू मेरा छोरा होता, एक अदना गोठाले के आगे मेरा सिर इस तरह नीचा करके भाग न आता ? हट ! दूर हट मेरे आगे से भोटेनी की औलाद जॉटा ! पहले उस बदमाश गोठाले को खत्म करके फिर अपनी गोलियो से तुम सबो को भूनूँगा आज ! अभी आज का शिकार मेरा पूरा नहीं हुआ ! समझे ?…"

एकाएक सबपर भय का आतंक छा गया । राजा का कोप ठहरा ! अग्नि-कोप से भी कहीं भयानक ! कही खतरनाक ! उन्हे लगा जैसे राज-कोप की अग्नि की अचानक-उठी लपटें अभी-अभी ही उनकी ओर बढ़कर उन्हें जला डालना चाह रही हो ! और राजा हरिबहादुर झट उठ खडे होकर कारतूस की नई पेटी को पवित्र जनेउ की तरह पुनः पहनते हुए महावत को आदेश देते बोला—"महाउत ! हाथी तैयार करो अभी ! तुझे दस रुपये बकशीश दूँगा दारू (शराब) पीने के लिए ! छोड़ इन हीजड़ो को यहाँ ! चल मेरे साथ मैदान मे !"

शराब की बकशीश का नाम सुनते ही महावत झट जोश मे आ गया । जैसे मरी हुई आत्मा अमृत का नाम सुनते ही सजीव हो उठी हो ! झट तैयार होकर हाथ जोड़कर बोला वह—"गरीबपरवर ! आज सुबह से एक बूँद भी नहीं पी ! अभी एक बोतल मँगा दीजिए हजूर ! फिर देखिए कि किस तरह अपने हाथी से उस गोठाले का गोठ उजड़वाकर उन्हें पैरों-तले कुचलवाता हूँ मैं !"

राजा के आदेश पर थारू-गाँव से झट शराब की एक बोतल आ गई। बोतल में ही मुँह लगाकर महावत ने एक साँस में ही सारी बोतल खाली कर दी। और झट हाथ में अंकुश सम्हालते हुए हाथी की सूँड पकड़कर लहमे भर में उसकी गरदन पर वह जा बैठा। गरदन पर उसके दोनों पैरों के जरा-से इशारे पर ही हाथी नीचे बैठ गया। और राजा हरिबहादुर गले में कारतूसों की पेटी पहने और बंदूक सम्हाले हाथी के हौदे पर जा बैठा। अब हाथी चल पड़ा उस अभागे गोठ की ओर, और उस गोठाले की ओर! जैसे महाभारत के युद्ध में अपने हाथी पर सवार हो राजा भगदत्त अर्जुन-विजय के निमित्त चल पड़ा हो! जैसे त्रिपुरासुर से लड़ने अपने ऐरावत पर सवार देवराज इन्द्र जा रहा हो! जयबहादुर भी बहादुरी दिखाने के निमित्त सेनापति के पीछे-पीछे चल पड़ा। राजा के दूसरे नौकर-चाकर भी स्वामी का साथ पूरने और घटनास्थल के रोमांचक दृश्यों से आँखें सेंकने के उद्देश्य से निकल पड़े।

× × ×

राजा हरिबहादुर ने दूर से ही एक गोली दागी। सारा जंगल प्रकम्पित हो उठा। जैसे अभियान की हृदयवेधी रण-भेरी बज उठी हो! जैसे प्रभुता का गर्व उस गोली की आवाज में मुखर हो उठा हो! पेड़ो पर बैठे पंछी डरकर उड़ चले। दूर झाड़ियों में छिपे वन-जन्तु भी चौकन्ने हो उठे। जंगल मे चरती गायों और भैंसों के भी कान खड़े हो गये। और गोठों में मौजूद गोठालों के हृदय भी सहम उठे। क्योंकि सवेरे की दुर्घटना की खबर उन्हें मिल चुकी थी। हाथी के गोठों की ओर बढ़ते और गोली के दगते ही वे मारे भय के विचलित हो जहाँ-तहाँ छिपने लग पड़े। तमाशा देखने का साहस भी कायम न रह सका।

लेकिन हरिशंकर उस प्रतीक्षित परिस्थिति को स्वय उपस्थित हुए देख अपना कुल्हाड़ा सम्हालकर सन्नद्ध हो उठा। जैसे शेर शिकारी की पहली चुनौती से ही उछलकर उठ खड़ा हुआ हो! अपने कुल्हाड़े से

राजा की बन्दूक का सामना करने को वह यो तैयार हो उठा जैसे कोरिया के मैदान मे चीनी स्वयसेवको ने लाठियो से अमरीकी बमवर्षकों और टैकों का मुकाबला किया था। और हेमा ने दूसरा कुल्हाड़ा थामते हुए झट कुसुमा को सस्नेह आदेश दिया—"बहिनी! तुम नानी को लेकर कहीं जा छिपो अभी!"

और कुसुमा नाराज होकर बोल उठी—"छी दीदी! मै जान लेकर जा छिपूँ जंगल मे, और तुम दोनो यहाँ रहकर जान गँवाओ?"

हेमा व्याकुल होकर बोल उठी—"अरी नहीं बहिनी! तुम्हारी जान की खातिर नही, नानी की खातिर कह रही हूँ! जाओ, देर न करो!... नानी को भगवान को सौप आओ! धरती आमाँ की गोद मे! 'वनदेवी' की गोद मे! कहीं भी जल्दी छिपाकर तुम खुद यहाँ आ जाओ! मोह-माया का बखत अब नही रहा! सब एक साथ मरेंगे!"

जैसे पुष्प का मृदुत्व अचानक वज्र-सा कठोर बन गया। कुसुमा झट बने को लिये हुए एक सुरक्षित स्थान की ओर दौड़ पडी। नाले के किनारे एक झाडी मे उसे छोडते हुए वह एकाएक जोर से रो भी पड़ी। और सारी मोह-माया को मानो पैरो-तले कुचलते हुए वायुवेग से गोठ की ओर वह दौड पड़ी। मानो स्नेह का सुकोमल पुष्प अचानक फौलाद की तलवार बनकर रण-भूमि की ओर दौड चला हो!

नेपाली नारियाँ पर्दे की छुई-मुई रमणियाँ नहीं होतीं। अपने पुरुषो के कधे-से कंधा भिड़ाकर प्रबल शत्रु से भी लडना वे जानती हैं। अंग्रेजो के साथ नेपाल के युद्ध के दौरान मे देहरादून के पास 'कालगा' नामक किले की रक्षा मे किलेदार बलभद्रसिंह थापा के नेतृत्व में मुट्ठीभर नेपाली नर-नारियों ने मिलकर विशाल ब्रिटिश वाहिनी के भी छक्के छुडा दिये थे! अंत मे किला अवश्य अंग्रेजों के अधिकार मे चला गया, लेकिन अंग्रेजो के दिल पर अधिकार कर लिया नेपाली नर-नारियों की उस अनुपम अद्भुत वीरता ने! तभी तो अंग्रेज सेनापति ने विजय के उपलक्ष्य में वहाँ एक शिला-स्तम्भ पर इस वाक्य को अंकित

कराया था—"......अपने वीर प्रतिद्वन्द्वी बलभद्र और उनके वीर गोर्खा साथियों की स्मृति में सम्मानोपहार...!" इस क्षण हरिशंकर, हेमा और कुसुमा भी मानो उसी कालगा किले के वीर गोर्खाली नर-नारियों के प्रतीक बनकर प्रबल शत्रु से जूझने को तैयार हो चले।

हाथी गोठ के पास पहुँच चुका था। हाथी के पीछे-पीछे राजा के अनुचर भी अब आ पहुँचे थे। पहली गोली केवल हवा में दगी थी। और दूसरी गोलियाँ बदूक में भरी जा चुकी थीं। लेकिन राजा शायद एकाएक गोलियाँ बरबाद करना नहीं चाह रहा था।

"महाउत!"—उसने महावत को आदेश देते हुए कहा—"गोठ की इन सारी झोपड़ियों को उजड़वा दो हाथी से!" और फिर अपने अनुचरों को ललकारते हुए—"देख क्या रहे हो हींजड़ो! इन बदमाशों को रस्सियों में बाँधकर हाथी के पैर में बाँध डालो, ताकि घसीटते हुए मै ले जाऊँ इन्हें! गोली से इन्हें एकाएक मारकर तो इन बदमाशों पर बड़ी दया होगी हींजड़ो!"

स्वामी की ललकार जैसे शराब का नशा बनकर उनकी नसों में प्रविष्ट हो चली। अब उन हींजडों में भी जान आ गई। जोश भर आया। वे भी लपक पड़े। और महावत ने हाथी पर गंदी ग्रामीण गालियों की बौछार करते हुए उसे गोठ की झोपडी को उजाड़ने का आदेश दिया। पैरों के अँगूठों से उसकी कनपट्टियाँ रगड़ते हुए आगे बढ़ने का इशारा किया। लेकिन राजा की आज्ञा पूरी तरह समाप्त होने से पहले ही हेमा और हरिशंकर बिजली के वेग से हाथी पर टूट पड़े। हरिशकर ने गोठ की झोपड़ी की ओर बढ़ी हुई हाथी की सूँड़ पर खूब कसकर ताबड़तोड़ दो-तीन कुल्हाड़े दे मारे। और हेमा ने हाथी की पूँछ पर इतने जोर का प्रहार किया कि पूँछ एकाएक कटकर नीचे आ गई। और कुसुमा उसी छीनी हुई खुकुरी को सम्हालकर उन हींजड़ों के दल पर टूट पड़ी। जैसे शुम्भ-निशुम्भ के दल पर चडी-चामुण्डा टूट पड़ी हो! घमासान मच गया! उस छोटी-सी रण-भूमि में जैसे कुसुमा के

रूप में रह-रहकर बिजली चमकने लगी ! बिजली के तीव्र प्रकाश में शत्रुओं की आँखे जैसे चौधिया-चौंधिया उठने लगीं। जाने कब किसके सिर उस चामुडा की खुकुरी पड़कर या गिरकर उसका काम तमाम कर दे!

निराशा जैसे अतिशय शौर्य और साहस का रूप ले चुकी थी। हरिशकर, हेमा और कुसुमा जीने की समस्त आशा त्यागकर लड़ रहे थे। पर राजा और राजा के अनुचरो मे जीवित रहने की आकांक्षा थी, और शत्रु-पक्ष के नगण्य और निःसत्व होने की भावना भी थी। अतः उनकी पूरी शक्ति जैसे जीवनेच्छा और उपेक्षा की जजीर से जकड़ी हुई, उन्मुक्त हो रण-भूमि मे उतर नही पा रही थी। पर हरिशकर, हेमा और कुसुमा के अणु-परमाणुओ को जैसे चरम शौर्य-साहस के विज्ञान ने तोड़-फोड़कर सक्रिय बना दिया था ! मानो शौर्य-साहस के परमाणु-बम और हाइड्रोजन-बम उनसे फूट-फूट रहे हो !

हरिशंकर और हेमा स्वयं राजा और राजा के गजराज और महावत से जूझ रहे थे। और कुसुमा राजा के अनुचरों को मार भगाने मे लगी हुई थी। अचानक उसकी नजर जयबहादुर पर जा पड़ी। देखते ही क्रोधोन्मत्त हो वह टूट पड़ी। जयबहादुर ने भागने की कोशिश की। पर कुसुमा वायु-वेग से लपककर उसकी तनिक मुड़ी गरदन पर पीठ-पीछे से ही कसकर खुकुरी का प्रहार करते हुए बोली—"बेशरम ! झूठा ! तू फिर यहाँ आ गया ? तो ले ! जा अपने बाल-बच्चों के पास नरक में !"

हाथ भरपूर पड़ा था। खुकुरी के एक प्रहार मे भैंसे का सिर भी कट जाता है। जयबहादुर तो आदमी ठहरा ! उसका सिर धड़ से अलग हो गया। उसकी लाश धरती में गिरकर छटपटाने लगी। और तब दूसरे बचे हींजड़े भी चीखते-चिल्लाते भाग निकले मैदान छोड़कर !

अब कुसुमा उस मोर्चे की ओर मुड़ी जिसपर हेमा और हरिशकर लड़ रहे थे। वह मोर्चा भी समाप्ति के सन्निकट था। कुसुमा के अनजाने ही उस मोर्चे पर भयानक घटना घट चुकी थी। और एक दूसरी भयानक घटना भी घटित होने ही जा रही थी। राजा की गोली से

हरिशंकर के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। और हेमा भी जैसे कुछ क्षणों की ही मेहमान रह गई थी अब!

हाथी पर दो ओर से हरिशंकर और हेमा ने कुल्हाड़े का प्रहार किया था। पूँछ उसकी कट चुकी थी, और सूँड क्षत-विक्षत। एक अंकुश के प्रहार से भयभीत होने वाला महाजन्तु दो ओर से हो रहे कुल्हाडों के प्रहारों से डरकर चिंग्घाड़ उठा। हरिशंकर इस फुर्ती से लहमे भर में उसकी सूँड़ के सहारे उसके मस्तक पर जा पहुँचा जैसे शेर उछलकर गजराज के सिर पर सवार हो गया हो! और लहमे भर में ही उसने महावत के सिर पर कुल्हाड़ा मारकर उसकी लाश को धरती में फेंक दिया। और फिर दूसरे लहमे में वही कुल्हाड़ा स्वय राजा का काम तमाम करने जा ही रहा था कि खुद हरिशंकर का ही काम तमाम हो गया!

राजा ने बडी फुर्ती दिखाई। मौत को उस प्रकार सिर पर उपस्थित हुए देख उसने पलक मारते हरिशंकर की छाती में गोली दाग दी। निशाना बिलकुल निकट का था। चूक न सका। हाथी भी कुछ क्षण अप्रतिभ रहकर एक ओर भाग चला। गोली-खाये हरिशकर का तना कुल्हाड़ा राजा के कधे पर गिरा, और वह स्वयं गोली खाकर जड़-कटे पेड़ की तरह धड़ाम से नीचे आ गिरा।

हेमा ने पति को गिरते देखा। उसकी छाती में गोली को लगते भी। प्रतिशोध के प्रचड नशे में उसने भागते हाथी को जैसे खदेडते हुए राजा के सिर को निशाना बनाकर हाथ के कुल्हाड़े को खूब जोर से फेंका। लेकिन निशाना सधा नहीं। भागते हाथी के हौदे से टकराकर कुल्हाड़ा नीचे आ गिरा। और हेमा ने झट उस गिरे कुल्हाड़े को थामकर पुनः भागते हाथी और राजा का पीछा किया। लेकिन राजा ने उसकी तनी हुई छाती को निशाना बनाकर फिर गोली दागने का प्रयास किया। पर अपने मोर्चे से दौड़कर आती हुई कुसुमा की सतर्क और तेज आँखों ने हेमा की दशा को परख लिया था। और राजा को

हेमा के उद्देश से बंदूक का निशाना साधते हुए भी उसने देख लिया था। भूमि पर पति का गिरा हुआ शव भी उसके नेत्रों से अब ओझल न रह सका। किन्तु अभी तो प्राणाधिका दीदी के सकटापन्न प्राण ही जैसे विद्युद्वेग से उसे अपनी ओर खीच रहे थे। प्रबल प्यार की प्रचंड विद्युत्शक्ति ने जैसे लहमे भर में उसे खीचकर हेमा के पास पहुँचा दिया। और गोली के छूटते-छूटते हेमा को जोर से नीचे धकेलकर वह स्वयं उस गोली का निशाना बन गई। वह सधी हुई गोली बजाय हेमा के कुसुमा की छाती मे जा लगी।

बिना महावत का वह घायल हाथी, राजा को लिये हुए मोर्चे से अब काफी आगे निकल गया। घने जगल की ओर! और मोर्चा अब एकाएक शून्य बन गया। कुसुमा, अपनी बिधी छाती को हाथ से दबाये धरती माता की गोद मे लुढक पडी! और अस्थि-पंजर से प्राण-पंछी के निकलते-निकलते अत्यन्त कातर स्वर मे, बचे-खुचे जोर को जैसे समेटती हुई, हेमा से वह बोल उठी—"दी-ी-दी! बने की खातिर जीना दी-ी-दी! उसे नाले के पास की भाडी मे छिपा आई हूँ! जो कुछ भूल-चूक मुझसे हुई हो माफ कर देना! विदा दो दी-ी-दी! मेरी प्यारी दी-ी-दी-ी-ी··!"

कुसुमा का स्वर सहसा बन्द हो गया। सदा के लिए! हरिशंकर ने धरती आमाँ की गोद मे सदा के लिए सोकर अपनी अंतिम प्रतिज्ञा पूरी कर ली, और कुसुमा ने हेमा के प्राणो की सुरक्षा की वेदी पर अपनी बलि देकर मानो अपने जीवन की अंतिम अभिलाषा! मानो वह सौतिया डाह के व्यापक प्रवाद के माथे अपने खून के छींटों से कलंक की रेखा लिखती चली गई हो संसार से! जैसे भरत और लक्ष्मण ने सौतेले भाई राम के लिए अपने सुखों का बलिदान करते हुए बहु-व्यापक प्रवाद को असत्य साबित किया था। और उसी असत्य से सत्य का वह सुन्दर अनुपम फूल खिल उठा जिसके सौरभ से सुवासित आदि-कवि की वाणी सहस्र-धार हो मुखरित हो उठी! अमर हो चली!

मैदान खाली हो चुका था। हाथी राजा को लेकर जंगल में यों भाग चला था जैसे अपनी पीठ पर बैठे उस खूँखार जन्तु से वह जल्द-से-जल्द पिंड छुडाना चाह रहा हो ! और राजा के सेवक यत्र-तत्र अपनी जान लेकर यों भाग चले थे जैसे जलते जगल के जीव-जन्तु ! कुछ मिनटों में ही विध्वंस अपना क्रूर तांडव दिखाकर, जल्द थककर वहाँ चुपचाप यों बैठ गया जैसे सहसा-उठे तूफान के एकाएक समाप्त होने पर समुद्र की विक्षुब्ध लहरें कुछ क्षण के लिए शान्त, निस्तब्ध-सी हो जाती हैं। और हेमा का हृदय भी अब यों स्तब्ध हो उठा था जैसे अचानक अतर्कित लगी जोर की चोट किसी सबल व्यक्ति के भी होश हर लेती है। और उसे तो चोट-पर-चोट लग गई ! हरिशकर की मृत्यु की चोट ! और तिसपर अनुपम स्नेह की बलि-वेदी पर कुसुमा की मृत्यु की चोट ! जीवन की सबसे बड़ी दो गहरी चोटें एक साथ खाकर जैसे उसके हृदय की संवेदना अचानक हवा में उड़ चली हो ! हृदय का सारा रस जैसे एकाएक सूख चला हो ! क्योंकि एकाएक उसकी आँखों में न शोक के आँसू उभर सके, न वाणी में क्रोध-अभिशाप के स्वर !

पर उसके हृदय मे अचानक पागलपन का सूखा उन्माद अवश्य धधक उठा। अपने पति के शव को गोद में समेटकर वह यों हँसने-मुसकराने लगी जैसे कोई पगली अपने स्नेह के निर्जीव टूटे-फूटे पुतले को हाथो में लेकर और देख-देखकर ! नीरस हँसी ! नीरस मुसकान ! पति के मुँह की ओर देख-देखकर वह बोलने लगी—"धरती का लाल अपनी धरती आमाँ की गोद मे लोट गया ! लोट गया ! यह जगल तेरे बाप का था न ! अपने बाप के बहादुर छोरे ! तूने मरते दम तक अपने बाप की जायदाद नही छोड़ी ! नहीं छोड़ी ! अपनी आमाँ के बहादुर छोरे ! तुझे अपनी धरती आमाँ की गोद से कोई फेंक न सका ! हटा

न सका ! अपने वचन के सच्चे और पक्के ! तू चला गया ! चला गया…!"

हेमा के उन्मादग्रस्त बोल के स्वर कुछ ऐसे थे जैसे उनमें व्यंग बोल रहा हो, अथवा स्वयं उसके हृदय की अगाध व्यथा-वेदनाभरी स्तुति तरंगित हो रही हो ! फिर एकाएक उस शव को गोद मे समेटे हुए ही वह खडी होकर नाचने भी लगी। और वह सती-नृत्य के उसी गीत के पदों को इस क्षण भी दुहराने लगी जिसे एक दिन अपने प्रथम पति 'प्रेमबहादुर' की मृत्यु की खबर पाकर उसने गाया था—

"हा हा…बादुराए बादुराए अम्बावती
आजुरऽ दिनइमा आजुरऽ दिनइमा,
हिमचुली देवता जुहारेलॉ
मुख्याजुए आँगनमा अम्बावती रानी नाचेला !"

लेकिन उस दिन इस गीत को मन-ही-मन गाते हुए व्यथा-विह्वल हो वह खूब रोई थी, पर इस क्षण गीत के उन्हीं पदों को उन्मुक्त स्वर में दुहराने के बावजूद उसकी ऑखों मे न ऑसू आ सके, न गले मे हिचकियॉ उठ सकी। मानो कोई पगली उस जन-शून्य अरण्य मे अपने शून्य हृदय के नीरस शोकावेग को उगल-उगलकर स्वयं शोकमुक्त होना चाह रही हो !

फिर उसने एकाएक उस शव को कुसुमा के शव की बगल मे लाकर खूब सटाकर लिटा दिया। और कुसुमा के निस्तब्ध, निष्प्राण मुख को चूमकर वह बोलने लगी—"मेरी सती बहिनी ! अपनी दीदी से रूठ गई क्या ? अपनी दीदी को छोड़कर चली गई ! तू भी अपनी धरती आमॉ की गोद में लोट गई ! मेरी सती बहिनी ! एक बार अपना मुँह खोलकर बोल तो ! मुझे 'दीदी' कहकर पुकार तो !"

हेमा के अतिशय शोक का सूखापन अब एकाएक जैसे हृदय में उठी ममता की बाढ़ में दहा गया ! शोक के अतिशय हिम से जड़ीभूत

उसका हृदय जैसे कुसुमा के स्नेह की स्मृति की प्रचड उष्णता से पिघल चला ! जैसे हृदय के जड़ीभूत हिम-सरोवर से स्नेह-नदी का सवेग करुण स्रोत अचानक फूट पड़ा !

अब वह कुसुमा के शव से चिपककर जोर-जोर से रोने लगी। जोर-जोर से बोलने लगी—"ओ-ो-ो, मेरी सती बहिनी-ी-ी''' ! एक बार मुझे 'दीदी' कहकर फिर बुला तो-ो-ो''' ! पुकार तो-ो-ो'''! तूने अपनी दुखिया दीदी को क्यों बचा लिया ? उसे जिनगी भर रुलाने के लिए ? जिनगी भर तड़पाने के लिए ? '''एक बार बोल तो बहिनी !'''नहीं नहीं ! तू बोलेगी नहीं ! तू दीदी से रूठ गई ! तू मन-ही-मन रूठ चली थी दीदी से ! इसी से दीदी को मौत के मुँह से निकालकर तू खुद उसी में समा गई ! तूने रूठकर अपनी दीदी को बचाया क्या जिनगी भर रुलाने के लिए ? जिनगी भर तड़पाने के लिए ? ओ-ो-ो, मेरी बहिनी-ी-ी'' ! ओ-ो-ो, मेरी सती बहिनी ी-ी-ी'''! बोल तो एक बा-ा-र !'''"

कुसुमा जैसे सहसा अब हेमा के हृदय में प्रविष्ट हो बोल उठी। कुसुमा के वे अंतिम अनुरोधभरे आदेश के शब्द सहसा हेमा को अब याद आ गये—"बने की खातिर जीना दीदी ! उसे नाले के पास की झाड़ी में छिपा आई हूँ !'''मेरी प्यारी दी-ी-दी-ी-ी-ी'''!"

मानो हेमा को कुसुमा का जवाब मिल गया। वह झट उठकर पागल की तरह यह कहती हुई नाले की ओर दौड़ पड़ी—"नहीं नहीं ! तू मुझसे रूठी नहीं बहिनी ! तू मुझे मरते बखत भी प्यार करती गई है ! तू मुझे 'मेरी प्यारी दीदी' कहती गई है बहिनी ! तू बने को प्यार करती गई है ! तू मुझे हुकुम देती गई है—'बने की खातिर जीना दीदी !' तेरी दीदी अब तेरे बने की खातिर जियेगी ! जरूर जियेगी ! उसे हर मुसीबत से बचायेगी ! जरूर जियेगी !'''ओ-ो-ो, मेरे बने-े-े''' ! ओ-ो-ो, मेरी बहिनी के ला-ा-ा-ल ! ओ-ो-ो, मेरे ला-ा-ा-ल ! कहाँ है तू-ू-ू !"—कहती हुई वह बड़े वेग से नाले के किनारे की उस

झाड़ी की ओर दौड़ पड़ी।

कुछ क्षणो में ही उस झाड़ी के पास वह जा पहुँची। बने के रोने की आवाज उसे सुनाई दे चुकी थी। लेकिन बने वहाँ अकेला न था। कुसुमा ने उसे वहाँ छोड़ते समय भगवान को सौपा था। और भगवान मानो स्वय एक सोलह-सतरह साल के नवतरुण के रूप में पहुँचकर उस अभागे शिशु को गोद मे थामे वहाँ बैठा था। लेकिन शिशु उस गोद मे सतुष्ट न था। मानो स्नेहभरी आमाँ की याद मे जोर-जोर से वह रोये जा रहा था।

हेमा को पहुँची देखते ही उस नवतरुण ने शिशु को उसे सौपते हुए कहा—"बडा रो रहा है दीदी!"

वह नवतरुण हेमा का अपरिचित न था। वही के एक गोठ का गोठाला! वह कैसे, कब उस झाड़ी मे आ पहुँचा यह पूछने की सुध भी हेमा को न रही। क्षण भर उस नवतरुण को साश्चर्य, सकृतज्ञ नेत्रो से देख झट अपने लाल को गोद मे समेटते हुए बोली वह—"अभागे! आमाँ के लिए रो रहा है? तेरी आमाँ तो अपनी आमाँ की गोद मे चली गई! आ, आ मेरे लाल! अब रो मत! चल तेरी आमाँ का मुँह तुझे दिखा दूँ! चल अभागे, चल! अपनी आमाँ का आखरी दरसन तो कर ले! अपने बा का दरसन तो कर ले!"

और बने अपनी माँ की गरम-गरम और प्यारभरी गोद मे आते ही चुप हो गया। हेमा लौट चली गोठ की ओर, और उसके पीछे-पीछे वह नवतरुण भी चल पड़ा, छाया की तरह। हेमा के अनजाने ही, इस क्षण से ही जैसे वह उसकी छाया बन चला!

हेमा गोठ के आँगन मे आ पहुँची। हरिशंकर और कुसुमा के शव अगल-बगल लेटे यों दिखाई दे रहे थे जैसे जीवन के दो निष्ठावान सहयात्री यात्रा की समाप्ति के बाद सुख-निद्रा में सो रहे हो! मृत्यु न तो उन्हें जीवन मे डरा सकी, न जीवन की समाप्ति के बाद। उनके मुख पर भय-रेखा का कोई चिह्न भी दिखाई न दे रहा था। हरिशकर

के मुख पर अब भी वही मृत्युकालीन क्रोध-गुम्फित शौर्य-भाव झलक रहा था, और कुसुमा के मुख पर जैसे अपनी स्नेहमयी दीदी के निमित्त स्वयं बलि होने की अपूर्व परितृप्ति का माधुर्य! जैसे पौरुष का प्रचंड शौर्य अनुपम स्नेह की कोमलता के साथ सटकर धरती माता की गोद में सो रहा हो!

हेमा उस शिशु को दोनों शवों के पास ले गई। कुसुमा के पैरों से उस बच्चे के सिर को सटाती हुई बोली—"अपनी आमाँ को 'जिउ कर, जिउ कर'[1] अभागे!" और फिर हरिशंकर के पैरों से उसका माथा भिड़ाकर—"अपने बा को जिउ कर! अपने बा से आखरी असीस माँग! जीने की, और बहादुर बनने की असीस!"

फिर कुसुमा की छाती से उस बच्चे को सटाकर वह रोती हुई फिर बोली—"तू दिन-रात इसे छाती से चिपकाये रखा करती थी बहिनी! अब फिर एक बार छाती से चिपकाकर अपने इस छोरे को असीस तो देती जा! एक बार अपने छोरे की खातिर तो मुँह खोल! इस अभागे को एक बार मुँह खोलकर दुलार तो ले! असीस तो देती जा!...ओ-ो-ो, मेरी बहिनी-ी-ी! ओ-ो-ो, मेरी सती बहिनी-ी-ी!..."

शोक की नदी जैसे फिर उमड़ चली। हरिशंकर स्वाभिमान की वेदी पर शहीद हुआ था, पर कुसुमा शहीद हुई थी अनुपम स्नेह की उस यज्ञ-वेदी पर जिससे मानो स्वय हेमा का पुनर्जन्म हुआ था। वही असाधारण पवित्र स्नेह जैसे असाधारण शोक में परिणत हो अब हेमा के हृदय से तरंगित हो-होकर प्रवाहित हो रहा था!

कुछ देर इसी प्रकार शोक का सागर तरंगित होता रहा। वह नव-तरुण भी इन तरगों में बहता हुआ चुपचाप बैठा रो रहा था। कुछ देर पहले अपनी-अपनी जान लेकर भागे और जहाँ-तहाँ छिपे गोठाले भी अब एक-एककर वहाँ प्रकट होने लग पड़े। सहमे कदमों से, भयभीत

---

१. प्रणाम कर!

नेत्रो से ! आतंक की जंजीर जैसे करुणा और क्रोध को उच्छ्वसित होने से रोक रही थी। भय के बोझ के नीचे सहानुभूति के स्वर भी मानो दबे पडे थे। लेकिन आखिर एक ने सहानुभूतिभरे स्वर मे हेमा को याद दिलाई—"बेरा ढल गया बहिनी ! जो होना था हो गया ! भगवान की यही इच्छा थी ! अब इन 'लहाशो' को फूँकने का इतजाम तो करो ! इहलोक में जैसा होना था हो गया, अब परलोक की गति का इतजाम तो होना ही चाहिए !"

हेमा ने करुण कुंठित नेत्रो से अस्तोन्मुख सूर्य की ओर देखा। सूर्य की किरणें नीचे आँगन से खिंचकर अब पेड़ो पर जा पहुँची थी। जैसे गतिशील रथ का झीना, सुनहला चँदोवा धीरे-धीरे ऊपर उठकर अनन्त मे विलीन होता जा रहा हो ! घटा भर दिन भी अब शेष न था। हाँ, हेमा की उन दो प्रियतम आत्माओं की सद्गति का प्रबन्ध होना ही चाहिए ! अब वह बने को पीठ से बाँधकर चुपचाप दाह-संस्कार की तैयारी मे लग गई। गोठाले लकड़ा काटकर जुटाने और अरथी तैयार करने मे लग पडे। हरिशंकर की नई खरीदी हुई धोती आज भी अछूती पड़ी थी। हेमा, उस धोती को उजडे गोठ मे से लाकर उन दोनो शवो पर एक साथ फैलाते हुए हृदयोच्छ्वास को दबाती, भर्राये स्वर मे बोली—"जनम-जनम तुम दोनो का साथ रहे ! यह साथ सदा अचल रहे ! अजर-अमर रहे !…"—कहती-कहती वह फिर बिलख पड़ी।

× × ×

संध्या की झीनी-झीनी चादर भी जगल की अँधियाली से मिलकर अब घनी हो उठी थी। किन्तु चिता के धधकते प्रकाश मे वह घनी चादर अचानक यों अदृश्य हो चली जैसे बद-खिड़की वाले कमरे का अधकार सहसा बिजली का बल्ब जल उठने से ! आस-पास का सब कुछ स्पष्ट हो चला। जगल से चरकर लौटती हुई गायों का झुड, दूर से ही चिता की लपटों के फैले प्रकाश को देख आँखे फैला और कान खड़े करके

सहमे भाव से यों खड़ा हो गया जैसे उनके गोठों में आग लग चुकी हो ! गलघंट की टुनटुनाती आवाज भी जैसे सहसा सहमकर बन्द हो चली ! लेकिन अपने परिचित गोठालों को वहाँ चुपचाप खड़े देख वे गोठ की ओर फिर बढ़ चलीं । मानो उन्होंने सोचा हो, गोठाले आज कोई विशेष मौन उत्सव मना रहे हैं ।

जलती चिता की बगल में शाल का एक विशाल पेड़ भी खड़ा था । उसकी हरी-घनी विशाल छाया चँदोवे की तरह चिता-भूमि पर फैली हुई थी । एक पहुँचे हुए दार्शनिक के शान्त, निश्चल, निस्तब्ध लहजे में ! लेकिन सहसा उसकी समाधि-मुद्रा जैसे भंग हो चली । मानो किसी प्रशान्त सरोवर से मिट्टी का एक ढेला अथवा पत्थर का एक टुकड़ा फेंके जाने की आवाज उठ आई ! उसकी डालें हिल उठी थीं, और पत्तों से छनकर खाँसने-खोंखने की आवाज भी आने लगी थी ।

सहसा सबकी आँखें उस वृक्ष की डालों में जा पहुँचीं । एक आदमी की हिलती-डुलती धुँधली-सी छाया एक डाल पर, पत्तों में छिपी बैठी यों प्रतीत हुई जैसे आराम से बैठे किसी बन्दर के अंगों में एकाएक सुगबुगाहट उभर आई हो ! और पत्तों के झुरमुट से आँखों की चमकती हुई पुतलियाँ भी दिखाई दीं उन्हें । सहसा सबके रोंगटे खड़े हो चले । जैसे भय और संदेह ने अचानक उन्हें चाबुक मार दिया हो ! शव-दाह के इस क्षण में भूत-प्रेत के संस्कार ने भय का रूप ले लिया । लेकिन दो जलते शवों की चिरौनी दुर्गंध चिता की गरम-गरम लपटों के सहारे खूब तेजी से उठ-उठकर डाल के पत्तों में पहुँच रही थी । पुनः खाँसने-खोंखने की आवाज उन पत्तों में सवेग हो उठी । और खाँसने-खोंखने के आवेग ने उस छाया को जैसे पत्तों के पर्दे से धकेलकर कुछ क्षण के लिए बाहर ला दिया । और चिता के प्रज्वलित प्रकाश ने उस छाया के चेहरे को बिलकुल स्पष्ट कर दिया ।

वह नवतरुण, जिसने झाड़ी में परित्यक्त बच्चे की रखवाली की थी, सहसा आश्चर्य से उद्वेलित हो बोल उठा—"अरे ! वो तो राजा बैठा

है ऊपर ! वह ऊपर जा पहुँचा कैसे ? बंदर की तरह टुकुर-टुकुर ताक रहा है !''

सबके नेत्र सतर्क हो उठे। सहसा जैसे बम का धड़ाका हो चला हो ! 'राजा' यह शब्द सुनते ही अब तक चिता के पास चुपचाप आँसू बहाती बैठी हेमा, झट उछलकर यों खड़ी हो उठी जैसे अचानक उसे बिजली का जोर का धक्का लग गया हो ! उसके नेत्र भी डाल के पत्तो मे बिजली की तरंग की ही तरह जा पहुँचे। हाँ, वह राजा ही था ! राजा हरिबहादुर शाह ! और शायद इसी कारण चिता की वे लपटें जोर-जोर से ऊपर उठकर उस डाल को पकड़ना चाह रही थीं। मानो कुसुमा और हरिशकर की आत्माएँ अपने शत्रु को पकड़कर प्रतिशोध लेना चाह रही हों ! लेकिन वे आत्माएँ मानो उस प्रयास मे असफल हो अब हेमा की आँखो मे प्रविष्ट हो चली। उन आँखो मे अचानक जैसे प्रलयकाल की आग जल उठी ! जैसे कामदेव को भस्मसात् कर देने के निमित्त शंकर का तीसरा नेत्र खुल उठा ! इस अग्नि ने जैसे क्षण भर पहले की उमडी शोक-नदी को क्षणमात्र मे सुखा दिया ! जैसे सद्यः-विधवा सिंहिनी के शोक-दग्ध नेत्रो के समक्ष उसके सिंह का हत्यारा अचानक अनायास प्रकट हो पडा हो !

घायल हाथी राजा को पीठ पर लिये हुए जंगल की ओर भागा जा रहा था। महावत मर चुका था। हाथी के क्रुद्ध, प्रतिकूल रुख को समझते सवार को देर न लगी। क्या पता कि पीठ के हौदे को वह किसी भी क्षण नीचे फेंककर सवार को अपने पैरों-तले कुचल दे, अथवा कहीं घने-घोर जंगल मे ले जाकर बाघ-चीतों के सिपुर्द कर दे ! मृत्यु जैसे तत्काल राजा के नेत्रों के समक्ष नाच उठी। हाथी, जंगल की ओर भागते हुए शाल के उसी वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था। डाले काफी नीचे तक झुकी हुई थीं। एक डाल से हौदा टकरा गया। और राजा उस डाल को डूबते के लिए तिनके का सहारा मान झट उसे पकड़कर ऊपर जा चढ़ा। और ऊपर चढ़ते-चढ़ते एक मोटी डाल पर

पहुँचकर तनिक आराम से बैठ गया।

लेकिन अब वह किंकर्तव्य-विमूढ हो चला। न वहाँ बैठे रहते बन रहा था, न पेड़ से उतरते। पेड़ पर चढ़ने की कला से अनभिज्ञ, अनभ्यस्त होते हुए भी वह काफी-झुकी डालों से लटककर धड़ाम से नीचे उतर सकता था। पर भाड़ से निकलकर भट्ठी में पड़ जाने का खतरा उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा था। सिंहिनी हेमा के शौर्य, साहस और विस्फूर्जित क्रोध को वह स्वयं अपनी आँखों देख चुका था। और उसके जीवित बच जाने का प्रमाण भी आँखों के सामने था। शोक मे अतिशय पागल हेमा की रुलाई के हृदयवेधी स्वर वह स्पष्ट सुन रहा था। और हेमा का गोठ उस पेड़ से अधिक दूर भी न था। ओझल भी न था। और बाहर निकल भागने का एकमात्र खुला रास्ता हेमा के गोठ के पास से ही था। बाकी सब ओर घना घोर जगल था। अतः क्या पता यदि पेड से धडाम से गिरते या कूदते अपने शत्रु पर नजर पडते ही वह प्रचड महिला वायुवेग से पीछा करके उसका काम तमाम कर दे!

उसका यह भयभरा संदेह अस्वाभाविक न था। क्योंकि उसके गले से कारतूसों की पेटी अवश्य लटक रही थी, पर बन्दूक हौदे पर ही छूटकर हाथी के साथ जैसे भाग चुकी थी। वृक्ष का आश्रय ग्रहण करने की जल्दबाजी में बदूक उसके हाथ से छूट गई थी। अतः बिना इन्धन के आग का महत्त्व क्या? बिना बन्दूक के कारतूस की गोलियों में बल क्या? ऐसी दशा में यदि हेमा ने उसे देख लिया और पकड़ लिया, तो? तो सिवा मौत की शरण के कोई चारा नहीं! अथवा यदि डाल से लटककर नीचे गिरने के प्रयास में कहीं हड्डी-पसली ही टूट गई, तो? अतः अभी वृक्ष की डाल पर बैठे रहना ही उसे निरापद जान पड़ा। लेकिन घर के भेदिया ने ही जैसे भेद उसका खोल दिया! आग की लपटों की उत्तरोत्तर बढ़ती सामूहिक गरमी, धुआँ और चिरौनी दुर्गंध के जैसे कोड़े खा-खाकर स्वयं उसकी साँस उसका साथ न दे सकी।

मानो बार-बार दबाने के प्रयास से और भी विद्रोही बनकर वह खाँसने और खोंखने लग पड़ी।

हेमा अपनी पीठ पर बँधे बने को खोलकर, बने के रक्षक उसी नवतरुण गोठाले को उसे थमाते हुए बोली—"इसे जरा सम्हाल तो भइया! मै अब इस पापी की खबर लेती हूँ!"

डाल पर बैठे राजा के दिल मे एकाएक प्रचंड हड़कम्प मच गया। वह था एक, और वे थे अनेक! उसने गोठालो के चेहरों पर अपने प्रति अचानक-उठी घृणा की आग को देख लिया था। राजा के प्रभुत्व का आतक मानो उस घृणा की आग मे अचानक जल मिटा हो! उन गोठालो में भी क्रोध का जोश छा गया था। भावी दुष्परिणाम की आशका जैसे जोश के नशे मे खो चली थी। हेमा के शौर्य-साहस का जादू जैसे सबपर सवार हो चला था।

हेमा को स्वयं वृक्ष पर चढ़ने को उद्यत हुए देख एक नवयुवक ने प्रस्ताव किया—"दीदी! तुम नीचे ही रहो! हम लोग ही ऊपर जाकर उसे नीचे फेंक देते हैं! जो कुछ सजा देनी हो नीचे ही उसे दे लेना!"

नवयुवक के इस प्रस्ताव का कई लोगो ने समर्थन किया। लेकिन हेमा ने हाथ के इशारे से उन्हे मना करते हुए कहा—"बस! यहीं खड़े रहकर तमाशा देखो तुम लोग, कि किस तरह मै खुद शैतान की मॉद मे घुसकर उसका गला दबाती हूँ अभी!" फिर एकाएक गर्व-भरे स्वर मे—"मैं किसान की छोरी हूँ, किसान की! पेड़ पर चढ़ना भी जानती हूँ, और पेड़ पर लड़ना, खेलना और नाचना भी!"

लेकिन झट एक बूढे ने हाथ हिलाते हुए उसे सावधान किया—"नहीं नानी! पेड़ पर मत चढ़ो! उसके पास बंदूक है! गोली चला देगा!"

पर हेमा के तेज सतर्क नेत्रो ने जैसे सब कुछ पहले ही देख लिया था। बूढ़े से बोली वह—"नही काका! डरो मत! बंदूक उसके पास नहीं है अब! अगर होती तो अब तक जाने कितनी गोलियाँ वह चला

चुका होता ! व्याघे का मन शिकार को देख काबू में नहीं रह पाता काका !"

हेमा खूब तेजी से पेड़ पर चढ़ने लगी। जैसे 'चितबारबे'[1] जाति की क्रुद्ध सर्पिणी अपने अंडे के हत्यारे को पकड़कर डंक मारने ऊपर जा रही हो ! दूसरे लोगों को भी यह विश्वास हो गया कि राजा के पास बंदूक नहीं है। अतः वे और भी निर्भीक और निःशंक नेत्रों से ऊपर देखने लगे। आह, अजब नशा छा रहा था उन आँखों में ! जैसे 'रेस-कोर्स' के घोड़ों की तीव्र प्रतियोगिता नशा बनकर दर्शकों के नेत्रों में छा जाती है !

राजा ने उस क्रुद्ध सर्पिणी को उस वेग से हनहनाते हुए चढ़ते देख दूसरी डाल पर भागने की कोशिश की। पर वह पेड़ों का जन्तु न था। आत्म-रक्षा की प्रबल भावना भी जल्द-से-जल्द किसी अन्य मजबूत डाल का सहारा ग्रहण करने में उसका साथ न दे सकी। और हेमा अब बंदरिया की तरह उछलकर लहमे भर में उस डाल पर जा पहुँची जहाँ राजा काँपते हाथों से डाल की एक खूब मोटी टहनी को कसकर पकड़े हुए खड़ा था। पहुँचते ही झट बाज की तरह झपटकर राजा के कंधे से जनेउ की तरह लटकती कारतूसों की माला को एक हाथ से पकड़कर वह दहाड़ उठी—"शैतान ! बदमाश ! भागना चाहता है ? भागकर तू जायेगा कहाँ अब ? नरक में ? बोल ! बता अब ! तेरे

---

१. कहते हैं कि नेपाल की भीतरी तराई के जंगलों में 'चितबारबे' जाति के सर्प होते हैं, काफी लबे। धरती से कई हाथ ऊँचे उठकर वे दूर-दूर तक देख लेते हैं। उनके अंडे औसत के काफी बडे होते हैं। यदि किसी ने धोखे से भी उनके अडे नष्ट कर दिये तो 'मादाचित बारबे' उस हत्यारे को ढूँढ़े बिना चैन नहीं लेतो। कहते हैं कि समूह में सोये व्यक्तियों में से भी वह असली हत्यारे को पहचानकर उसे काट खाती है। पर निर्दोष व्यक्ति को छूतो भी नहीं !

बाप का यह जंगल है न ? यह जगल तेरी जायदाद है न ? तो मर यही ! अपने बाप के जगल मे मरकर स्वरग जायगा !···नहीं नही ! मै भूठ बोल गई ! स्वरग मे तेरे-जैसे पापी नहीं जाया करते !"—कहते हुए उसने झट दोनो हाथो के अँगूठो और अगुलियों को आधे चाँद के रूप मे फैलाकर दोनों ओर से उसके गले को कैद कर लिया । जकड़ दिया ।

जीवन मे कभी ऐसी दशा में पड़ने की कल्पना की होगी राजा ने ? क्या स्वप्न में भी उसके मन की कड़ियाँ स्थिति-शृङ्खला के इस रूप का निर्माण कर सकी होगी कभी ? सदियो से प्रभुत्व के प्रचड आतंक से दबे किसान की किसी बेटी मे ऐसे साहस या दुःसाहस की कल्पना की होगी किसी ने ? लेकिन राजा की अपनी स्थिति और किसान की उस बेटी की स्थिति आमने-सामने जैसे सबल व्यग बनकर खडी हो चुकी थीं। जैसे दलितों मे विद्रोह की छिपी प्रचड चंडिका हेमा के रूप मे प्रकट हो, सहस्रजिह्व हो सदियो की पुंजीभूत क्रूरताओं को ललकार रही हो अभी ! उनके विनाश के गिने क्षणो और दिनों की उन्हें सदर्प याद दिला रही हो !

अपने को सहसा इस स्थिति मे पाकर राजा के प्रभुत्व का गौरव आतंक के बवंडर मे यों हवा हो चला ज्यों आँधी की चपेट मे कोई तिनका । अब तक वह स्वयं निज के प्रचंड आतक की आँधी मे असंख्य जनों के आत्म-गौरव को कँपाता, उड़ाता और विनष्ट करता आया था । आज भी वह उसी आतंक के तूफान को उत्पन्न करते हुए उस जंगल में गोठ के निकट पहुँचा था । पर नियति का कैसा क्रूर नाट्य कि अपने पैदा किये तूफान की चपेट में वह स्वय आ फँसा ! जैसे किसी पड़ोसी के घर में आग लगाने वाले दुष्ट का स्वयं अपना घर भी उस आग की लपटों की लपेट में आ पड़ा हो !

हेमा के मजबूत हाथों की क्रूर पकड़ में पड़कर उसका गला घिघियाने लगा । जैसे सर्प के मुँह में पडा हुआ मेंढक गों-गों कर रहा

हो ! उस घिघियाते गले से ही अत्यंत करुण कातर स्वर में वह बोलने लगा—"बे-बे-बे-बेटी ! मा-मा-माफ ब-ब-बकसो ! पा-पा-पाप किया ! सा-सा-सारा रा-रा-रा-राज-पाट ले-ले-लेलो ! मे-मे-मेरी जा-जा-जान ब-ब-ब-बकसो !"

हेमा अपनी पकड़ तनिक ढीली करती हुई तीखी हँसी हँसकर बोली—"माफी मॉगता है शैतान ! मुझे बेटी कहता है ! मुझसे भी कम उम्र की कई बेटियों को अपनी 'स्वास्नी' बनाकर अब तू बाप बनने चला है मेरा ? अपने 'ज्वाइँ' का तो अभी-अभी खून कर दिया तूने ! अभी-अभी ही अपनी इस बेटी का भी खून करते-करते तूने एक दूसरी बेटी का भी खून कर दिया ? बाप बनता है बदमाश ! हत्यारा ! खूनी ! अपना राज-पाट अपने साथ रख ! अब नरक में जाकर खुद भोग उसे !"—कहकर अपनी पकड को फिर कड़ी करते हुए बड़े जोर से उसने उसका गला दबा दिया।

राजा के गले से बड़ी कातर चीख निकली। एकाएक आँखें बाहर निकल आईं। और हेमा ने उसकी लाश को एक पैर से ठोकर मारते हुए नीचे यों फेंक दिया जैसे खिलाड़ी गेंद को। हेमा के हृदय का शैतान परितृप्त हो गया। और गोठालों के हृदय के शैतान भी जैसे एक साथ खुशी से उछलकर तालियाँ बजाते हुए उस करुण बीभत्स दृश्य का स्वागत करते हुए बोल उठे—"बहुत बड़ा पाप दूर हो गया ! बहुत बड़ा पाप !"

मनुष्य द्वारा मनुष्य की हत्या अपने-आप में सामान्य पाप नहीं है, किन्तु हेमा को इस बड़े पाप के लिए बाध्य किया था राजा के जघन्यतम पाप ने। एक बड़े पाप ने दूसरे बड़े पाप को विनष्ट कर दिया। जैसे कॉटे ने काँटे को निकाल दिया। जैसे जहर ने जहर का नाश कर दिया। जैसे 'पंचस्यमन्तक' तालाब के किनारे भीम ने दुर्योधन को मारकर पूरा बदला चुका लिया। और जैसे राम ने रावण को मारकर।

हिन्दू धर्म और कानून के सबसे बडे आचार्य श्रीमनु महाराज का आदेश है—"आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।" अर्थात् आततायी को सामने देखते ही बिना विचारे मार डालना चाहिए ! नेपाल के हिन्दू-धर्म-प्रधान सामन्ती शासन में मनु-याज्ञवल्क्य के वचन ही कानून थे, अथवा शासको के निजी वचन ! आज भी, राणाशाही के ध्वंस के बावजूद उन वचनो का कम माहात्म्य नहीं है। हेमा ने अपनी दृष्टि मे एक परम आततायी को मारकर मनु ऋषि के आदेश का भी पालन कर दिया था, और अपने हृदय मे प्रतिशोध की धधकती हुई आग का शमन भी। मनु और मनु ऋषि के आदेश का उसे पता न था, लेकिन मानव-हृदय मे चिर-सत्य के दो बाजुओ की तरह जुड़े प्यार और घृणा को वह भी अपने हृदय मे महसूस किया करती थी। उनसे यथा-समय बडे वेग से परिचालित भी हुआ करती थी। वह खूब प्यार भी किया करती थी, और खूब घृणा भी। उसका सौरभमय हृदय उसी प्रकार दो विरोधी तत्त्वों से संश्लिष्ट था जैसे गुलाब का सौरभमय सुपुष्प कँटीले पौधे से जुड़ा रहता है। उसने पूरे हृदय से हरिशंकर को प्यार किया था, और अपनी सौत कुसुमा को भी। प्यार ने प्यार पर विजय प्राप्त की थी। और उसी अतिशय प्यार से प्रतिशोधजन्य घृणा और क्रोध की वह प्रचंड अग्नि भी पैदा हो चली थी जिसमें राजा हरि-बहादुर शाह अब सदेह भस्म हो चुका था। अतः हेमा को अपने किये पर पश्चात्ताप और भय के बजाय अनुपम सतोष और आनन्द अनुभव हो रहा था। मानो इस संतोष और आनन्द की सवेग सरिता मे कुछ क्षण के लिए शोक की अग्नि बहकर बिलकुल बुझ चली हो !

लेकिन मनु ऋषि ने 'राजा' को भगवान अथवा महान देवता का पद भी प्रदान किया है—"महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति। बालोऽपि नावमन्तव्यः···।" इस प्रकार राजाओं को आततायिपन के

अपराध से उन्होंने सदा के लिए मुक्त भी कर दिया है। जैसे 'पार्लमेन्ट्री' पद्धति का आधुनिक मनुष्य-निर्मित संविधान भी राष्ट्रपति और राज्यपालों को सारे दोषों और अपराधों से मुक्त समझता है! मुक्त कर देता है! हेमा ने यद्यपि एक छोटे-से राजा का वध किया था, पर राजा हरिबहादुर भी आखिर नेपाल के अनेक राजाओं की शृखला की एक कड़ी था। और यह शृंखला रक्त-सबंध, वर्ग-स्वार्थ और अधिकार की सबल भावना के सहारे सीधे जा बँधी थी नेपाल की प्रबल राणाशाही के साथ! स्वय शासन के सर्वोच्च सिंहासन के साथ! बिना किसी व्याख्या और विश्लेषण के हेमा का हृदय इस तथ्य को जानता और समझता था। जब-तब इस शृंखला की कड़ियाँ आपस मे टकराकर भले ही झनझना उठें, पर यह टकराना और झन-झनाना उस शृंखला को तोड़ने अथवा उससे अलग होने की आकांक्षा के बजाय उसी में जुडने और जुडे रहने के उद्देश्य की पृष्ठभूमि पर उत्पन्न हुआ करता था! पर जनता के लिए यह शृंखला शृंखला थी! दमन और दासता की मजबूत बेड़ी! मजबूत हथियार! न 'साँपनाथ' मे कोई अन्तर था, न 'नागनाथ' में!

हेमा के हृदय से प्रबल बैरी पर प्रतिशोधजन्य विजय पाने के संतोष और आनन्द का उन्माद अब क्रमशः कम होते-होते बहुत शीघ्र समाप्त हो चला। परिस्थिति ने जैसे झट उसके सामने प्रकट होकर उसके मस्तिष्क पर कोड़े मारकर उस उन्माद को जल्द समाप्त कर दिया हो! उसके सामने यह तथ्य दिन के प्रकाश की भाँति अब झट स्पष्ट हो पड़ा कि सरकार के कानून की लाठी से वह बच नहीं सकती! सरकारी कानून राजा हरिबहादुर शाह और उसके सिपाहियों की हत्या को देख सकेगा, पर हरिशंकर और कुसुमा की हत्या को नहीं! और यदि देख सका भी तो वह हेमा के स्वय बदला लेने के अधिकार को बर्दाश्त न कर सकेगा! और गाँवों में रहकर वह हमेशा से यह भी देखती आ रही थी कि सरकार का कानून जिम्मावाल महेन्द्र हमाल और मुखिया जयशंकर पत जैसों

का साथ देता आया है, न कि हरिशंकर-जैसो का! न कि अभागिन पार्वती-जैसी अबलाओ का!

हाँ, तो हेमा के हृदय में कानून की कँटीली बेडियाँ समस्त क्रूरताओ के साथ झनझना उठी। उन कँटीली बेडियो मे उसके लिए मौत का जहर सना हुआ था। खून के बदले खून! कानून का अकाट्य नियम! हाँ, कानून की तलवार को भी काटा जा सकता था चाँदी-सोने की तलवार से, अथवा प्रभाव और संबध के सबल हथियार से! पर गरीब हेमा के पास ये हथियार थे कहाँ? किन्तु कानून की वेदी पर बलिदान हो जाना अब उसके लिए आसान न रह गया। क्योकि अब वह जीना चाहती थी! क्योंकि उसकी प्राणाधिका सौत कुसुमा, अस्थि-पंजर से प्राण-पक्षी के निकलते-निकलते उसे सशपथ सस्नेह यह आदेश देती गई थी—"बने की खातिर जीना दीदी!…" अतिशय स्नेह के आदेश-भरे इन शब्दों मे मानो एक माँ के अनमोल हृदय की चिर-सत्य आकांक्षा भी मुखरित हुई थी, और अपनी प्राणाधिका दीदी के प्राणो की सुरक्षा की आकांक्षा भी! आखिर कुसुमा ने अपने प्राणो को होमा था हेमा के लिए! कितनी बडी शानदारी के साथ उत्तीर्ण हुई थी कुसुमा अपनी दीदी के प्रति अपने निष्कपट अखड प्रेम की परीक्षा मे! अतः कुसुमा की याद और उसका वह आदेश अब हेमा के लिए जीवन का सबसे पवित्र मंत्र था! जीने का सबसे प्रबल साधन! अभी-अभी ही उसने कुसुमा के शव के समक्ष प्रतिज्ञा की थी—"तेरी दीदी अब तेरे 'बने' की खातिर जियेगी बहिनी! जरूर जियेगी! उसे हर मुसीबत से बचायेगी!"

तो अब जीना उसे जरूर होगा! लेकिन सरकारी कानून से मोर्चा लेकर वह जी सकेगी कैसे? बारंबार यह प्रश्न समस्या बनकर उसके मन में ध्वनित होने लगा। कहीं उसे भाग निकलना चाहिए? भाग निकलने मे कोई दोष तो नहीं? कायरपन का कलंक तो नही? आखिर एक दिन वह प्यार के जादू में बँधकर माँ-बाप के घर से भी भाग निकली थी, और जिम्मावाल महेन्द्र हमाल के घर से भी? और आज

यदि अपने प्राणाधिक शिशु 'बनराज' और कुसुमा के प्यार की खातिर भी कहीं जान बचाकर वह भाग निकले तो दोष क्या? अपराध क्या? और नेपाली कानून की पकड़ के दायरे में बनी या डटी रहकर वह न केवल अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगी, अपितु अपने प्राणों से प्यारे 'बनराज' से भी! नहीं नहीं! नेपाल की सीमा में अब टिके रहना घोर अपराध और पाप होगा उसके लिए! अब वह केवल 'बने की आमॉ' है! अब उसे जीना है केवल अपने 'बनराज' के लिए! अपने 'लाल' के लिए!

चिता अब भी पूरी तरह जली न थी। गोठालों मे से कुछ उठकर अपने गोठों मे जा चुके थे और कुछ अब भी वहाँ बैठे थे। शायद हेमा को वहाँ अकेली छोड़ देना उन्हें अनुचित लग रहा था। उनके मन मे अब हेमा के लिए गहरी सहानुभूति, श्रद्धा और आत्मीयता जाग उठी थी। उसके साहस और शौर्य के लिए, सतीत्व के लिए, उस गहरी विपत्ति के लिए भी! हेमा अभी बने को छाती से चिपकाये, सिर झुकाये भाग निकलने की समस्या पर चुपचाप सोच रही थी। पर न कोई ठीक मार्ग दिखाई दे रहा था, न कोई ठीक दिशा!

ठीक इसी समय एक प्रौढ गोठाले ने, उसके निकट बैठकर अत्यंत अपनापन-भरे स्वर मे कहा—"बहिनी! जो कुछ होना था हो चुका! किसने सोचा था ऐसा?"—कहते-कहते अँगुलियों से कपार ठोककर व्यथाभरे स्वर में वह फिर बोला—"सारा सतियानास तो हो ही गया, मगर जो कुछ बच रहा है उसकी रच्छा तो करनी ही चाहिये! तुम अब हम सबकी धरम की बहिनी हो! तुम्हारी इज्जत-आबरू और जान माल की रच्छा करना हमारा धरम है! मगर बहिनी, अड्डा-अदालत पर हमारा कोई वश तो नहीं? और अड्डा-अदालत साथ पूरती है अमीरों का, हम गरीबों का नहीं?" फिर उस शिशु की ओर तर्जनी से संकेत करते हुए—"इस नानी के पालन-पोसन की खातिर भी तुम्हारा जीना अब धरम हो गया है! सो, मेरी तो सलाह है बहिनी, कि तुम इसी दम

'मोगलान' (भारत) की ओर चल पड़ो ! रात का बेरा है ! अँधेरा है ! और 'सीवाना' (सीमा) अधिक दूर नहीं है ! अभी चल पड़ो तो मजे-मजे में बिहान होते-होते मोगलान में पहुँच जाओगी ! और, इधर हम राजा की 'लहास' को भी आग लगा देते हैं ! बुटवल अड्डा से सिपाही के आने पर बता देंगे—'राजा को लेकर हाथी भाग गया जंगल में ! और गोठाले हरिशंकर खत्री की जेठी स्वास्नी भी सती हो गई अपने मरद के साथ !' किसी दूसरे को बचाने की खातिर अलिगता झूठ बोलने में भी धरम ही होता है बहिनी !"—कहकर उसने सुरती की पीक नीचे थूक दी ।

मनबहादुर ने फिर कहा—"मोगलान मे हजारों-लाखो गोरखाली लोग हैं बहिनी ! 'लाहुरे' हैं ! गुजर-बसर के लिए तुम्हारा भी कोई हीला जरूर लग जायगा ! चिन्ता न करो ! भगवान सबको देता है कुछ-न-कुछ !"

हेमा को अचानक सही मार्ग दिखाई दे गया । दिशा का धुँधलापन जैसे अचानक नष्ट हो गया । मनबहादुर ने जैसे उसके मन के अँधेरे मे प्रविष्ट हो झट रोशनी कर दी । रूपबहादुर के मुँह से पहले ही वह मोगलान और मोगलान के नेपाली लाहुरों के बारे मे बहुत कुछ सुन चुकी थी । और यह भी सुन चुकी थी कि नेपाल के पहाड़ी इलाके के कतिपय अपराधी सरकारी सजा से बचने के लिए ही मोगलान भाग निकलते हैं । लेकिन फिर भी मनबहादुर द्वारा याद दिलाने से पूर्व उसकी सूझ और समझ मे मोगलान भाग निकलने की बात निश्चित रूप से न आ सकी थी । एक बार हरिशंकर का मन भी ललच उठा था मोगलान जाने के लिए । लेकिन हेमा ने ही उसके ललच को लगाम लगा दी थी, यह जानकर कि मोगलान भी दूर के ढोल के सिवा और कुछ नही । वहाँ भी गरीबों का हाल नेपाल के पहाड़ो से बेहतर नहीं है । किन्तु इस क्षण वही मोगलान उसे कितना मूल्यवान प्रतीत हुआ !

वह झट उठ खड़ी होकर मनबहादुर से बोली—"दाज्यू! ठीक बताया आपने! मै भी यही सोच रही थी अभी! मैं अभी ही चल पड़ती हूँ!" फिर एकाएक दोनों हाथ जोड़कर—"मगर एक बिन्ती है मेरी सभी दाज्यू-भाइयों से! हम गरीबों का आपस का वैर-विरोध ही सबसे बड़ा दुश्मन है हमारा! हम अगर एक साथ मिले रहें तो कोई राजा-महाराजा भी हमारा कुछ बिगाड नहीं सकता! अगर मिलकर अनियाय का मुकाबला करें तो कोई राजा-महाराजा भी हमें सता नहीं सकता! मार नहीं सकता!...अच्छा, अब चलने की तैयारी करती हूँ! रूप दाई जब गॉव से वापस आवे तो उन्हें मेरा ढोर-डगर भी सौंप दीजियेगा!"

"जरूर बहिनी! जरूर! तुम चिन्ता न करो!"—मनबहादुर ने झट आश्वासन देकर भावनाभरे स्वर में कहा—"तुम हमारी सती बहिनी हो! सती के मुँह से हमेशा सत्त निकलता है! तुमने अभी जो कुछ भी कहा सब सत्त है बहिनी! राजा-महाराजा भी हमी लोगों की तरह हाड़-मॉसू का बना होता है! सती बहिनी! बहादुर बहिनी! तुमने आज खुद परतच्छ करा दिया राजा-महाराजा की असलियत को हमारी ऑखों में! एक राजा भी अपनी जान के लिए उसी तरह दॉत चियारकर गिडगिडा सकता है जैसे हम गरीब लोग! उसका सारा बड़प्पन और बड़प्पन का दिखावा नकली है! झूठ है! झूठ का यह नकली नाटक तभी तक गरीबों को भरम में रखे रह सकता है जब तक फउज और हथियार का बल उसके हाथ में है! अभी राजा हरिबहादुर तुम्हारे आगे दॉत चियारकर इस कारन गिड़गिड़ा रहा था बहिनी, कि उसके हाथ में उस बखत बंदूक का बल न था! फउज-सिपाही का बल न हो तो राजा-महाराजा का मोल भी कानी कौड़ी के बराबर! गीदड़-सियार के बराबर!" फिर गोठालों को सम्बोधित करते हुए—"सती बहिनी की सीख गॉठ बॉध रखो दाज्यू-भाइयो! सती बहिनी के चरन छूकर कसम खाओ कि अड्डा के सिपाही के आने पर..."

मनबहादुर अपनी बात पूरी न कर सका। गोठो की ओर से दो-तीन गोठाले दौड़े आकर घबडाये स्वर मे बोले उससे—"मन दाई! जल्दी करो! सब गोठाले गोठ उजाड़कर भाग रहे हैं पहाड़ मे इसी बखत! इस 'खोला' (नाला, नदी) के किनारे के 'चोर-बाटो' (चोर-रास्ता) से! जाने कब 'अड्डा' उतर आवे यहाँ! झूठ-मूठ मे फँसेंगे सब!" और फिर राजा के शव की ओर इशारा करके—"और अब यह पिशाच राजा भी भूत-प्रेत बन गया! हम लोगो को अब मरकर भी सतायेगा यहाँ! भाग चलो इसी दम!"—कहते-कहते सचमुच भूत के भय से उसके रोंगटे जैसे खडे हो चले। हृदय काँप उठा।

मनबहादुर ने जवाब दिया—"अगर राजा की 'लहास' को भी फूँक दिया जाय तो भूत-प्रेत का डर खतम हो जाय! अड्डा का सिपाही अगर इस लहास को यहाँ पड़ा देख ले तो और भी मुसीबत मे फँसेंगे हम!"

एक और गोठाले ने बेचैनीभरे स्वर मे कहा—"यहाँ टिके रहने मे ही अब मुसीबत है मन दाई! अड्डा के हाकिम-सिपाही भी किसी भूत-प्रेत से कम नही होते! राजा की लहास को यो ही छोड दो यहाँ! रात मे गीदड़-सियार आकर उसका दाह कर देंगे! राजा कोई हमारा रिस्तेदार नही कि हम उसका दाह करे! गीदड़-सियारों का भी कुछ फायदा होगा!...चलो! झट उठ चलो यहाँ से! चलने की तैयारी करो!"

मनबहादुर को मानना पड़ा। उठ खड़े होते हुए उसने हेमा से कहा—"जब दस की यही सलाह है बहिनी, तो मानना ही चाहिए! दस मे भगवान बसते हैं! तुम भी बहिनी, जल्दी चल पड़ो! बुटवल के 'बाटो' से जाना मत! 'चोर-बाटो' से, थारू-गाँव के पीछे से खेत-खेत 'भैरहवा' की सड़क पकड़ लेना! चिन्ता न करो! तुम्हारा और रूपबहादुर का 'माल-जाल' (ढोर-डगर) किसी-न-किसी उपाय से घर जरूर पहुँचा देंगे!"

गोठों में चुप्पी-भरा तहलका पहले से ही मचा हुआ था। जैसे

किसी पडाव का व्यापारी कारवाँ किसी भी क्षण डाकुओं के दल के आ-धमकने की आशंका से भागने की तैयारी में लग चुका हो ! अनेक मशालें जल उठी थीं। और हेमा ने अपने गोठ में जाकर जेवर-जेवरात की पोटली को खूब यत्न से सम्हाला। आवश्यक कपड़े-लत्ते डोको में रखे। बने के लिए एक ठेको मे तत्काल बकरी का दूध दुहा। डोको को पीठ से बाँध और बने को गोद मैं सम्हाले वह पुनः चिता के पास आ पहुँची। चिता अब एकान्त हो चली थी। उसके पास की झाड़ी से आरम्भिक वसत के कुछ जंगली फूल तोड़े। और उन फूलों को बड़ी श्रद्धा से, बड़े प्यार से, बडी व्यथा से घुटने टेक पति और सौत की चिता को समर्पित किया। फिर सिर को धरती से सटाकर पति के उद्देश से अत्यन्त गद्‌गद कठ से बोली वह—"बने के बा ! बने की खातिर ही अब जी रही हूँ ! तुम्हारे धरम के छोरे की खातिर ! अपने छोरे को असीस दो कि तुम्हारे-जैसा ही वीर-बहादुर बने वह ! खूब लबी उमर पावे !"'मेरे दिल के देवता ! हमेशा मेरे दिल में मौजूद रहना ! असीस दो कि मै जनम-जनम में तुम्हें ही पा सकूँ !"

व्यथा के आँसुओं से चिता के अनेक कण गीले हो उठे। धरती से सिर सटाये ही वह कुसुमा के उद्देश से भी बोली—"मेरी सती बहिनी ! तू मुझसे दूर चली गई ! मगर मैं अपने दिल से तुझे कभी अलग होने न दूँगी ! सती बहिनो ! अपनी दीदी को असीस दे, कि जनम-जनम तू मेरी ही बहिनो बने, और मै तेरी दीदी बनूँ ! 'बसउँ एकइ डाली दुइ बनका न्याहुली !' तेरा हुकुम हमेशा याद रखूँगी ! तेरे 'बने' की खातिर जिऊँगी बहिनी ! जरूर जिऊँगी !"

बने उसकी छाती से बँधा हुआ सो रहा था। उसे छाती से खोल-कर उसके नन्हे सिर को चिता के आगे झुकाकर व्यथा-विह्वल स्वर में वह फिर बोली—"अपनी सतो आमाँ और बहादुर बा को 'जिउ कर' नानी ! जिनगी में अपने बा को तरह बहादुर बनने की असीस माँग !"—कहकर उसके सिर पर उसने चिता-भस्म की 'बिन्दी' भी

लगा दी। देवता के पवित्र प्रसाद की तरह !

बने निद्रा से जागकर तनिक चोख पड़ा। लेकिन झट आमाँ की गरम-गरम छाती मे बँधते ही वह निद्रा में खो चला।

हेमा अब अपनी ससुराल के गाँव की दिशा में खड़ी हो, हाथ जोड़, आँसूभरी आँखो से अपनो स्नेहमयी सास के उद्देश से बोली—"बड़े पुन्न से किसी को आप-जैसी 'सास' मिलती है आमॉज्यू ! आपके 'छोरे' को गँवा चुकी, और आपकी 'काछी' को भी ! अब किस मुँह से आपके आगे जाऊँ आमॉज्यू ! मेरा कसूर माफ कीजिए ! और असीस दीजिए कि जनम-जनम मै आपको ही 'सास' के या 'आमाँ के रूप मे पा सकूँ !"

हेमा अब आँसुओं को पोछती तनिक मुडकर खड़ी हो गई, अनन्त अज्ञात पथ पर अभियान के लिए। लेकिन पीठ-पीछे उसने बने की रखवाली करने वाले उसी नवतरुण गोठाले को खड़े देखा। पीठ के रक्षा-कवच की तरह ! उस नवतरुण की पीठ पर 'डोको' बँधा हुआ था। 'डोको' का 'नाम्लो' उसके कपार पर सर्प के चौड़े फन की तरह चिपका हुआ था। इसमे कोई सदेह नही कि वह भी प्रस्थान के लिए तैयार था। लेकिन अपने पीछे अकेले उसके इस प्रकार खडे होने का रहस्य सहसा हेमा की समझ मे न आ सका।

आश्चर्यचकित नेत्रो से क्षण भर उसे देख हेमा बोली—"तुम भी जा रहे हो न, पहाड़ पर भइया ?"

और नवतरुण ने झट स्नेहभरे स्वर में प्रतिवाद किया—"पहाड़ पर नही दीदी ! मै तुम्हारे साथ जाऊँगा !" फिर अचानक तनिक करुण-कातर स्वर में—"मै तो दीदी, अब हमेशा तुम्हारे ही साथ रहूँगा ! मेरा 'आमाँ-बुवा' कोई नही ! 'दीदी-बहिनी' कोई नहीं ! अब से तुम्हीं मेरा आमाँ-बुवा, तुम्हीं मेरी दीदी-बहिनी ! साथ रखोगी न दीदी ?"

आह ! कैसी करुणा, कैसी स्निग्ध याचना थी उस अभागे नवतरुण के स्वरों मे ! वह सचमुच अनाथ बालक था। अपमान और तिरस्कार

के बीच चाचा के परिवार में वह पल रहा था। चाचा के ढोर-डंगरों के साथ यहाँ के एक गोठ में रह रहा था। पिछले एक महीने से वह हेमा और कुसुमा को देखता आ रहा था। और उस अनाथ शिशु पर उन दोनों के बरसते अनुपम प्यार को भी! उसका वंचित हृदय भी जैसे इसी प्यार का भूखा था। वञ्चित हृदय के प्यार की भूख बड़ी प्रबल होती है! जैसे कोई भूखा भिखमगा किसी द्वार पर खड़ा अभी रोटियाँ माँग रहा हो!

हेमा के हृदय का कोश यों भी प्यार से सदा भरा रहता। पर प्यार के इस भिक्षुक के प्रति तो उसका हृदय कृतज्ञता से भी भरा हुआ था! उस करुण-कातर याचना से उसका हृदय जैसे झट उछलकर आँखों में आ गया। नेत्रों में स्नेह की स्निग्धता भरकर उसने पूछा उससे—"क्या सचमुच तेरा आमाँ-बुवा कोई नहीं भइया?"

"हाँ दीदी! भगवान-कसम! सच कहता हूँ!"

"तो चल मेरे साथ भइया! मै तेरी धरम की दीदी! भगवान ने तेरे-जैसा एक अच्छा 'भइया' भी मुझे दे दिया आज! अपने सगे से भी बढ़कर मानूँगी तुझे! तूने मेरे बने को बचाया है आज! मेरे परान को! मेरे लाल को! आज से मेरे लिए जैसा 'बने' वैसा तू! चल मेरे साथ!"

भिखारी को जैसे आशा से अधिक मिल गया! नवतरुण की आँखे छलछला आईं। हृदय में अभूतपूर्व नशा छा गया। उसके प्यारवंचित हृदय-नेत्रों के समक्ष प्यार का मीठा-मीठा आलोक अचानक जैसे फूट पड़ा! उत्साहभरे स्वर में बोला वह—"मोगलान का 'बाटो' मेरा देखा है दीदी! अपना डोको मुझे दे दो। नानी को पीठ पर बाँध लो!"

"तेरी पीठ पर भी डोको है भइया! मेरा डोको कोई भारी नहीं! अभी खोलने में देर भी लगेगी! आगे मेरे थकने पर तू ले लेना!"

वे चल पडे। जैसे अपनी डीह से एकाएक उजाड़े गये आतंक-ग्रस्त शरणार्थी किसी नई निरापद जगह की तलाश मे भाग चले हो! हेमा, उन दो अनाथ बच्चो को अपने प्यार के आँचल में समेटकर जीवन के जिस नये पथ पर अग्रसर हो चली उसकी कोई भी रूप-रेखा उसके सामने न थी। जैसे जीवन का विधाता बिना किसी पूर्व-योजना के विश्वास के साथ आगे बढ़ चला हो! बढ़ा जा रहा हो!